पउमचरिउ
[भाग ३]

ज्ञान मन्दिर
न्यू सेण्ट्रल जूट मिल्स कम्पनी लिमिटेड,
बजवज, चौबीस परगना
की ओर से
श्री सिद्धचक्रविधान महोत्सव के
सानन्द सम्पन्न होने के उपलक्ष में
सादर भेंट

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला [अपभ्रंश ग्रन्थाङ्क ३]

कविराज स्वयम्भूदेव विरचित

पउमचरिउ

[पद्मचरित]

हिन्दी अनुवाद सहित

तृतीय भाग—सुन्दरकाण्ड

—अनुवादक—

श्री देवेन्द्रकुमार जैन एम० ए०, साहित्याचार्य

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

प्रथम आवृत्ति
१००० प्रति

माघ वीर नि० सं० २४८४
वि० सं २०१४
जनवरी १९५८

मूल्य ३ रु०

Bharatiya Jnana-Pitha Kashi

FOUNDED BY

SETH SHANTI PRASAD JAIN

In Memory of his late Benevolent Mother

SHRI MURTI DEVI

BHARATIYA JNANA-PITHA MURTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

Apabhransh Granatha No. 3.

In this Granthamala critically edited Jain agamic philosophical, pauranic, literary, historical and other original texts available in prakrit, sanskrit, apabhransha, hindi, kannada and tamil etc., will be published in their respective languages with their translations in modern languages

AND

Catalogues of Jain Bhandaras, inscriptions, studies of competent scholarts & popular jain literature will also be published

General Editor

Dr. Hiralal Jain, M.A.D. Litt.

Dr.A.N. Upadhye M.A.D.Litt.

Publisher

Ayodhya Prasad Goyaliya

Secy. Bharatiya Jnanapitha

Durgakund Road, Varanasi.

Founded on Phalguna Krishna 9 Vira Sam. 2470

Vikrama Samavat 2000 18th Feb.1944.

विषय-सूची

भाग ३

छियालीसवीं सन्धि

सैतालीसवीं सन्धि

अड़तालीसवीं सन्धि

उनचासवीं सन्धि

पचासवीं सन्धि

इक्यावनवीं सन्धि

बावनवीं सन्धि

तिरपनवीं सन्धि

चउवनवीं सन्धि

पचपनवीं सन्धि

छप्पनवीं सन्धि

●

[३]

पउमचरिउ

•

कइराय-सयम्भूएव-किउ

पउमचरिउ

[४३. तियालीसमो संधि]

एहएँ अवसरें किक्किन्धपुरें णं गउ गयहों समावडिउ ।
सुग्गीवहों विड-सुग्गीउ रणें तारा-कारणें अब्भिडिउ ॥

[१]

पडिवक्खु जिणेवि ण सक्कियउ । विद्दाणउ माण-कलङ्कियउ ॥१॥
णं हियवएँ सूलें सल्लियउ । माया-सुग्गीवें घल्लियउ ॥२॥
सुग्गीउ भमन्तु वणेण वणु । संपाइउ खर-दूसणहँ रणु ॥३॥
बलु दिट्ठु सयलु सर-जज्जरिउ । तिल-मेत्तु खुरुप्पेंहिं कप्परिउ ॥४॥
कत्थइ सन्दण सय-खण्ड किय । कत्थइ तुरङ्ग णिज्जीव थिय ॥५॥
कत्थवि लोट्टाविय हत्थि-हड । कत्थइ सउणेंहिं खज्जन्ति भड ॥६॥
कत्थइ छिण्णइँ धय-चिन्धाइँ । कत्थइ णच्चन्ति कवन्धाइँ ॥७॥
कत्थइ रह-तुरय-गयासणइँ । हिण्डन्ति समरें सुण्णासणइँ ॥८॥

घत्ता

तं तेहउ किक्किन्धेसरेंण भय-भीसावणु दिट्ठु रणु ।
उम्मेट्ठें लक्खण-गयवरेंण णं विद्धंसिउ कमल-वणु ॥९॥

[२]

रणु भीसणु जं जें णियच्छियउ । खर-दूसण - परियणु पुच्छियउ ॥१॥
'इमु काइँ महन्तउ अच्चरिउ । बलु सयलु केण सर-जज्जरिउ' ॥२॥
तं वयणु सुणेंवि दूमिय-मणेंण । वुच्चइ खर-दूसण - परियणेण ॥३॥
'कों वि दसरहु तहों सुअ वेण्णि जण । वण-वासें पइट्ठ विसण्ण-मण ॥४॥
सोमित्ति को वि चित्तेण थिरु । तें सम्वुकुमारहों खुडिउ सिरु ॥५॥

पउमचरित

तैंतालीसवीं सन्धि

ठीक इसी अवसरपर किष्किंधपुरमें राजा सहस्रगति बनावटी सुग्रीव बनकर असली सुग्रीवपर उसी प्रकार टूट पड़ा जैसे एक हाथी दूसरे हाथीपर टूट पड़ता है।

(१) असली सुग्रीव अपने प्रतियोगी (नकली सुग्रीव) को नहीं जीत पाया। अपना मान कलंकित होनेसे वह म्लान हो रहा था। माया सुग्रीवका पराभव उसके हृदयमें काँटे जैसा चुभ रहा था। वनोंवन भटकता हुआ वह खर-दूषणके युद्धमें पहुँच गया। उसने वहाँ देखा कि सारी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। वह तीरों और खुरपोंसे तिल-तिल काटी जा चुकी है। कहीं रथोंके सैकड़ों टुकड़े पड़े थे, कहींपर निर्जीव अश्व थे, कहींपर गजघटा लोट-पोट हो रही थी, कहींपर पक्षि-समूह योधाओंके शव खा रहे थे, कहींपर ध्वजचिह्न छिन्न-भिन्न पड़े हुए थे, कहींपर धड़ नृत्य कर रहे थे और कहींपर रथ, अश्व और गजोंके आसन शून्यासनकी तरह घूम रहे थे। किष्किंधराज सुग्रीवने जब उस भयभीषण युद्धको देखा तो उसे ऐसा लगा मानो लक्ष्मण रूपी महागजने (घुसकर) कमलवनको ही ध्वस्त कर दिया हो ॥१-६॥

[२] उस भीषण रणको देखकर उसने खर-दूषणके सगे सम्बन्धियोंसे पूछा, "यह कैसा आश्चर्य, किसने सेनाको इस तरह जर्जर कर दिया।" यह सुनकर खर-दूषणके एक सम्बन्धीने भारी हृदयसे कहा कि "राम और लक्ष्मण नामक, दशरथके दो पुत्र वनवासके लिए आये हैं। उनमें लक्ष्मण अत्यन्त दृढ़ मनका है और

असि-रयणु लइउ तियसहुँ वलिउ । चन्दणहिहेँ जोव्वणु दरमलिउ ॥६॥
कूवारें गय खर-दूसणहुँ । अजयहुँ जय-लच्छि-विहूसणहुँ ॥७॥
अब्भिट्ट ते वि सहुँ लक्खणेंण । तेण वि दोहाविय तक्खणेंण ॥८॥

घत्ता

केण वि मणें अमरिस-कुद्धएँण हिय गेहिणि वणें राहवहों ।
पाडिउ जडाइ लग्गन्तु कुढें एत्तिउ कारणु आहवहों' ॥९॥

[२]

एहिय णिसुणेंवि संगाम-गइ । चिन्ताविउ किक्किन्धाहिवइ ॥१॥
'किर पइसमि गम्पि जाहुँ सरणु । किउ दइवें तहु मि णवर मरणु ॥२॥
एहएँ अवसरँ को संभरमि । किं हणुअहों सरणु पईसरमि ॥३॥
तेण वि रिउ जिणेंवि ण सक्कियउ । पच्चेल्लिउ हउँ णिरत्थु कियउ ॥४॥
किं अब्भत्थिज्जइ दहवयणु । णं णं तिय-लम्पडु लुद्ध-मणु ॥५॥
अम्हइँ विणिवाएँवि वे वि जण । सहुँ रज्जें अप्पुणु लेइ धण ॥६॥
खर - दूसण - देह - विमद्दणहुँ । वरु सरणु जामि रहु-णन्दणहुँ' ॥७॥
चिन्तेविणु किक्किन्धाहिवेंण । हक्कारिउ मेहणाउ णिवेंण ॥८॥
'तं गम्पि विराहिउ एम भणु । वुच्चइ सुग्गीउ आउ सरणु' ॥९॥
पिय-वयणेंहिं दूउ विसज्जियउ । गउ मच्छर-माण-विवज्जियउ ॥१०॥
पायाल-लङ्क-पुरें पइसरेंवि । तें वुत्तु विराहिउ जोक्करेवि ॥११॥

घत्ता

'सुग्गीउ सुतारा-कारणेंण विड-सुग्गीवें वञ्चियउ ।
किं पइसरहु किं म पइसरउ तुम्हहँ सरणु समञ्चियउ' ॥१२॥

उसने शम्बूककुमारका सिर काट डाला है और बलपूर्वक उसने देवोंसे सूर्यहास खड्ग छीन लिया है। उसीने चन्द्रनखाका यौवन कलंकित किया। जिससे रोती-विसूरती हुई वह, जय लक्ष्मीसे विभूषित खर और दूषणके पास आई। तब उन दोनोंने आकर लक्ष्मणसे युद्ध ठाना। परन्तु उसने तत्काल इनके दो टुकड़े कर दिये। इतनेमें अमर्षसे भरकर किसीने रामकी पत्नी सीता देवीका अपहरण कर लिया। पक्षिराज जटायुने पीछा किया। परन्तु उसे भी मार डाला। युद्धका कारण यही है" ॥१-६॥

[३] युद्धकी हालत सुनकर सुग्रीव इस चिन्तामें पड़ गया कि क्या वह उनकी (राम-लक्ष्मणकी) शरणमें चला जाय। हाय विधाता तूने केवल मुझे मौत नहीं दी ? इस अवसर पर मैं किसे स्मरण करूँ। क्या हनुमानकी शरणमें जाऊँ। परन्तु वह भी शत्रुको नहीं जीत सकता। उल्टा मैं निरस्त्र कर दिया जाऊँगा। क्या रावणसे अभ्यर्थना करूँ। नहीं नहीं। वह मनका लोभी और स्त्रीका लंपट है। वह हम दोनों (असली और नकली) को मारकर राज्यसहित स्त्रीको भी ग्रहण कर लेगा। अतः खर-दूषणका मान मर्दन करनेवाले राम और लक्ष्मणकी शरणमें जाना ही ठीक है। यह सब सोच-विचारकर किष्किन्धापुर नरेश सुग्रीवने मेघनाद दूतको पुकारा, और यह कहा, "जाकर विराधितसे कहो कि सुग्रीव शरणमें आ गया है। इस प्रकार प्रिय वचनोंसे उसने दूतको विसर्जित किया। वह दूत भी मान और मत्सरसे रहित होकर गया। पाताल लंका नगरमें प्रवेशकर, उसने अभिवादनके साथ, विराधितसे पूछा, सुताराको लेकर मायासुग्रीवसे पराजित असली सुग्रीव आपकी शरणमें आया है। उसे प्रवेश दूँ या नहीं" ॥१-१२॥

[४]

तं णिसुणेंवि हरिस-पसाहिएण । 'पइसरउ' पवुत्त विराहिएण ॥१॥
'हउँ धण्णउ जसु किक्किन्धराउ । अहिमाणु मुएप्पिणु पासु आउ' ॥२॥
संमाणिउ गउ पल्लट्टु दूउ । पइसारिउ पहु आणन्दु हूउ ॥३॥
तं तूरहँ सद्दु सुणेवि तेण । सो वुत्तु विराहिउ राहवेण ॥४॥
'सहुँ साहणेण कण्टइय-देहु । आवन्तउ दीसइ कवणु एहु' ॥५॥
तं णिसुणेंवि णयणाणन्दणेण । वुच्चइ चन्दोयर-णन्दणेण ॥६॥
'सुग्गीव-वालि इय भाइ वे वि । वड्डारउ गउ पव्वज्ज लेवि ॥७॥
एहु वि जिणेवि केण वि खलेण । वण-वासहों घल्लिउ भुअ-वलेण ॥८॥

घत्ता

वर-वाणर-धउ सूररय-सुउ तारा-वल्लहु विउलमइ ।
जो सुव्वइ कहि मि कहाणएँ हिँएँहु सो किक्किन्धाहिवइ' ॥९॥

[५]

स-विराहिय लक्खण-रामएव । वोल्लन्ति परोप्परु जाव एव ॥१॥
तिण्णि मि सुग्गीवें दिट्ठ केम । आगमेंण तिलोअ तिवाय जेम ॥२॥
चउ दिस-गय एक्कहिँ मिलिय णाइँ । वइसारिय णरवइ जम्ववाइ ॥३॥
संमाणेंवि पुच्छिय लक्खणेण । 'तुम्हहँ अवहरिउ कलत्तु केण' ॥४॥
तं वयणु सुणेंवि सव्वहुँ महन्तु । णमियाणणु पभणइ जम्ववन्तु ॥५॥
'वण-कीलएँ गउ सुग्गीउ जाम । थिउ पइसेंवि विडसुग्गीउ ताम ॥६॥
थोवन्तरें वालि-कणिट्ठु आउ । सामन्त - मन्ति - मण्डल-सहाउ ॥७॥
णउ जाणिउ विण्हि मि कवणु राउ । मणें विम्भउ सव्वहों जणहों जाउ ॥८॥

[४] यह सुनकर विराधितने हर्षपूर्वक कहा, "भीतर ले आओ। सचमुच मैं धन्य हुआ कि जो किष्किंधानरेश, स्वयं अभिमान छोड़कर मेरी शरणमें आये।" तब सम्मानित होकर दूत वापस गया और आनन्दके साथ अपने स्वामीको लेकर फिर आया। इतनेमें तूर्य-ध्वनि सुनकर राघवने विराधितसे पूछा, "सेना लेकर यह कौन रोमांचित होकर आता हुआ दीख पड़ रहा है।" यह सुनकर, नेत्रांनददायक चन्द्रोदर पुत्र विराधितने कहा, कि सुग्रीव और बालि ये दो भाई-भाई हैं। उनमेंसे बड़ा भाई संन्यास लेकर चला गया है। और इसको किसी दुष्टने पराजय देकर वनवासमें डाल दिया है। यह, सूररवका पुत्र, विमलमति ताराका स्वामी और वानरध्वजी, वही सुग्रीव है जिसका नाम कथा-कहानियोंमें सुना जाता है।।१–६।।

[५] इस प्रकार राम-लक्ष्मण और विराधितमें बातें हो ही रही थीं कि इतनेमें उन्होंने सुग्रीवको वैसे ही देखा जैसे आगम त्रिलोक और त्रिकाल को देखते हैं। आते हुए वे ऐसे लगे मानो चारों दिग्गज एक साथ मिल गये हों। जाम्बवन्तने उन्हें बैठाया। तदनन्तर आदर पूर्वक लक्ष्मणने सुग्रीवसे पूछा कि तुम्हारी पत्नी का अपहरण किसने किया। यह सुनकर जाम्बवन्त अपना माथा झुकाकर सारा वृत्तान्त सुनाने लगा। (उसने कहा) कि जब सुग्रीव वनक्रीड़ा करनेके लिए गया था तो माया सुग्रीव उसके घरमें घुसकर बैठ गया। बालिका अनुज सुग्रीव जब अपने मन्त्रियोंके साथ घर लौटा तो कोई भी यह पहचान नहीं कर सका कि उन दोनोंमें असली राजा कौन है। सबके मनमें आश्चर्य हो रहा था। इतनेमें कुतूहल-जनक दो सुग्रीव देखकर, असली सुग्रीवकी सेना हर्षसे

घत्ता

सुग्गीव-जुअलु कोड्डावणउ पेक्खेँवि रहस-समुच्छलिउ ।
वलु अद्धउ सुग्गीवहोँ तणउ मायासुग्गीवहोँ मिलिउ ॥९॥

[६]

एत्तहेँ वि सत्त अक्खोहणीउ । एत्तहेँ वि सत्त अक्खोहणीउ ॥१॥
थिउ साहणु अद्धोवद्धि होवि । अङ्गङ्गय विहडिय सुहड वे वि ॥२॥
मायासुग्गीवहोँ मिलिउ अङ्गु । अङ्गउ सुग्गीवहोँ रणेँ अभङ्गु ॥३॥
विहिँ सिमिरेँहिँ वे वि सहन्ति भाइ । णिसि-दिवसेँहिँ चन्दाइच्च णाइँ ॥४॥
एत्तहेँ वि वीरु विप्फुरिय-वयणु । सुउ वालिहेँ णामें चन्दकिरणु ॥५॥
थिउ तारहेँ रक्खणु अभउ देवि । "जइ ढुक्कहो तो महु मरहोँ वे वि ॥६॥
जुज्झन्तु जिणेसइ जो जि अज्जु । तहोँ सयलु स- तारउ देमि रज्जु" ॥७॥
विहिँ एक्कु वि णउ पइसारु लहइ । णल-णीलहुँ पुणु सुग्गीउ कहइ ॥८॥
"सच्चउ आहाणउ एहु आउ । परयारिउ जि घर-सामि जाउ" ॥९॥
असहन्त परोप्परु ढुक्क वे वि । णिय-णिय-करवालइँ करेँहिँ लेवि ॥१०॥

घत्ता

किर जाम भिडन्ति भिडन्ति ण वि ताव णिवारिय वारएँहिँ ।
मुक्कङ्कुस मत्त गइन्द जिह ओसारिय कण्णारएँहिँ ॥११॥

[७]

ओसारिय जं पुरवर-जणेण । थिय णयरहोँ उत्तर-दाहिणेण ॥१॥
अण्णेक्क-दियहेँ जुज्झन्ति जाम । पवणञ्जय-णन्दणु कुविउ ताम ॥२॥
"मरु मरु सुग्गीवहोँ मिलिउ माणु" । सण्णद्धु सुहड-साहण-समाणु ॥३॥
"हणु हणु" भणन्तु हणुवन्तु पत्तु । पभणइ णिरु रहसुच्छलिय-गत्तु ॥४॥
"सुग्गीव माम मा भणेण मुज्झु । विड-भडहोँ पडीवउ देहि जुज्झु ॥५॥

उछलती हुई (दो भागोंमें विभक्त हो गई।) आधी असली सुग्रीवके पास रही और आधी नकली सुग्रीवसे जा मिली ॥१-६॥

[६) सात अक्षौहिणी सेना इधर थी और सात ही उधर। इस प्रकार वह आधी-आधी बट गई। अङ्ग और अङ्गद दोनों वीर विघटित हो गये। अङ्ग मायासुग्रीवको मिला और अभङ्ग अङ्गद असली सुग्रीवको। दोनों शिविरोंमें वे दोनों भाई वैसे ही सोह रहे थे जैसे रात और दिनमें चन्द्र और सूर्य सोहते हैं। बालिके पुत्र वीर चन्द्र-किरणका चेहरा भी (क्रोधसे) तमतमा उठा। वह अभय देकर तारादेवीकी रक्षा करने लगा। उसने कहा—"यदि तुम इसके पास आये तो मारे जाओगे, युद्ध करते हुए तुममेंसे जो जीतेगा उसे मैं तारादेवी सहित समस्त राज्य अर्पित कर दूँगा।" परन्तु उन दोनोंमेंसे एक भी युद्धमें प्रवेश नहीं पा रहा था। इतनेमें सुग्रीवने नल और नीलसे कहा कि यह तो वही कहानी सच होना चाहती है कि कोई (दूसरा ही) परस्त्रीका गृह-स्वामी हो गया। एक दूसरेको सहन न करते हुए वे लोग अपनी-अपनी तलवारें लेकर एक-दूसरेके निकट पहुँचे। वे आपसमें लड़नेवाले ही थे कि द्वाररक्षकोंने उन्हें उसी प्रकार हटा दिया जिस तरह निरंकुश उन्मत्त गजोंको महावत हटा देते हैं ॥१-६॥

[७] इस प्रकार नगरके लोगोंके हटा देनेपर वे दोनों नगरके उत्तर-दक्षिणमें स्थित होकर लड़ने लगे। जब लड़ते-लड़ते बहुत दिन व्यतीत हो गये तो हनुमान सहसा कुपित हो उठा। 'मरमर' "(बनावटी) सुग्रीवका मानमर्दन हो" यह कहकर वह सुभट सेनाके साथ सन्नद्ध हो गया। और "मारो मारो" कहता हुआ वह वहाँ जा पहुँचा। उसका शरीर वेग और हर्षसे उछल रहा था। उसने कहा—"मामा सुग्रीव अपने मनमें खिन्न न होओ। माया

जइ ण वि भञ्जमि भुअ-दण्ड तासु । तो ण होमि पुत्तु पवणञ्जयासु" ॥६॥
तं वयणु सुणेंवि किक्किन्धराउ । तहों उप्परि गलगज्जन्तु आउ ॥७॥
ते भिडिय वे वि कण्टइय-देह । णव-पाउसेँ णं जल-भरिय-मेह ॥८॥

घत्ता

असि-चाव-चक्क-गय-मोग्गरेँ हिँ जिह सक्किउ तिह जुज्झियउ ।
हणुवन्ते अण्णाणेण जिह अप्पउ परु वि ण वुज्झियउ ॥९॥

[८]

जं विहि मि मज्झेँ एक्कु वि ण णाउ । गउ वले वि पडीवउ पवणजाउ ॥१॥
सुग्गीउ वि पाण लएवि णट्ठु । णं मयगलु केसरि-घाय-तट्ठु ॥२॥
किर पइसइ खर-दूसणहँ सरणु । किउ णवर कियन्तें तहु मि मरणु ॥३॥
तहिँ णिसुणिय तुम्हहँ तणिय वत्त । जिह चउदह सहसेक्कहों समत्त ॥४॥
तो वरि सुग्गीवहों करेँ परित्त । सरणाइउ रक्खहि परम-मित्त' ॥५॥
जं हरि अब्भत्थिउ जम्ववेण । सुग्गीउ वुत्तु पुणु राहवेण ॥६॥
'तुहुँ महुँ आसङ्घेँ वि आउ पासु । अक्खहि हउँ सरणउ जामि कासु ॥७॥
जिह तुहुँ तिह हउ मि कलत्त-रहिउ । वणेँ हिण्डमि काम-गहेण गहिउ' ॥८॥

घत्ता

सुग्गीवेँ वुच्चइ 'देव सुणेँ कुसल-वत्त सीयहेँ तणिय ।
जइ णाणमि तो सत्तमएँ दिणेँ पइसमि सलहँ हुआसणिय' ॥९॥

[९]

जं जाणइ-केरउ लइउ णामु । तं विरह-विसन्थुलु भणइ रामु ॥१॥
'जइ आणहि कन्तहेँ तणिय वत्त । तो वयणु महारउ णिसुणि मित्त ॥२॥

सुग्रीवसे लड़ो। यदि मैं आज उसके भुजदण्डको भग्न न कर दूँ तो मैं अञ्जनादेवीका पुत्र न कहलाऊँ।" यह सुनकर किष्किन्ध-राज सुग्रीव गरजता हुआ उसपर दौड़ा। पुलकित होकर वे दोनों ऐसे भिड़ गये मानो नव वर्षाकालमें नव मेघ ही उमड़ पड़े हों। तलवार, चाप, चक्र, गदा, मुद्गर, जिससे भी सम्भव हो सका, वे लड़ने लगे। परन्तु हनुमान भी उनमेंसे असली नकली सुग्रीवकी पहचान नहीं कर सका, जिस प्रकार अज्ञानी जीव स्व-परका विवेक नहीं कर पाता ॥१-६॥

[८] हनुमान जब दोनोंमेंसे एककी भी पहचान नहीं कर सका तो वह भी वापस चला आया। तब असली सुग्रीव भी अपने प्राण लेकर इस प्रकार भागा मानो सिंहकी चपेटसे मद-माता गज ही भागा हो। वहाँसे वह खर-दूषणकी शरणमें गया। किन्तु रामने उन्हें पहले ही समाप्त कर दिया था। वहीं पर उसने आप लोगोंके विषयमें यह खबर सुनी कि अकेले लक्ष्मणने (खर दूषणके) अठारह हजार योधाओंको किस प्रकार समाप्त कर दिया। इस लिए अच्छा हो आप ही असली सुग्रीवकी रक्षा करें। हे परम मित्र ! आप शरणागतकी रक्षा करें।" इस प्रकार जाम्बवन्तके प्रार्थना करनेपर राघवने सुग्रीवसे कहा—"मित्र, तुम तो मेरे पास आ गये, पर मैं किसके पास जाऊँ। जैसे तुम, वैसे मैं भी स्त्री-वियोगमें कामग्रहसे गृहीत हूँ। और जङ्गल-जङ्गलमें भटक रहा हूँ।" इसपर सुग्रीवने कहा—"हे देव ! सुनिए, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मैं सातवें दिन सीतादेवीका वृत्तान्त लाकर न दूँ तो चितामें प्रवेश करूँ" ॥१-६॥

[६] जब उसने जानकीका नाम लिया तो रामने विरहसे व्याकुल होकर कहा, "यदि तुम सीताकी वार्ता लाकर दो तो

सत्तमएँ दिवसेँ एत्तडउ वुज्झु । करेँ लायमि ताराएवि तुज्झु ॥३॥
भुञ्जावमि तं किक्किन्ध - णयरु । दक्खवमि छत्त - धय-दण्ड-पवरु ॥४॥
अण्णु मि तुह केरउ हणमि सत्तु । परिरक्खइ जइ वि कियन्त-मित्तु ॥५॥
वम्भाणु भाणु गङ्गाहिसेउ । अङ्गारउ ससहरु राहु केउ ॥६॥
वहु विहफइ सुक्कु सणिच्छरो वि । जमु वरुणु कुवेरु पुरन्दरो वि ॥७॥
एत्तिय मिलेवि रक्खन्ति जो वि । जीवन्तु ण छुट्टइ वइरि तो वि ॥८॥

घत्ता

जइ पइज ण पूरमि एत्तडिय जइ ण करमि सज्जणहँ दिहि ।
सत्तमएँ दिवसेँ सुग्गीव महु पत्तिय तो सण्णास-विहि' ॥९॥

[१०]

सीराउहु पइजारूढु जं जेँ । संचल्लु असेसु वि सिमिरु तं जेँ ॥१॥
संचलु विराहिउ दुण्णिवारु । सुग्गीउ रामु लक्खण-कुमारु ॥२॥
ते चलिय चयारि वि परम-मित्त । णावइ कलि-काल- कयन्त-मित्त ॥३॥
णं चलिय चयारि वि दिस-गइन्द । णं चलिय चयारि वि खय-समुद्द ॥४॥
णं चलिय चयारि वि सुर-णिकाय । णं चलिय चवल चउविह कसाय ॥५॥
णं चलिय चयारि विरिञ्चि-वेय । उवदाण-दण्ड णं साम - भेय ॥६॥
अह वण्णिएण किं एत्तडेण । णं चलिय चयारि वि अप्पणेण ॥७॥
थोवन्तरेँ तरल - तमाल-कृण्णु । जिण-धम्मु जेम सावय-रवण्णु ॥८॥

घत्ता

सुग्गीवेँ रामेँ लक्खणेँण गिरि किक्किन्धु विहावियउ ।
पिहिमिएँ उच्चाएँवि सिर-कमलु मउडु णाइँ दरिसावियउ ॥९॥

[११]

थोवन्तरेँ धण - कञ्चण-पउरु । लक्खिज्जइ तं किक्किन्धणयरु ॥१॥
णं णहयलु तारा - मण्डियउ । णं कव्वु कइद्धय - चड्डियउ ॥२॥

हे मित्र, सुनो ! मैं सातवें दिन तुम्हारी स्त्री तारा देवीको ला दूँगा, यह समझ लो। तुम्हें किष्किधानगरका भोग कराऊँगा और छत्र तथा सिंहासन दिखाऊँगा। इसके सिवा तुम्हारे शत्रुका नाश-कर दूँगा। चाहे वह अपने मित्र कृतान्त द्वारा भी रक्षित क्यों न हो। ब्रह्मा, सूर्य, ईश्वर, वह्नि, चंद्रमा, राहु, केतु, बुध, बृहस्पति, गुरु, शनीचर, यम, वरुण, कुबेर और पुरंदर, ये भी मिलकर यदि उसकी रक्षा करें तो भी वह तुम्हारा शत्रु मुझसे जीवित नहीं बचेगा। यदि मैं इतनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सकता तो हे सुग्रीव, सातवें ही दिन मैं संन्यास ग्रहण कर लूँगा" ॥१–६॥

[१०] प्रतिज्ञापर आरूढ़ होकर जब श्रीराघव चले, तो उनका सैन्यदल भी चल पड़ा। दुर्निवार विराधित भी चला। सुग्रीव, राम, कुमार लक्ष्मण ये चारों मित्र ऐसे चले मानो कलि-काल और कृतान्तके मित्र ही चले हों। मानो चारों ही दिग्गज चल पड़े हों या मानो चारों क्षयसमुद्र ही चलित हो उठे हों या चारों देवनिकाय ही चल पड़े हों, या चारों कषाय ही चलित हो उठे हों। या चारों वेद ही चल पड़े हों या साम, दान, दंड और भेद जा रहे हों। अथवा इतने सब वर्णनसे क्या लाभ। वे चारों अपनी ही उपमा आप बनकर चले। थोड़ी ही दूर चलनेपर उन्होंने (सुग्रीव राम लक्ष्मण विराधितने) किष्किंध पर्वत देखा। तरल तमाल वृक्षोंसे आछन्न वह पर्वत, जिनधर्मकी तरह सावयों [श्रावक और वृक्षविशेष] से सुन्दर था, और जो ऐसा लगता मानो भूमिके उच्च सिर-कमलपर मुकुट ही रखा हो ॥१–६॥

[११] थोड़ी दूरपर उन्हें धन-कंचनसे भरपूर किष्किंध-नगर दिखाई दिया। वह ऐसा लगता था मानो तारोंसे मंडित आकाश हो या कपिध्वजोंसे आरूढ़ काव्य हो ? या चिबुक विभू-

णं हणुअ-विहूसिउ मुह-कमलु । विहसिउ सयवत्तु णाइँ स-णलु ॥३॥
णं णीलालङ्किउ आहरणु । णं कुन्द- पसाहिउ विउल-वणु ॥४॥
सुग्गीव-वत्तु णं हंस - सिरु । णं झाणु मुणिन्दहुँ तणउ थिरु ॥५॥
माया - सुग्गीवें मोहियउ । कुसलेण णाइँ कामिणि-हियउ ॥६॥
एत्थन्तरें वड्ढिय - कलयलेहिँ । जम्बव - कुन्देन्दणील - णलेहिँ ॥७॥
सोमित्ति - विराहिय- राहवेँहिँ । सव्वेँहिँ णिव्वूढ - महाहवेँहिँ ॥८॥

घत्ता

सुग्गीवहोँ विहुरें समावडिएँ वहु-संमाण-दाण-मणेँहिँ ।
वेढिज्जइ तं किक्किन्धपुरु णं रवि-मण्डलु णव-घणेँहिँ ॥९॥

[१२]

वेढेंप्पिणु पट्टणु णिरवसेसु । पट्ठविउ दूउ विड-भडहोँ पासु ॥१॥
सुग्गीवें रामें लक्खणेँण । सन्देसउ पेसिउ तक्खणेँण ॥२॥
'किं वहुणा कहँ परमत्थु तासु । जिम भिडु जिम पाण लएवि णासु' ॥३॥
तं वयणु सुणेँवि कप्पूरचन्दु । संचल्लु णाइँ खयकाल-दण्डु ॥४॥
दुज्जउ माया - सुग्गीउ जेत्थु । सह-मण्डवेँ दूउ पइट्ठु तेत्थु ॥५॥
जो पेसिउ रामें लक्खणेँण । सन्देसउ अक्खिउ तक्खणेँण ॥६॥
'णउ णासइ अज्जु वि एउ कज्जु । कहोँ तणिय तार कहोँ तणउ रज्जु ॥७॥
पहु पाण लएप्पिणु णासु णासु । जीवन्तु ण छुट्टहि अवसु तासु ॥८॥

घत्ता

सन्देसउ विड-सुग्गीव सुणेँ पुणरवि सुग्गीवहोँ तणउ ।
सहुँ सिर-कमलेण तुहारएँण रज्जु लएव्वउ अप्पणउ' ॥९॥

[१३]

तं वयणु सुणेँवि वयणुब्भडेँण । आरुट्ठें दुट्ठें विड - भडेँण ॥१॥
आएसु दिण्णु णिय-साहणहोँ । 'वित्थारहोँ मारहोँ आहणहोँ ॥२॥

षित मुखकमल हो या नल (नाल या सरोवर विशेष) से सहित कमल हँस रहा हो या नील (मणि या व्यक्ति विशेष) से अलं-कृत आभरण हो या कुंद (फूल और व्यक्ति) से प्रसाधित विपुल वन हो। या सुग्रीववान् (सुग्रीव और गला) सुन्दर हंस हो। या मुनीन्द्रोंका स्थिर ध्यान हो। वह नगर माया सुग्रीवके द्वारा उसी प्रकार मोहित हो रहा था जिस प्रकार कुशल व्यक्ति कामिनीके हृदयको मुग्ध कर लेता है। उसी अवसर पर कल-कल करते हुए बड़े-बड़े युद्धोंमें समर्थ, बहुसम्मान और दानका मन रखनेवाले जाम्बवंत, कुंद, इन्द्र, नील, नल, लक्ष्मण, विराधित और रामने सुग्रीवके ऊपर घोर संकट आनेपर उस किष्किधानगरको वैसे ही घेर लिया जैसे नव घन सूर्यमंडलको घेर लेते हैं ॥१-६॥

[१२] समस्त नगरका घेरा डालकर कपटी सुग्रीवके पास दूत भेजते हुए सुग्रीव, राम और लक्ष्मणने उसी क्षण यह संदेश भेजा, "बहुत कहनेसे क्या, उससे वास्तव बात इस प्रकार कहना कि जिससे वह लड़े और प्राणों सहित नष्ट हो जाय।" यह वचन सुनकर दूत कर्पूरचंद चल पड़ा मानो क्षयकालका दंड ही जा रहा हो। वहाँ उसने सभामंडपमें प्रवेश किया जहाँ दुर्जेय माया-सुग्रीव था। राम लक्ष्मणने जो संदेश भेजा था उसे तत्काल सुनाते हुए उसने कहा, "आज भी तुम अपने इस कामको मत बिगाड़ो, नहीं तो कहाँ की तारा और कहाँ का राज्य। अपने प्राणों सहित नाशको प्राप्त होओगे, तुम निश्चय ही जीवित नहीं छूट सकते ? हे विटसुग्रीव, तुम सुग्रीवका भी संदेश सुनो। उसने कहा है, "तुम्हारे सिर-कमलके साथ मैं अपना राज्य लूँगा" ॥१-६॥

[१३] यह वचन सुनते ही, उद्भट मुख दुष्ट कपटी सुग्रीवने क्रुद्ध होकर अपनी सेनाको यह आदेश दिया—"फैल जाओ,

पावहों मुण्डावहों सिर-कमलु । सहु णासें छिन्दहों भुअ-जुअलु ॥३॥
दूअहों दूअत्तणु दक्खवहों । पाहुणउ कयन्तहों पट्ठवहों' ॥४॥
पहु मन्तिहिँ दुक्खु णिवारियउ । सुग्गीव-दूउ गउ खारियउ ॥५॥
एत्तहें वि णरिन्दु ण संठियउ । णिय-सन्दण - वीढें परिट्ठियउ ॥६॥
सण्णहॅँवि स-साहणु णीसरिउ । पच्चक्खु णाइँ जमु अवयरिउ ॥७॥
पडिवक्ख - पक्ख- संक्खोहणिहिँ । णिग्गउ सत्तँहिँ अक्खोहणिहिँ ॥८॥

घत्ता

सुग्गीवहों रामहों लक्खणहों विउ-सुग्गीउ गम्पि भिडिउ ।
हेमन्तहों गिम्भहों पाउसहों णं दुक्कालु समावडिउ ॥९॥

[१४]

अब्भिट्टइँ वेण्णि मि साहणाइँ । जिह मिहुणइँ तिह हरिसिय-मणाइँ ॥१॥
जिह मिहुणइँ तिह अणुरत्ताइँ । जिह मिहुणइँ तिह पर-तत्ताइँ ॥२॥
जिह मिहुणइँ तिह कलयल-करइँ । जिह मिहुणइँ तिह मेल्लिय-सरइँ ॥३॥
जिह मिहुणइँ तिह ऊसियाहरइँ । जिह मिहुणइँ तिह सर-जज्जरइँ ॥४॥
जिह मिहुणइँ तिह जुज्झाउरइँ ॥५॥
जिह मिहुणइँ तिह अब्भुब्भडइँ । जिह मिहुणइँ तिह विहडप्फडइँ ॥६॥
जिह मिहुणइँ तिह णिरुवेवियइँ । जिह मिहुणइँ तिह पासेइयइँ ॥७॥
जिह मिहुणइँ तिह णिच्चेट्ठियइँ । णिप्फन्दइँ जुज्झन्तइँ थियइँ ॥८॥

इसको मारो, आहत-करो, इस पापीका सिरकमल काट लो, नाकके साथ इसके दोनों हाथ भी काट लो, इस दूतको दूतपन दिखाओ, इसे कृतांतका अतिथि बना दो।" तब बड़ी कठिनाईसे मंत्रियोंने, स्वामीका निवारण किया। सुग्रीवका दूत भी खारसे भरकर चला गया। यहाँ भी राजा सुग्रीव बैठा नहीं रहा और रथकी पीठपर चढ़कर, पूरी तैयारीके साथ सेनाको लेकर निकल पड़ा, मानो साक्षात् यम ही आ गया हो, प्रतिपक्ष को क्षुब्ध करने-वाली सात अक्षौहिणी सेनाके साथ उसने प्रयाण किया। इस प्रकार कपटी सुग्रीव राम लक्ष्मण और सुग्रीवसे जाकर भिड़ गया मानो दुष्काल ही हेमंत ग्रीष्म और पावसपर टूट पड़ा हो ॥१-६॥

[१४] दोनों ही सैन्यदल आपसमें टकरा गये, वैसे ही जैसे प्रसन्नचित्त मिथुन आपसमें भिड़ जाते हैं, वे वैसे ही अनुरक्त (रक्तरंजित और प्रेमपरिपूर्ण) थे जैसे मिथुन, वैसे ही परितृप्त थे जैसे मिथुन परितृप्त होते हैं। वैसे ही कलकल कर रहे थे जैसे मिथुन कलरव करते हैं, वैसे ही सर (बाणों) को छोड़ रहे थे जैसे मिथुन सर (स्वरों) को करते हैं। वैसे ही अधरोंको काट रहे थे, जैसे मिथुन अधरोंको काटते हैं, वैसे ही सरों (बाणों) से जर्जर हो रहे थे जैसे मिथुन स्वरों (सर) से क्षीण हो उठते हैं, युद्धके लिए वे वैसे ही आतुर थे जैसे मिथुन आतुर होते हैं। वे वैसे ही चकपका रहे थे जैसे मिथुन चकपकाते हैं, वैसे ही उनका मान भंग हो रहा था जैसे मिथुनोंका मान गलित हो जाता है। वैसे ही काँप रहे थे जैसे मिथुन काँप उठते हैं। वैसे ही पसीना-पसीना हो रहे थे जैसे मिथुन पसीना-पसीना हो जाते हैं। वैसे ही निश्चेष्ट हो रहे थे जैसे मिथुन निश्चेष्ट हो उठते हैं, वैसे ही निष्पंद युद्ध कर रहे थे जैसे मिथुन निष्पंद होकर लड़ते

घत्ता

तेहएँ अवसरेँ विण्णि वि वलइँ ओसारियइँ महल्लएँहिँ ।
'पर तुम्हहँहिँ खत्त-धम्मु सरेँवि जुज्झेव्वउ एक्कल्लएँहिँ' ॥९॥

[१५]

एत्थन्तरेँ सिमिरइँ परिहरेवि । खत्तिय खत्तेँ अब्भिट्ट वे वि ॥१॥
सुग्गीवेँ विडसुग्गीउ वुत्तु । 'जिह माया - कवडेँ रज्जु भुत्तु ॥२॥
खल खुद्द पिसुण तिह थाहि थाहि । कहिँ गम्मइ रहवरु वाहि वाहि' ॥३॥
तं णिसुणेँवि विप्फुरियाणणेण । दोच्छिउ जलणुक्का - पहरणेण ॥४॥
'किं उत्तिम-पुरिसहुँ एहु मग्गु । मणु असइहेँ जिह सय-वार भग्गु ॥५॥
जुज्झन्तु ण लज्जहि तो वि धिट्ठ । रणेँ पाडिउ पाडिउ लेहि चेट्ठ' ॥६॥
असहन्त परोप्परु वावरन्ति । णं पलय-महाघण उत्थरन्ति ॥७॥
पुणु वाणेँहिँ पुणु तरु-गिरिवरेहिँ । करवालेँहिँ सूलेँहिँ मोग्गरेहिँ ॥८॥

घत्ता

मायासुग्गीवेँ कुद्धएँण लउडि भमाडेँवि मुक्क किह ।
सुग्गीवहो गम्पिणु सिर-कमलेँ महिहरेँ पडिय चडक्क जिह ॥९॥

[१६]

पाडिउ सुग्गीउ गयासणिएँ । कुलपव्वउ णं वज्जासणिएँ ॥१॥
विणिवाइउ किर णिज्जीउ थिउ । रिउ-साहणेँ तूर-वमालु किउ ॥२॥
एत्तहेँ वि सु-तारहेँ पाण-पिउ । उच्चाएँवि रामहोँ पासु णिउ ॥३॥
वइदेहि - दइउ विण्णत्तु लहु । 'पइँ होन्तेँ एहावत्थ महु' ॥४॥
राहवेँण वुत्तु 'हउँ किं करमि । को मारमि को किर परिहरमि ॥५॥
वेण्णि मि समरङ्गणेँ अतुअ-वल । वेण्णि मि दुज्जय विज्जहिँ पवल ॥६॥
वेण्णि मि विण्णाण-करण-कुसल । विण्णि वि थिर-थोर-वाहु-जुअलु ॥७॥

हैं। तब उस कठिन अवसरपर मन्त्रियोंने आकर दोनों दलोंको हटाते हुए कहा, "तुम लोग क्षात्र धर्मका अनुसरणकर, अकेले ही द्वन्द्व करो !" ॥१-९॥

[१५] इसी अन्तरमें दोनों सेनाओंको छोड़कर वे दोनों क्षत्रिय क्षात्र भावसे लड़ने लगे। सुग्रीवने मायासुग्रीवसे कहा, "जिस प्रकार माया और कपटसे तुमने राज्यका भोग किया, हे खलक्षुद्र, पिशुन, उसी तरह अब ठहर, कहाँ जाता है, रथ आगे हाँक, हाँक।" यह सुनकर, तमतमाते हुए, 'जलणुक्का' शस्त्र लिये हुए माया सुग्रीवने उसकी भर्त्सना की, "क्या उत्तम पुरुषका यही मार्ग है कि जो वह असतीके मनकी तरह सौ बार भग्न हो, फिर भी धृष्ट तुम लड़ते हुए लज्जित नहीं होते, युद्धमें गिर-गिरकर फिर चेष्टा करते हो।" इस प्रकार एक दूसरेको सहन न करते हुए वे प्रहार करने लगे। मानो प्रलयके महामेघ ही उछल पड़े हों, वाणोंसे, वृक्षों और पहाड़ोंसे, करवाल, शूल और मुद्गरोंसे, उनमें युद्ध ठन गया। तब माया सुग्रीवने लकुट घुमाकर ऐसा मारा कि वह जाकर सुग्रीवके सिरकमल पर गिरा मानो महीधर पर बिजली ही टूटी हो ॥१-९॥

[१६] उस गदा-अस्त्रसे सुग्रीव वैसे ही धरतीपर गिर पड़ा जैसे वज्रसे कुलपर्वत गिर पड़ता है। गिरकर वह जब अचेतन हो गया तो शत्रुसेनामें कल-कल शब्द होने लगा। तब यहाँ भी सुताराके प्राणप्रिय असली सुग्रीवको (लोग) उठाकर रामके पास ले आये। उसने रामसे कहा, "आपके रहते मेरी यह अवस्था।" तब रामने कहा,—"मैं क्या करूँ, किसको मारूँ और किसे बचाऊँ, दोनों ही रण-प्रांगणमें अतुल वीर हैं। दोनों ही विद्याओंसे प्रबल व अजेय हैं। दोनों ही विज्ञान करनेमें कुशल हैं। दोनों ही स्थिर

वेण्णि वि वियडुण्णय- वच्छयल । वेण्णि वि पप्फुल्लिय-मुह-कमल ॥८॥

घत्ता

सयलु वि सोहइ सुग्गीव तउ जं वोल्लहि अवमाणियउ ।
महु दिट्ठिएँ कुल-वहुआएँ जिह खलु पर-पुरिसु ण जाणियउ' ॥९॥

[१७]

मणु धीरेंवि सुग्गीवहों तणउ । अवलोइउ धणुहरु अप्पणउ ॥१॥
सुकलत्तु जेम सुपणामि [य] उ । सुकलत्तु जेम आयामियउ ॥२॥
सुकलत्तु जेम दिढ-गुण-घणउ । सुकलत्तु जेम कोड्डावणउ ॥३॥
सुकलत्तु जेम णिव्वूढ - भरु । सुकलत्तु जेम पर - णिप्पसरु ॥४॥
सुकलत्तु जेम सइवरें गहिउ । घरें जणयहों जणय-सुअएँ सहिउ ॥५॥
तं वज्जावत्तु हत्थें चडिउ । अप्फालिउ दिसहिँ णाइँ रडिउ ॥६॥
णं कालें पलय-कालें हसिउ । णं जुय-खऍ सायरेण रसिउ ॥७॥
णं पडिय चडक्क खडक्क-यलें । भड कम्पिय विडसुग्गीव-वलें ॥८॥

घत्ता

तं भीसणु चावसद्दु -सुणेंवि केलि व वाएं थरहरिय ।
पर-पुरिसु रमेप्पिणु असइ जिह विज्ज सरीरहों णीसरिय ॥९॥

[१८]

मायासुग्गीउ विसालियएँ । मेल्लिउ विज्जएँ वेयालियएँ ॥१॥
णं णिद्धणु मुक्कु विलासिणिएँ । णं वर - मयलञ्छणु रोहिणिएँ ॥२॥
णं सुरवइ परिसेसिउ सइएँ । णं राहउ सीय - महासइएँ ॥३॥
णं मयण-राउ मेल्लिउ रइएँ । णं पाव-पिण्डु सासय-गइएँ ॥४॥

और स्थूल बाहु हैं। दोनोंका ही वक्षःस्थल विशाल और उन्नत है। दोनोंका ही मुखकमल खिला हुआ है। हे सुग्रीव, तुम्हारा सब कुछ उसे भी सोहता है। जो तुम कहते हो, वह मैं मानता हूँ। जैसे कुलवधू दूसरे पुरुषको नहीं पहचानती, वैसे ही मेरी दृष्टि माया सुग्रीवको पहचाननेमें असफल है" ॥१-९॥

[१७] तब रामने सुग्रीवके मनको धीरज बँधाकर अपने धनुषकी ओर देखा। जो सुकलत्रकी तरह प्रमाणित, और उसीकी तरह समर्थ था। सुकलत्रकी तरह जो दृढ़ गुण (अच्छे गुण और डोरी) से घनीभूत था। सुकलत्रकी ही तरह आश्चर्यजनक था, सुकलत्रकी तरह भार उठानेमें समर्थ था, सुकलत्रकी तरह, दूसरेके निकट अप्रसरणशील था, सुकलत्रकी तरह स्वयंवरसे गृहीत था, जनककी सुता सीताके साथ ही जिसे उन्होंने ग्रहण किया था। उस वज्रावर्तको अपने हाथमें लेकर जैसे ही चढ़ाया वह दसों दिशाओंमें गूँज उठा, मानो प्रलयकालमें काल ही अट्टहास कर उठा हो, मानो युगका क्षय होनेपर सागर ही ध्वनित हो उठा हो, मानो पहाड़पर बिजली गिरी हो। उसे सुनकर माया सुग्रीवके सैनिक काँप उठे। उस भीषण चाप-शब्दको सुनकर विद्या उसी तरह थरथर काँप उठी जैसे हवासे केलेका पत्ता, और वह सहस्रगतिके शरीरसे उसी प्रकार निकलकर चली गई जैसे असती स्त्री पर-पुरुषका रमण करके चली जाती है ॥१-९॥

[१८] विशाल वैतालिकी विद्याने माया-सुग्रीवको छोड़ दिया, मानो विलासिनीने निर्धन व्यक्तिको छोड़ दिया हो, मानो रोहिणीने चन्द्रमाको छोड़ दिया हो, मानो इन्द्राणीने देवेन्द्रको छोड़ दिया हो, मानो सीता महासतीने राम को छोड़ दिया हो, मानो रतिने मदनराजको छोड़ दिया हो, मानो शाश्वत

णं विसमगयणु हिमपव्वइएँ। धरणेन्दु णाइँ पउमावइएँ ॥५॥
णिय-विजएँ जं अवमाणियउ। सहसगइ पयडु जणेँ जाणियउ ॥६॥
जं विहडिउ सुग्गीवहों तणउ। वलु मिलिउ पडीवउ अप्पणउ ॥७॥
एक्कल्लउ पेक्खेंवि वइरि थिउ। वलएवें सर-सन्धाणु किउ ॥८॥

घत्ता

खणेँ खणेँ अणवरय-गुणड्डिएँहि तिक्खेंहिँ राम-सिलीमुहेंहिँ।
विणिभिण्णु कवडसुग्गीउ रणेँ पव्वाहारु जेम वुहेंहिँ ॥९॥

[१९]

रिउ णिवडिउ सरेंहिँ वियारियउ। सुग्गीउ वि पुरेँ पइसारियउ ॥१॥
जय - मङ्गल - तूर-णिघोसु किउ। सहुँ तारएँ रज्जु करन्तु थिउ ॥२॥
एत्तहें वि रामु परितुट्ठ-मणु। णिविसेण पराइउ जिण-भवणु ॥३॥
किय वन्दण सुह-गइ-गामियहों। भावें चन्दप्पह - सामियहों ॥४॥
'जय तुहुँ गइ तुहुँ मइ तुहुँ सरणु। तुहुँ माय वप्पु तुहुँ वन्धु-जणु ॥५॥
तुहुँ परम-पक्खु परमत्ति-हरु। तुहुँ सव्वहुँ परहुँ पराहिपरु ॥६॥
तुहुँ दंसणेँ णाणेँ चरित्तेँ थिउ। तुहुँ सयल-सुरासुरेहिँ णमिउ ॥७॥
सिद्धन्तेँ मन्तेँ तुहुँ वायरणेँ। सज्झाएँ झाणेँ तुहुँ तव-चरणेँ ॥८॥

घत्ता

अरहन्तु वुद्धु तुहुँ हरि हरु वि तुहुँ अण्णाण-तमोह-रिउ।
तुहुँ सुहुमु णिरञ्जणु परमपउ तुहुँ रवि वम्भु सयम्भु सिउ' ॥९॥

●

गतिने पापपिण्डको छोड़ दिया हो, पार्वतीने शिवको छोड़ दिया हो। मानो पद्मावतीने धरणेन्द्रको छोड़ दिया हो, अपनी विद्यासे अपमानित होनेपर सहस्रगतिका असली रूप लोगोंके सामने प्रकट हो गया। और असली सुग्रीवकी जो सेना पहले विघटित हो गई थी वह अब उसीकी सेनामें आकर मिल गई। शत्रुको एकाकी स्थित देखकर बलदेव रामने सरसन्धान किया। अनवरत डोरीपर चढ़े हुए रामके तीखे बाणोंसे कपट सुग्रीव युद्धमें उसी तरह छिन्न-भिन्न हो गया जैसे विद्वानोंके द्वारा प्रत्याहार (व्याकरणके) छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥१-६॥

[१६] इस प्रकार शत्रुको बाणोंसे विदीर्णकर रामने सुग्रीवको नगरमें प्रवेश कराया। तब जयमङ्गल और तूर्योंका निर्घोष होने लगा। सुग्रीव ताराके साथ प्रतिष्ठित होकर राजकाज करने लगा। इधर राम भी सन्तुष्ट मन होकर शीघ्र ही जिन-भवनमें पहुँचे और वहाँ उन्होंने शुभगति-गामी चन्द्रप्रभु जिनकी स्तुति की— "जय हो, तुम्हीं मेरी गति हो। तुम्हीं मेरी बुद्धि हो। तुम्हीं मेरी शरण हो, तुम्हीं मेरे माँ और बाप हो। तुम्हीं बन्धुजन हो, तुम्हीं परमपक्ष हो, तुम्हीं परमति-हरणकर्ता हो। तुम्हीं सबमें परात्पर हो। तुम दर्शन, ज्ञान और चारित्रमें स्थित हो। तुम्हारा सुरासुर नमन करते हैं। सिद्धान्त, मन्त्र, व्याकरण, सन्ध्या, ध्यान और तपश्चरणमें तुम्हीं हो। अरहन्त बुद्ध तुम्हीं हो। हरि हर और अज्ञानरूपी तिमिरके शत्रु तुम्हीं हो। तुम सूक्ष्मनिरंजन और परमपद हो, तुम सूर्य, ब्रह्मा, स्वयम्भू और शिव हो।

०

[४४. चउयालीसमो संधि]

मणु जूरइ आस ण पूरइ खणु वि सहारणु णउ करइ ।
सो लक्खणु रामाएसें घरु सुग्गीवहों पइसरइ ॥

[१]

विडसुग्गीवें समरें सर-भिण्णएँ । गएँ सत्तमएँ दिवसें वोलीणएँ ॥१॥
वुत्तु सुमित्ति - पुत्तु वलएवें । 'भणु सुग्गीउ गम्पि त्रिणु खेवें ॥२॥
तं दिट्टन्तु णिरुत्तउ जायउ । सव्वहों सीयलु कज्जु परायउ ॥३॥
जं भुञ्जाविउ रज्जु स - तारउ । कालहों फेडिउ वइरि तुहारउ ॥४॥
तं उवयारु किं पि जइ जाणहि । कन्तहें तणिय वत्त तो आणहि' ॥५॥
गउ सोमित्ति विसज्जिउ रामें । सरु पञ्चमउ मुक्कु णं कामें ॥६॥
गिरि-किक्किन्ध-णयरु मोहन्तउ । कामिणि - जण-मण- संखोहन्तउ ॥७॥
जिह जिह घरु सुग्गीवहों पावइ । तिह तिह जणु विहडप्फडु धावइ ॥८॥
ण गणइ कण्ठउ कडउ गलिण्णउ । णाइँ कुमारें मोहणु दिण्णउ ॥९॥

घत्ता

किक्किन्ध-णराहिव-केरउ दिट्ठु पुरउ पडिहारु किह ।
थिउ मोक्ख-वारें पडिकूलउ जीवहों दुप्परिणामु जिह ॥१०॥

चवालीसवीं सन्धि

सीतादेवीके वियोगमें रामका मन विसूर रहा था। उनकी आशा पूरी नहीं हो रही थी। एक भी क्षणका सहारा उन्हें नहीं मिल पा रहा था। इसलिए रामके आदेशसे लक्ष्मणको सुग्रीवके घर जाना पड़ा।

[१] जब कपट सुग्रीव युद्धमें बाणोंसे क्षत-विक्षत हो चुका और सात दिन भी व्यतीत हो गये, तब रामने लक्ष्मणसे कहा कि तुम शीघ्र जाकर सुग्रीवसे कहो। वह तो एकदम निश्चिन्त-सा जान पड़ता है। सभी दूसरेके काममें ढील करते हैं? (उससे कहना) कि तुम जो (अपनी पत्नी) तारा सहित राजका भोग कर रहे हो और जो (हमने) तुम्हारा शत्रु काल (देवता) की भेंट चढ़ा दिया है। यदि तुम उस उपकारको थोड़ा भी जानते हो तो सीतादेवीका वृत्तान्त लाकर दो। इस प्रकार रामसे विसर्जित होने पर लक्ष्मण (सुग्रीवके पास) इस वेगसे गये मानो कामदेवने अपना पाँचवाँ बाण ही छोड़ा हो। वह किष्किन्ध पर्वत और नगरको मुग्ध करता तथा कामिनीजनोंके मनको क्षुब्ध बनाता हुआ जैसे-जैसे सुग्रीवके घरके निकट पहुँच रहा था वैसे-वैसे जन-समूह हड़बड़ाकर दौड़ा। वह अपना कण्ठा, कटक और गलिण्ण नहीं देख पा रहा था। (उस समय जन-समूह) ऐसा जान पड़ रहा था मानो लक्ष्मणने संमोहन कर दिया हो। इतनेमें कुमार लक्ष्मणने किष्किन्धराज सुग्रीवके प्रतिहारको अपने सम्मुख इस प्रकार (स्थित) देखा मानो मोक्षके द्वारपर जीवका प्रतिकूल दुष्परिणाम ही स्थित हुआ हो ॥१-१०॥

[२]

'कह पडिहार गम्पि सुग्गीवहोँ। जो परमेसरु जम्बू - दीवहोँ ॥१॥
अच्छइ सो वण-वासेँ भवन्तउ। अप्पुणु रज्जु करहि णिच्चिन्तउ ॥२॥
जं तुह केरउ अवसरु सारिउ। चक्कउ पउमणाहु उवयारिउ ॥३॥
तो वरि हउँ उवयारु समारमि। विडसुग्गीव जेम तिह मारमि ॥४॥
जं संदेसउ दिण्णु कुमारेँ। गम्पिणु कहिय वत्त पडिहारेँ ॥५॥
'देव देव जो समरेँ अणिट्ठिउ। अच्छइ लक्खणु वारेँ परिट्ठिउ ॥६॥
आउ महव्वलु रामाएसें। जमु पच्छण्णु णाइँ णर-वेसें ॥७॥
किं पइसरउ किं व मं पइसउ। गम्पिणु वत्त काइँ तहोँ सीसउ' ॥८॥

घत्ता

तं वयणु सुणेवि सुग्गीवेँण मुहु पडिहारहोँ जोइयउ।
'किं केण वि गाहा-लक्खणु वारेँ महारएँ ढोइयउ ॥९॥

[३]

किं लक्खणु जं लक्ख-विसुद्धउ। किं लक्खणु जो गेय-णिवद्धउ ॥१॥
किं लक्खणु जं पाइय-कव्वहोँ। किं लक्खणु वायरणहोँ सव्वहोँ ॥२॥
किं लक्खणु जं छन्देँ णिदिट्ठउ। किं लक्खणु जं भरहेँ गविट्ठउ ॥२॥
किं लक्खणु णर-णारी-अङ्गहुँ। किं लक्खणु मायङ्ग-तुरङ्गहुँ' ॥४॥
पभणइ पुणु पडिहारु वियक्खणु। एयहुँ मज्झेँ ण एक्कु वि लक्खणु ॥५॥
सो लक्खणु जो दसरह-णन्दणु। सो लक्खणु जो पर-वल-मद्दणु ॥६॥
सो लक्खणु जो णिसियर-मारणु। सम्वु - कुमार वीर - संघारणु ॥७॥

[२] तब कुमारने उससे कहा कि तुम सुग्रीवके पास जाकर यह निवेदन करना कि जो जम्बूद्वीपके परमेश्वर हैं वह राम तो वनवासमें भटक रहे हैं और तुम निश्चिन्त होकर अपना राज्य कर रहे हो। जिस प्रकार रामने तुम्हारा अवसर साधा, उसी प्रकार अब तुम्हें उनका काम साधना चाहिए। हमने जिस तरह कपट सुग्रीवका हनन किया उसी तरह हम भी प्रत्युपकारकी तुमसे आशा रखते हैं। इस प्रकार कुमार लक्ष्मणने द्वारपालको जो कुछ संदेश दिया, उसने उसे जाकर सुग्रीवसे निवेदित करते हुए कहा, "देवदेव, संग्राममें अत्यंत अनिष्टकर कुमार लक्ष्मण द्वारपर खड़े हैं। वह रामकी आज्ञासे आये हैं। (वह ऐसे लगते हैं) मानो नररूपमें यम हों। भीतर आने दूँ उन्हें या नहीं। जाकर उनसे क्या कहूँ।" प्रतिहारके वचन सुनकर सुग्रीवने पहले उसका मुख देखा और तब कहा, "क्या कोई गाथाका लक्ष्मण (लक्षण) हमारे द्वारपर (कोई) ढो लाया है ॥१-९॥

[३] क्या लक्ष्मण (लक्षण) जो विशुद्ध लक्ष्य होता है। क्या वह लक्षण (लक्ष्मण) जो गेय-निबद्ध होता है। क्या वह लक्षण जो प्राकृत काव्यमें होता है, क्या वह लक्षण जो व्याकरणमें होता है। क्या वह लक्षण जो छंदशास्त्रमें निर्दिष्ट है। क्या वह लक्षण जो भरतकी गोष्ठीमें काम आता है। क्या वह लक्षण जो स्त्री-पुरुषोंके अंगोंमें होता है। क्या वह लक्षण जो अश्वों और गजोंमें होता है।" तब प्रतिहारने पुनः निवेदन किया, "देव-देव, इनमेंसे एक भी लक्षण नहीं है प्रत्युत वह लक्ष्मण है जो दशरथका पुत्र है। वह लक्ष्मण है जो शत्रुसेनाका संहार करनेवाला है। वह लक्ष्मण है जो निशाचरका नाशक है। वह लक्ष्मण है जो शम्बुक कुमारका

सो लक्खणु जो राम-सहोयरु । सो लक्खणु जो सीयहेँ देवरु ॥८॥
सो लक्खणु जो णरवर-केसरि । सो लक्खणु जो खर-दूसण-अरि ॥९॥
दसरह-तणउ सुमित्तिहेँ जायउ । रामें सहुँ वण-वासहोँ आयउ ॥१०॥

घत्ता

अणुणिज्जउ देव पयत्तें जाव ण कुप्पइ णिय-मणेंण ।
मं पन्थें पइँ पेसेसइ मायासुग्गीवहोँ तणेंण' ॥११॥

[४]

तं णिसुणेवि वयणु पडिहारहोँ । हियवउ भिण्णु कइद्धय-सारहोँ ॥१॥
'एहु सो लक्खणु राम-कणिट्ठउ । जासु आसि हउँ सरणु पइट्ठउ' ॥२॥
सीसु व गुरु-वयणेंहिँ उम्मूढउ । णरवइ विणय - गइन्दारूढउ ॥३॥
स-बलु स-पिण्डवासु स-कलत्तउ । चलणेहिँ पडिउ विसन्थुल-गत्तउ ॥४॥
पभणिउ कलुणु कियञ्जलि-हत्थउ । 'हउँ पाविट्ठु धिट्ठु अकियत्थउ ॥५॥
तारा-णयण-सरेंहिँ जज्जरियउ । तुम्हारउ णाउ मि वीसरियउ ॥६॥
अहोँ परमेसर पर-उवयारा । एक्क-वार महु खमहि भडारा' ॥७॥
जं पिय-वयणेंहिँ विणउ पयासिउ । णरवइ लक्खणेण आसासिउ ॥८॥
'अभउ वच्छ छुडु सीय गवेसहि । लहु विज्जाहर दस-दिसि पेसहि' ॥९॥

घत्ता

सोमित्तिहेँ वयणु सुणेप्पिणु सुहड-सहासेंहिँ परियरिउ ।
णं सायरु समयहोँ चुक्कउ किक्किन्धाहिउ णीसरिउ ॥१०॥

[५]

णराहिओ विसालयं । पराइओ जिणालयं ॥१॥
थुओ तिलोय-सामिओ । अणन्त-सोक्ख-गामिओ ॥२॥

वधकर्त्ता है। वह लक्ष्मण है जो रामका सगा भाई है। वह लक्ष्मण है जो सीता देवीका देवर है। वह लक्ष्मण है जो श्रेष्ठ मनुष्योंमें श्रेष्ठ है। वह लक्ष्मण है जो खरदूषणका हत्यारा है। वह लक्ष्मण है जो सुमित्रासे उत्पन्न दशरथका पुत्र है और जो रामके साथ वनवासके लिए आया है। हे देव ! प्रयत्नपूर्वक उसे मना लीजिए, जिससे वह कुपित न हो। और तुम्हें माया सुग्रीव के पथपर न भेज दे" ॥१-११॥

[४] प्रतिहारके उन वचनोंको सुनकर कपिध्वज शिरोमणि सुग्रीव का हृदय विदीर्ण हो गया। (वह सोचने लगा) अरे, यह वह लक्ष्मण है [रामका अनुज] जिनकी शरणमें मैं गया था। यह विचारते ही वह वैसे ही सचेत हो गया जैसे गुरुके उपदेश-वचनसे शिष्य सचेत हो जाता है। तब राजा सुग्रीव विनयरूपी हाथी पर चढ़कर, अपनी सेना-परिवार और स्त्रीके साथ जाकर व्याकुल शरीर लक्ष्मणके सिर पर गिर पड़ा। दोनों हाथ जोड़कर उसने करुण स्वरमें कहा—"हे देव, मैं बहुत ही पापात्मा धृष्ट और अकृतज्ञ हूँ। ताराके नेत्रबाणोंसे जर्जर होकर मैं आपका नाम तक भूल गया। अहो, परोपकारी परमेश्वर एक बार मुझे क्षमा कर दीजिए।" जब सुग्रीवने इतने प्रिय वचनोंमें विनय प्रकट की तो लक्ष्मणने उसे आश्वासन दिया और कहा, "वत्स, तुम्हें मैं अभय देता हूँ, शीघ्र जाकर अब सीतादेवीकी खोज करो, हरेक दिशामें विद्याधर भेज दो।" लक्ष्मणके वचन सुनकर, सहस्र सैनिकोंसे परिवृत सुग्रीव निकल पड़ा। मानो समुद्र ने ही अपनी मर्यादा विस्मृत कर दी थी ॥१-१०॥

[५] तब नराधिप सुग्रीव एक विशाल जिनालयमें पहुँचा। यहाँ उसने अनन्त सुखगामी जिन स्वामीकी स्तुति प्रारम्भ की;

'जयट्ठ-कम्म - दारणा । अणङ्ग - सङ्ग - वारणा ॥३॥
पसिद्ध - सिद्ध - सामणा । तमोह-मोह - णासणा ॥४॥
कसाय - माय - वज्जिया । तिलोय-लोय - पुज्जिया ॥५॥
मयट्ठ - दुट्ठ - मद्दणा । तिसल्ल-वेल्लि-छिन्दणा' ॥६॥
थुओ एम णाहो । विहूई - सणाहो ॥७॥
महादेव - देवो । ण तुङ्गो ण छेओ ॥८॥
ण छेओ ण मूलं । ण चावं ण सूलं ॥९॥
ण कङ्काल - माला । ण दिट्ठी कराला ॥१०॥
ण गउरी ण गङ्गा । ण चन्दो ण णागा ॥११॥
ण पुत्तो ण कन्ता । ण डाहो ण चिन्ता ॥१२॥
ण कामो ण कोहो । ण लोहो ण मोहो ॥१३॥
ण माणं ण माया । ण सामण्ण - छाया ॥१४॥

घत्ता

पणवेप्पिणु जिणवर-सामिउ सुह-गइ-गामिउ पइजारूढु णराहिवइ ।
'जइ सीयहें वत्त ण-याणमि तुम्ह पराणमि तो वल मडु सण्णास-गइ' ॥१५॥

[६]

एव भणेवि अणिट्ठिय - वाहणु । कोक्काविउ विज्जाहर - साहणु ॥१॥
'जाहु गवेसा जहिँ आसङ्कहोँ । जल-दुग्गइँ थल - दुग्गइँ लङ्कहोँ ॥२॥
पइसेँ वि दीवेँ दीउ गवेसहोँ' । गय अङ्गङ्गय उत्तर - देसहोँ ॥३॥
गवय - गवक्ख वे वि पुव्वद्धें । णल - कुन्देन्द - णील पच्छद्धें ॥४॥
दाहिणेण सुग्गीउ स-साहणु । अण्णु वि जम्ववन्तु हरिसिय-मणु ॥५॥
चलिय विमाणारूढ महाइय । णिविसें कम्बू-दीउ पराइय ॥६॥
ताव तेत्थु विज्जाहर - केरउ । कम्पइ चलइ वलइ विवरेरउ ॥७॥

"आठ कर्मोंका दलन करनेवाले आपकी जय हो। आप कामका सङ्ग निवारण करनेवाले, प्रसिद्ध सिद्ध शासनमें रहनेवाले, मोहके घन तिमिरको नष्ट करनेवाले, कषाय और मायासे रहित, त्रिलोक द्वारा पूज्य, आठ मदोंका मर्दन करनेवाले, तीन शल्योंकी लताका उच्छेद करनेवाले हैं। इस प्रकार उसने विभूतियोंसे परिपूर्ण जिननाथकी खूब स्तुति करते हुए कहा, "हे महादेव देव जिन, आपके पास न तुंग है, और न अंत है, न आदि। न चाप है न त्रिशूल। न कंकाल माला है और न भयंकर दृष्टि। न गौरी है न गंगा। न चन्द्र है न सर्प। न पुत्र है न स्त्री। न ईर्ष्या है और न चिंता। न काम है और न क्रोध। न लोभ है न मोह। न मान है और न माया। और न साधारण छाया ही है। इस प्रकार जिनवर स्वामीको प्रणाम करके सुगतिगामी सुग्रीवने यह प्रतिज्ञा की कि यदि मैं सीतादेवीका वृत्तान्त न लाऊँ और जिनको नमन न करूँ तो मेरी गति संन्यास की हो (अर्थात् मैं संन्यास ग्रहण कर लूँगा" ॥१–१५॥

[६] यह कहकर उसने अपनी अनिर्दिष्ट वाहनवाली विद्याधरसेनाको पुकारा और उसे यह आदेश दिया कि जहाँ पता लगे वहाँ जाकर सीता देवीकी खोज करो। इसपर अंग और अंगद उत्तर देशकी ओर गये। गवय और गवाक्ष आधे पूर्वकी ओर। नल, कुंद, इन्द्र और नील आधे पश्चिमकी ओर गये। स्वयं सुग्रीव अपनी सेना लेकर दक्षिणकी ओर गया। प्रसन्न मन जाम्बवंत भी उसके साथ था। आदरणीय वे दोनों विमानमें बैठकर चल पड़े। और पल भरमें कम्बू द्वीप पहुँच गये। वहाँ पर उन्होंने विद्याधर रत्नकेशीका ध्वज देखा। कंपित, चलता और विपरीत दिशामें मुड़ता हुआ दीर्घ दंडवाला और पवनसे आंदो-

दीहर-दण्डु पवण - पडिपेल्लिउ । णं जस-पुञ्जु महण्णवे मेल्लिउ ॥८॥

घत्ता

सो राएं धउ धुव्वन्तउ दीसउ णयण-सुहावणउ ।
'लहु एहु एहु' हक्कारइ णाइँ हत्थु सीयहें तणउ ॥९॥

[७]

तेण वि दिट्ठु चिन्धु सुग्गीवहों । उप्परि एन्तउ कम्बू-दीवहों ॥१॥
चिन्तइ रयणकेसि 'लइ बुज्झिउ । जेण समाणु आसि हउँ जुज्झिउ ॥२॥
सो तइलोक्क - चक्क - संतावणु । मच्छुडु आउ पडीवउ रावणु ॥३॥
कहिं णासमि कहों सरणु पइक्कमि । एयहों हउँ जीवन्तु ण चुक्कमि' ॥४॥
दुक्खु दुक्खु साहारिउ णिय मणु । 'जइ सयमेव पराइउ रावणु ॥५॥
तो किं तासु महद्धएं वाणरु । णं णं दीसइ किक्किन्धेसरु' ॥६॥
तहिं अवसरें सु-ग्गीउ पराइउ । णाइँ पुरन्दरु सग्गहों आइउ ॥७॥
'भो भो रयणकेसि किं भुल्लउ । अच्छहि काइँ एत्थु एक्कल्लउ' ॥८॥

घत्ता

सुग्गीवहों वयणु सुणेप्पिणु हियवएं हरिसु ण माइयउ ।
णव-पाउसें सलिलें सित्तउ विञ्झु जेम अप्पाइयउ ॥९॥

[८]

णिय कह कहहुँ लग्गु विज्जाहरु । अतुल - मल्लु भामण्डल-किङ्करु ॥१॥
'सामिहें जामि जाम ओलग्गएँ । दिट्ठु विमाणु ताम गयणग्गएँ ॥२॥
तहिं कन्दन्ति सीय आयण्णेंवि । धाइउ रावणु तिण-समु मण्णेंवि ॥३॥
हउ वच्छत्थलें असिवर - घाएँ । गिरि व पलोट्टिउ वज्ज-णिहाएं ॥४॥
दुक्खु दुक्खु चेयणउ लहेप्पिणु । पाडिउ विज्जा-छेउ करेप्पिणु ॥५॥

लित वह ऐसा लगता था मानो किसीका यश:पुंज ही समुद्रमें प्रक्षिप्त कर दिया गया हो। नेत्रोंको सुहावना लगनेवाला हिलता हुआ वह ध्वज उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो सीता देवीका हाथ ही उसे यह पुकार रहा हो कि शीघ्र आओ शीघ्र आओ ॥१–६॥

[७] इतनेमें विद्याधर रत्नकेशीको भी द्वीपपरसे जाते हुए सुग्रीवका ध्वज-चिह्न दिखाई दे गया। वह अपने तईं सोचने लगा कि "लो, जिसके साथ मैं अभी-अभी युद्धमें लड़ा था त्रिभुवन-संतापदायक वही रावण शायद फिरसे लौट आया है। अब मैं कहाँ भागूँ, किसको शरणमें जाऊँ। इससे मेरे प्राण बचना अब कठिन है।" इस तरह उसने मनमें यह सोचकर बड़े कष्टसे अपने आपको सम्हाला कि यदि यह रावण ही आ रहा है तो उसके ध्वजमें वानरका चिह्न कैसे हो सकता है। नहीं नहीं, यह तो किष्किंध नरेश है। ठीक इसी समय सुग्रीव वहाँ आ पहुँचा। मानो स्वर्गसे इन्द्र ही आ गया हो। उसने कहा, "अरे रत्नकेशी क्या तुम भूल गये। यहाँ एकाकी कैसे पड़े हुए हो"। सुग्रीवके यह वचन सुनकर विद्याधर रत्नकेशी मारे हर्षके फूला नहीं समाया वैसे ही जैसे नव-पावसके जलसे सिक्त होनेपर भी विंध्याचल आसावनसे नहीं अघाता ॥१–६॥

[८] तब भामंडलका अनुचर अतुल बली विद्याधर रत्न-केशीने सुग्रीवको बताया कि जब मैं अपने स्वामीकी सेवामें जा रहा था तो मुझे गगनांगनमें एक विमान दिखाई दिया। उसमें सीता देवीका आक्रंदन सुनाई पड़ा। बस मैं रावणको तृणवत् भी न समझकर, उससे भिड़ गया। उसने अपने श्रेष्ठ खड्ग चन्द्रहास से छातीमें आहत कर दिया। तब मैं वज्रसे आहत पहाड़की भाँति लोट-पोट हो गया। बड़ी कठिनाईसे जब मुझे कुछ चेतना आई

जिह जच्चन्धु दिसाउ विमुक्कउ । अच्छमि तेण एत्थु एक्कल्लउ' ॥६॥
णिसुणेंवि सीया-हरणु महागुणु । उभय-करें हिँ अवगूढु पुणुप्पुणु ॥७॥
अण्णु वि तुट्ठएण मण-भाविणि । दिण्ण विज्ज तहों णहयल-गामिणि ॥८॥

घत्ता

णिउ रयणकेसि सुग्गीवेंण जहिँ अच्छइ वलु दुम्मणउ ।
जसु मण्डएँ णाइँ हरेप्पिणु आणिउ दहवयणहों तणउ ॥९॥

[९]

विज्जाहर - कुल - भवण - पईवें । रामहों वद्धाविउ सुग्गीवें ॥१॥
'देव देव तरु दुक्ख-महाणइ । सीयहें तणिय वत्त एँहु जाणइ' ॥२॥
तं णिसुणेवि वयणु वलहद्दें । हसिउ स - विब्भमु कहकह-सद्दें ॥३॥
'भो भो वच्छ वच्छ दे साइउ । जीविउ णवर अज्जु आसाइउ' ॥४॥
एव भणेवि तेण सव्वङ्गिउ । णेह - महाभरेण आलिङ्गिउ ॥५॥
'कहें कहें केण कन्त उद्दालिय । किं भुअ किं जीवन्ति णिहालिय' ॥६॥
तं णिसुणेवि चविउ विज्जाहरु । णाइँ जिणिन्दहों अग्गएँ गणहरु ॥७॥
'देव देव कलुणइँ कन्दन्ती । हा लक्खण हा राम भणन्ती ॥८॥

घत्ता

णागिन्दि व गरुड-विहङ्गमेंण सारङ्गि व पञ्चाणणेंण ।
महु विज्जा-छेउ करेप्पिणु णिय वइदेहि दसाणणेंण ॥९॥

[१०]

तहिँ तेहएँ वि कालें भय-भीयहें । केण वि सीलु ण खण्डिउ सीयहें ॥१॥
पर-पुरिसेंहिँ णउ चित्तु लइज्जइ । वालेंहिँ जिह वायरणु ण भिज्जइ' ॥२॥
तं णिसुणेंवि विज्जाहर - वुत्तउ । कण्ठउ दिण्णु कडउ कडिसुत्तउ ॥३॥

तो उसने मेरी विद्या छेदकर मुझे यहाँ फेंक दिया। जन्मांधकी तरह मैं अब दिशा भूल गया हूँ और इसीलिए यहाँ अकेला पड़ा हूँ।" इस प्रकार सीता देवीके अपहरणकी बात सुनकर महागुणी सुग्रीवने बार-बार रत्नकेशीका आलिंगन किया तथा खूब संतुष्ट होकर उसे मनचाही आकाशगामिनी विद्या दे दी। फिर सुग्रीव रत्नकेशीको वहाँ ले गया जहाँ दुर्मन राम थे। इस प्रकार वह मानो बलपूर्वक रावणका यशःपुंज हरण कर लाया हो ॥१-६॥

[६] आकर, विद्याधर-कुल-भुवन-प्रदीप सुग्रीवने रामका अभिनंदन करते हुए निवेदन किया, "देव-देव! अब आपने दुख-रूपी महासरिताका संतरण कर लिया है। यह सीता देवीका पूरा पूरा वृत्तान्त जानता है।" उसके वचन सुनकर राम कहकहा लगाकर विभ्रमपूर्वक खूब हँसे, और फिर उन्होंने कहा, "अरे वत्स-वत्स, तुम मुझे आलिङ्गन दो। आज तुमने सचमुच मेरे जीवनको आश्वासन दिया है।" यह कहकर रामने उसका सर्वांग आलिङ्गन कर लिया और फिर पूछा, "कहो-कहो, किसने सीता देवीका अपहरण किया है। तुमने उसे मृत देखा या जीवित।" यह सुनकर विद्याधर इस प्रकार बोला मानो जिनेन्द्रके सम्मुख गणधर ही बोल रहा हो कि "हे देव-देव! वह करुण क्रन्दन करती हुई, 'हा राम' 'हा लक्ष्मण' कह रही थीं। रावण, मेरी विद्याको छेदकर उन्हें वैसे ही ले गया जैसे गरुड़ नागिनको या सिंह हरिणीको पकड़कर ले जाता है ॥१-६॥

[१०] परन्तु उस भयभीत कठोर कराल कालमें भी किसी तरह सीताका शील खंडित नहीं हुआ था। परपुरुष उसका चित्त नहीं पा सके वैसे ही जैसे मूर्ख व्याकरणका भेद नहीं कर पाते।" विद्याधरका कथन सुनकर रामने उसे कंठा, कटक और कटिसूत्र

तहिँ अवसरेँ जे गया गवेसा । आय पडीवा ते वि असेसा ॥४॥
पुच्छिय राहवेण 'वर - वीरहोँ । जम्बव अङ्गङ्गय सोण्डीरहोँ ॥५॥
अहोँ णल-णीलहोँ गवय-गवक्खहोँ । सा किं दूरेँ लङ्क महु अक्खहोँ' ॥६॥
जम्बउ कहइ हों लग्गु हलहेइहेँ । 'रक्खस - दीवहोँ सायर-वेइहेँ ॥७॥
जोयण-सयइँ सत्त विहिँ अन्तरु । तहि मि समुद्दु रउद्दु भयङ्करु ॥८॥
लङ्का - दीउ वि तेण पमाणें । कहिउ जिणिन्दें केवल - णाणें ॥९॥
तहिँ तिकूडु णामेण महीहरु । जोयणाइँ पञ्चास स - वित्थरु ॥१०॥
णव तुङ्गत्तणेण तहोँ उप्परि । थिय जोयण वत्तीस लङ्काउरि ॥११॥

घत्ता

एक्कु वि णरिन्दु णीसङ्कउ अण्णु समुद्दें परियरिउ ।
एक्कु वि केसरि दुप्पेक्खउ अण्णु पडीवउ पक्खरिउ ॥१२॥

[११]

जसु तइलोक्क-चक्कु आसङ्कइ । तेण समाणु भिडेँवि को सक्कइ ॥१॥
राहव एण काइँ आलावें । काइँ व सीयहेँ तणेँण पलावें ॥२॥
पिण्डत्थणिउ लडह - लायण्णउ । लइ महु तणियउ तेरह कण्णउ ॥३॥
गुणवइ हिययवम्म हिययावलि । सुरवइ पउमावइ रयणावलि ॥४॥
चन्दकन्त सिरिकन्ताणुद्धरि । चारुलच्छि मणवाहिणि सुन्दरि ॥५॥
सहुँ जिणवइएँ रूव-संपण्णउ । परिणि भडारा एयउ कण्णउ' ॥६॥
तं णिसुणेँवि वलएवें वुच्चइ । आयहुँ मज्झेँ ण एक्क वि रुच्चइ ॥७॥
जइ वि रम्भ अह होइ तिलोत्तिम । सीयहेँ पासिउ अण्ण ण उत्तिम' ॥८॥

घत्ता

वलएवहोँ वयणु सुणेप्पिणु किक्किन्धाहिवेण हसिउ ।
'किउ रत्तहोँ तयउ कहाणउ भोयणु मुएँवि छाणु असिउ ॥९॥

[१२]

खणेँ खणेँ वोल्लहि णाइँ अयाणउ । किं पइँ ण सुयउ लोयाहाणउ ॥१॥
जइ वि किं पि अच्छरएँ ण किज्जइ । ता किं माणुस-मेत्तें दिज्जइ ॥२॥

दिया। जो लोग सीताको खोजनेके लिए गये थे वे भी इसी अवसरपर लौटकर आ गये। तब रामने उनसे पूछा, "अरे वर वीर प्रचंड नल नील और गवय-गवाक्ष, बताओ वह लंका नगरी यहाँसे कितनी दूर है।" इसपर जाम्बवंतने रामको यह उत्तर दिया कि "लवण समुद्रके घेरेमें राक्षस द्वीप है जो सात सौ इक्कीस योजनका है। यह बात जिनेन्द्रने केवल रामसे बताई है। उस लंका द्वीपमें त्रिकूट नामका पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और पचास योजन विस्तृत है। उसपर बत्तीस योजनकी लंका नगरी है। रावण उसका एक मात्र निशंक राजा है। वह दूसरे समुद्रोंसे घिरी हुई है। एक तो सिंह देखनेमें वैसे ही भयंकर होता है दूसरे वह पक्खरिउ ? पहने हो तो ? ॥१-१२॥

[११] जिस रावणसे तीनों लोक आशंका करते हैं उससे कौन लड़ सकता है। अतः हे राघव, इस आलापसे क्या और सीता देवीके प्रति प्रलापसे क्या। मेरी पीन स्तनोंवाली और रूपमें अत्यंत सुन्दर तेरह कन्याएँ स्वीकार कर लें। उनके नाम हैं। गुणवती, हृदयवर्म, हृदयावलि, स्वरवती, पद्मावती, रत्नावली, चन्द्रकान्ता, श्रीकान्ता, अनुद्धरा, चारुलक्ष्मी, मनवाहिनी और सुन्दरी। जिनवरकी साक्षी लेकर आप इनसे विवाह कर लें।" यह सुनकर रामने कहा कि इनमेंसे मुझे एक भी नहीं रुचती। यदि रम्भा या तिलोत्तमा भी हो तो भी सीताकी तुलनामें मेरे लिए कुछ नहीं। रामके इन वचनोंको सुनकर किष्किन्धानरेश सुग्रीवने हँसते हुए निवेदन किया, "अरे तुम तो उस अनुरक्त (प्रेमी) की कहानी कह रहे हो जो भोजन छोड़कर छाँछ पसन्द करता है ॥१-६॥

[१२] तुम जो बार बार अज्ञानीकी तरह बोल रहे हो। तो क्या तुमने यह लोक-कहावत नहीं सुनी कि जो बात एक

पूसमाणु जइ सीयहें पासिउ । तो करें वयणु महारउ भासिउ ॥३॥
वरिसें वरिसें तिहुवण-संतावणु । जइ वि णेइ एक्केक्की रावणु ॥४॥
तो वि जन्ति तउ तेरह वरिसइँ । जाइँ सुरिन्द-भोग-अणुसरिसइँ ॥५॥
उप्परन्तें पुणु काइ मि होसइ' । तं णिसुणेवि वयणु वलु घोसइ ॥६॥
'मइ मारेवउ वइरि स-हत्थें । लाएवउ खर-दूसण-पन्थें ॥७॥
तिय-परिहवु सव्वहु मि गरूवउ । णं तो पइ मि सइँ जि अणुहूअउ ॥८॥

घत्ता

जो मइलिउ विहि-परिणामें ण अयस-कलङ्क-पङ्क-मलेंहिँ ।
सो जस-पडु पक्खालेवउ दहमुह-सीस-सिलायलेंहिँ' ॥९॥

[१२]

तं णिसुणेवि वुत्तु सुग्गीवें । 'विग्गहु कवणु समउ दहगीवें ॥१॥
एक्कु कुरङ्गु एक्कु अइरावउ । पाहणु एक्कु एक्कु कुल-पावउ ॥२॥
एक्कु समुद्दु एक्कु कमलायरु । एक्कु भुअङ्गमु एक्कु खगेसरु ॥३॥
एक्कु मणुसु एक्कु वि विज्जाहरु । तहोँ तुम्हहुँ वड्डारउ अन्तरु ॥४॥
जगेँ जस-पडहु जेण अप्फालिउ । गिरि कइलासु करेंहिँ संचालिउ ॥५॥
जेण महाहवें भग्गु पुरन्दरु । जमु वइसवणु वरुणु वइसाणरु ॥६॥
जेम समीरणो वि जिउ खत्तें । कवणु गहणु तहोँ माणुस-मेत्तें' ॥७॥
हरि वयणेण तेण आरुट्ठउ । णाइँ सणिच्छरु चित्तें दुट्ठउ ॥८॥

घत्ता

'अङ्गङ्गय-णल-सुग्गीवहोँ वाहु-सहेज्जा होंतु खुड्ड ।
हउँ लक्खणु एक्कु पहुच्चमि जो दहगीवहोँ जीव-खुड्डु' ॥९॥

अप्सरा नहीं कर सकती क्या वह एक मनुष्यनी कर सकती है। यदि तुम्हारा सन्तोष और तृप्ति सीता देवीसे ही संभव है तो हमारी बात मानो। जब तक रावण वर्ष वर्ष करके तेरह वर्ष निकालता है तब तक तुम भी मेरी एक एक कन्यासे एक एक वर्ष निकालो। इस प्रकार तुम्हारे तेरह वर्ष देवेन्द्रकी तरह भोग करते हुए व्यतीत हो जायँगे। उसके बाद, फिर कुछ तो भी होगा।" यह सुनकर रामने उत्तर दिया—"मैं तो शत्रुको अपने हाथ मारूँगा और उसे खर-दूषणके पथपर पहुँचाऊँगा। स्त्रीका पराभव सबसे भारी होता है। क्या स्वयं तुमने इसका अनुभव नहीं किया। भाग्यके फलोदयसे जो मेरा, यशरूपी वस्त्र, अकीर्ति और कलंकके पंकमलसे मैला हो गया है उसे मैं रावणरूपी चट्टानपर (पछाड़कर) साफ करूँगा" ॥१-६॥

[१२] यह सुनकर सुग्रीव बोला, "अरे रावणके साथ कैसी लड़ाई ? एक हिरन है तो दूसरा ऐरावत। एक पाहन है तो दूसरा कुलपावक। एक सरोवर है तो दूसरा समुद्र है। एक साँप है तो दूसरा गरुड़ है। एक मनुष्य है तो दूसरा विद्याधर। तुममें और उसमें बहुत बड़ा अन्तर है। उसने दुनियामें अपने यशका डंका बजाया है। अपने हाथसे कैलाश पर्वतको उठा लिया है। जिसने महायुद्धमें इन्द्र, यम, वैश्रणव, अग्नि और वरुणको भी परास्त कर दिया है। क्षात्रत्वमें जिसने पवनको भी जीत लिया, मनुष्यके द्वारा उसका ग्रहण कैसे हो सकता है ?" उसके वचनसे लक्ष्मण ऐसे कुपित हो उठा मानो शनिश्चर ही अपने मनमें रूठ गया हो। उसने कहा,—"अंग, अंगद, नील अपनी भुजाओंको सहेजकर बैठे रहो। जाओ। रावणके जीवनको नष्ट करनेवाला अकेला मैं लक्ष्मण ही पर्याप्त हूँ" ॥१-९॥

[१४]

तं वयणु सुणेँवि वयणुण्णएण । सुग्गीउ वुत्तु जम्बुण्णएण ॥१॥
'एँहु होइ ण कों वि सामण्णु णरु । सच्चउ पडिवक्ख - विणासयरु ॥२॥
जं चवइ सव्वु तं णिव्वहइ । को असिवरु सूरहासु लहइ ॥३॥
जो जीविउ सम्बुकहों हरइ । जो खर-दूसण-कुल-खउ करइ ॥४॥
सो रणें पहरन्तु केण धरिउ । खय-कालु दसासहों अवयरिउ ॥५॥
परमागमु णीसन्देहु थिउ । केवलिहिँ आसि आएसु किउ ॥६॥
आलिङ्गेँवि वाहहिँ जिह महिल । जो संचालेसइ कोडि-सिल ॥७॥
सो होसइ मच्चु दसाणणहों । सामिउ विज्जाहर - साहणहों' ॥८॥

घत्ता

जम्बवहों वयणु णिसुणेप्पिणु धुणिउ कुमारें भुअ-जुअलु ।
'किं एक्कें पाहण-खण्डेंण धरमि स-सायरु धरणि-यलु' ॥९॥

[१५]

तं णिसुणेवि वयणु परितुट्ठें । वुत्तु जणद्दणु वालि-कणिट्ठें ॥१॥
'जं जं चवहि देव तं सच्चउ । अण्णु वि एउ करहि जइ पच्चउ ॥२॥
तो हउँ भिच्चु होमि हियइच्छिउ । सूरहों दिवसु व वेल पडिच्छिउ' ॥३॥
तं णिसुणेवि समर - दुस्सीलेँहिँ । णरवइ वुज्झाविउ णल-णीलेँहिँ ॥४॥
'जेण सरेँहिँ खर-दूसण घाइय । पत्तिय कोडि-सिल वि उच्चाइय' ॥५॥
एम चवेवि चलिय विज्जाहर । णव - कङ्कालेँ णाइँ णव जलहर ॥६॥
लक्खण-राम चडाविय जाणेँहिँ । घण्टा - झुणि - झङ्कार-पहाणेँहिँ ॥७॥
कोडि-सिला - उद्देसु पराइय । सिद्धेँहिँ सिद्धि जेम णिज्झाइय ॥८॥

[१४] तब इन वचनोंको सुनकर जाम्बवन्तने सुग्रीवसे निवेदन किया कि शत्रुपक्षके संहारकर्त्ता इसे आप मामूली आदमी न समझें। यह जो कहते हैं कर दिखाते हैं। जिसने सूर्यहास खड्ग ग्रहण किया और जिसने शम्बूक कुमारके प्राण लिये, जिसने खर-दूषणके कुलका नाश कर दिया, युद्धमें प्रहार करते हुए उसे कौन पकड़ सकता है ? रावणके लिए मानो वह क्षयकाल ही अवतरित हुआ है। परमागम आज प्रमाणित हो गया है। केवलज्ञानियोंने बहुत पहले यह आदेश कर दिया था कि जो कोटिशिलाको संचालन वैसे ही कर लेगा जैसे कि कोई अपनी स्त्रीको बाँहोंमें भरकर आलिंगन कर लेता है, वही रावणका प्रतिद्वन्द्वी और विद्याधरोंकी सेनाका स्वामी होगा। जाम्बवन्तके इन वचनोंको सुनकर कुमार लक्ष्मणने अपना भुजकमल ठोककर कहा, "अरे एक पाषाणखण्डसे क्या, कहो तो सागरसहित धरती ही उठा लूँ" ॥१-६॥

[१५] यह वचन सुनकर, सन्तुष्ट होकर बालिके छोटे भाई सुग्रीवने कहा, "हे देव ! तुम जो कहते हो यदि वह सच है, तो इस बातको और सच करके दिखा दो तो मैं हृदयसे तुम्हारा अनुचर हो जाऊँगा, वैसे ही जैसे सूर्यका दिन या प्रतिइच्छित वेला ?" यह सुनकर युद्धमें दुःशील नल और नीलने सुग्रीवको समझाया कि जिसने बाणोंसे खरदूषणको आहत कर दिया विश्वास करो, वह कोटिशिला भी उठा देगा। यह कहकर विद्याधर चल पड़े। मानो नव पावसमें मेघ ही चल पड़े हों। घंटा ध्वनि और झंकारसे प्रमुख यानों पर राम लक्ष्मणको बैठाकर वे कोटिशिलाके प्रदेशमें पहुँचे वैसे ही जैसे सिद्ध सिद्धिका ध्यान करते हुए वहाँ पहुँचते हैं। वह शिला उन्हें ऐसी लगी मानो

घत्ता

जा सयल-काल-हिण्डन्तहुँ हुअ वण-वासेँ परम्मुहिय ।
सा एवहिँ लक्खण-रामहुँ णं थिय सिय सवडम्मुहिय ॥६॥

[१६]

लोयग्गहोँ सिव-सासय-सोक्खहोँ । जहिँ मुणिवरहुँ कोडि गय मोक्खहोँ ॥१॥
सा कोडि-सिल तेहिँ परिअञ्चिय । गन्ध - धूव-वलि-पुप्फेँहिँ अञ्चिय ॥२॥
दिण्ण स-सङ्खपडह किउ कलयलु । घोसिउ चउ-पयारु जिण-मङ्गलु ॥३॥
'जसु दुन्दुहि असोउ भामण्डलु । सो अरहन्तु देउ तउ मङ्गलु ॥४॥
जे गय तिहुयणग्गु तं णिक्कलु । ते सिद्धवर देन्तु तउ मङ्गलु ॥५॥
जेहिँ अणङ्गु भग्गु जिउ कलि-मलु । ते वर-साहु देन्तु तउ मङ्गलु ॥६॥
जो छज्जीव-णिकायहँ वच्छलु । सो दय-धम्मु देउ तउ मङ्गलु' ॥७॥
एम सु-मङ्गलु उच्चारेप्पिणु । सिद्धवरहुँ णवकारु करेप्पिणु ॥८॥
जय-जय-सद्देँ सिल संचालिय । रावण-रिद्धि णाइँ उद्दालिय ॥९॥
मुक्क पडीवी करयल-ताडिय । दहमुह-हियय-गण्ठि णं फाडिय ॥१०॥

घत्ता

परितुट्ठेँ सुरवर-लोएँण जय - सिरि-णयण-कडक्खणहोँ ।
पम्मुक्कु स इं भु व-दण्डेँहिँ कुसुम-वासु सिरेँ लक्खणहोँ ॥११॥

●

[४५. पञ्चचालीसमो सन्धि]

कोडि-सिलएँ संचालियएँ दहमुह-जीविउ संचालि (य) उ ।
णहेँ देवेँहिँ महियलेँ णरेँहिँ आणन्द-तूरु अप्फालि (य) उ ॥

[१]

रह - विमाण - मायङ्ग - तुरङ्गम- वाहणे ।
विजउ घुट्ठु सुग्गीवहोँ केरएँ साहणे ॥१॥

हमेशा विहार करनेवाले राम-लक्ष्मणसे वनवासमें विमुख होकर सीता ही इस समय शिलाके रूपमें सामने स्थित है ॥१-९॥

[१६] जिस शिलासे करोड़ों मुनि शाश्वत सुख-स्थान मोक्षको गये थे, ऐसी उस शिलाकी उन्होंने परिक्रमा दी और गन्ध, धूप, नैवेद्य और पुष्पोंसे उसकी अर्चा की, फिर शंख और पटह बजाकर कलकल शब्द किया और चार मंगलोंका इस प्रकार उच्चारण किया—"जिसके दुन्दुभि अशोक और भामण्डल हैं वे अरहंत देव मंगल करें। जो निष्कल तीनों लोकोंके अग्रभागमें स्थित हैं वे सिद्धवर तुम्हें मङ्गल दें। जिन्होंने कलिमलकी तरह कामको भी भङ्ग कर दिया है, वे वरसाधु तुम्हें मंगल दें, जो छह जीव निकायोंके प्रति ममता रखता है, वह दया-धर्म (जिनधर्म) तुम्हें मंगल दें," इस प्रकार सुमंगलोंका उच्चारणकर और सिद्धोंको नमस्कारकर, जय-जय शब्दोंके साथ उन्होंने कोटिशिला ऐसे संचालित कर दी, मानो रावणकी ऋद्धि ही उखाड़ दी हो। हाथसे उसे ताडितकर छोड़ दिया मानो रावणके हृदयकी गाँठ ही तोड़ दी हो। तब सुरलोकने भी सन्तुष्ट होकर जयश्री पानेवाले लक्ष्मणके ऊपर अपने हाथोंसे फूलोंकी वर्षा की ॥१-११॥

●

पैंतालीसवीं सन्धि

कोटिशिलाके चलित होने पर, रावणका जीवन भी डोल उठा, देवोंने आकाशमें और मनुष्योंने धरतीपर आनन्दकी दुंदुभि बजाई।

[१] विद्याधरोंने हाथ जोड़कर रामका अभिनन्दन किया। योधाओंका समूह, विश्वम्भरके जिन-मन्दिरोंकी परिक्रमा और

एत्थन्तरॅं सिरॅं लाइय करेहिँ। जोक्कारिउ वलु विज्जाहरेहिँ ॥२॥
जगेँ जिणवर-भवणइँ जाइँ जाइँ। परिअञ्चेवि अञ्चेवि ताइँ ताइँ ॥३॥
पल्लट्टु पडीवउ सुहड-पयरु। णिविसेण पत्तु किक्किन्ध-णयरु ॥४॥
एत्तियइँ कियइँ साहसइँ जइ वि। सुग्गीवहोँ मणेँ संदेहु तो वि ॥५॥
अहोँ जम्वव चरिउ महन्तु कासु। किं दहवयणहोँ किं लक्खणासु ॥६॥
कइलासु तुलिउ एक्कें पचण्डु। अण्णेक्कें पुणु पाहाण - खण्डु ॥७॥
वड्डारउ साहसु विहि मि कवणु। किं सुहगइ किं संसार-गमणु' ॥८॥
जम्ववॅण वुत्तु 'मा मणॅण मुज्झु। किं अज्ज वि पहु सन्देहु तुज्झु ॥९॥

वड्डारउ वड्डन्तरॅण परमागमु सव्वहोँ पासिउ।
जम्म-सए वि णराहिवइ किं चुक्कइ मुणिवर-भासिउ' ॥१०॥

[२]

तं णिसुणॅवि सुग्गीवहोँ हरिसिय - गत्तहो।
फिट्ट भन्ति जिण-वयणेँहिँ जिह मिच्छत्तहो ॥१॥

आगम - वलेण उवलद्धएण। अवलोइउ सेण्णु कइद्धएण ॥२॥
'किं को वि अत्थि एत्तियहँ मज्झेँ। जो खन्धु समोड्डइ गरुअ-वोज्झे ॥३॥
जो उज्जालइ महु तणउ वयणु। जो दरिसइ वलहोँ कलत्त-रयणु ॥४॥
जो तारइ दुक्ख - महाणईहेँ। जो जाइ गवेसउ जाणईहेँ' ॥५॥
तं णिसुणॅवि जम्वउ चविउ एव। 'हणुवन्तु मुएँ वि को जाइ देव ॥६॥
णउ जाणहुँ किं आरुट्ठु सो वि। जं णिहउ सम्वु खरु दूसणो वि ॥७॥
तं रोसु धरॅवि मज्झार - तणउ। रावणहोँ मिलेसइ णवर हणुउ ॥८॥
जं जाणहोँ चिन्तहोँ तं पएसु। तें मिलिएं मिलियउ जगु असेसु ॥९॥

वन्दना-भक्ति करके किष्किन्धा नगरी आधे पलमें ही चला आया। राम और लक्ष्मण यद्यपि इतने साहसका प्रदर्शन कर चुके थे फिर भी सुग्रीवके मनमें सन्देह बना रहा। उसने कहा, "अहो जाम्बवन्त बताओ महान् चरित्र किसका है, रावणका या लक्ष्मणका, एकने प्रचण्ड कैलाश पर्वत उठाया तो दूसरेने कोटिशिलाको उठा लिया। बताओ दोनोंमें साहसी कौन है? कौन शुभ गतिवाला है, और कौन संसारगामी है?" तब जाम्बवन्तने कहा, "मनमें मूर्ख मत बनो, क्या प्रभु तुम्हें आज भी सन्देह है। सबकी अपेक्षा परमागम (जिनागम) बड़ेसे भी बड़ा है। हे राजन्, क्या सैकड़ों जन्मोंमें भी मुनिवरोंका कहा झूठ हो सकता है" ॥१-६॥

[२] यह सुनकर हर्षित शरीर सुग्रीवके मनकी भ्रान्ति दूर हो गई। वैसे ही जैसे जिन वचनको सुननेसे मिथ्यादृष्टिकी भ्रान्ति मिट जाती है। आगमके बलपर इस प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जाने पर सुग्रीवने अपनी सेनाका अवलोकन करते हुए पूछा, "क्या आप लोगोंके बीचमें ऐसा कोई वीर है, जो इस गुरु भारको अपने कन्धेपर उठा सकता हो, मेरा मुख उज्ज्वल कर सकता हो, रामको उसका स्त्रीरत्न दिखा सकता हो, जो इस दुख महानदीसे तार सकता हो, और जाकर सीता देवीको खोज सकता हो"। यह सुनकर जाम्बवन्त बोला, "हे देव, हनुमान्को छोड़कर और कौन जा सकता है। यह मैं नहीं जानता कि वह भी आजकल हमसे रुष्ट क्यों हैं, शायद खरदूषण और शम्बूक मार जो दिये गये हैं। इस रोषको लेकर क्षीणमध्य हनुमान् केवल रावणसे ही मिलेगा। जो जानते हो तो उसे लानेका उपाय सोचो। क्योंकि हनुमानके मिलनेसे अशेष जग मिल जायगा। राम और रावणकी सेनामें

घत्ता

विहि मि राम-रामण-वलहुँ एक्कु वि वड्डिमउ ण दीसइ।
सहुँ जय-लच्छिएँ विजउ तहिँ पर जहिँ हणुवन्तु मिलेसइ' ॥१०॥

[३]

तं णिसुणेँवि किक्किन्ध - णराहिउ रञ्जिओ।
लच्छिभुत्ति हणुवन्तहोँ पासु विसज्जिओ ॥१॥

'पइँ मुएँवि अण्णु को वुद्धिवन्तु। जिह मिलइ तेम करि किं पि मन्तु ॥२॥
गुण-वयणेँहिँ गम्पिणु पवण-पुत्तु। भणु "एत्थु कालेँ रूसँवि ण जुत्तु ॥३॥
खर- दूसण- सम्वु पसाहियत्त। अप्पणु दुच्चरिएँहिँ मरणु पत्त ॥४॥
णउ रामहोँ णउ लक्खणहोँ दोसु। जिह तहोँ तिह सव्वहोँ होइ रोसु ॥५॥
भणु एत्तिएण कालेण काइँ। चन्दणहिहेँ चरियइँ ण वि सुयाइँ ॥६॥
लक्खण- मुक्कएँ विरहाउराएँ। खर-दूसण माराविय खलाएँ" ॥७॥
तं वयणु सुणेँवि आणन्दु हूउ। आरूढु विमाणेँ तुरन्त दूउ ॥८॥
संचल्लिउ पुलय - विसट्ट-गत्तु। णिविसद्धे लच्छीणयरु पत्तु ॥९॥

पट्टणु पवण-सुअहोँ तणउ थिउ हणुरुह-दीवेँ रवण्णउ।
महियलेँ केण वि कारणेँण ण सग्ग-खण्डु अवइण्णउ ॥१०॥

[४]

लच्छिभुत्ति तं लच्छीणयरु पईसई।
ववहरन्तु जं सुन्दरु तं तं दीसई ॥१॥

देउलवाडउ पण्णु पहिल्लउ। फोप्फलु अण्णु मूलु चेउल्लउ ॥२॥
जाइहुल्लु करहाडउ चुण्णउ। चित्तउडउ कञ्चअउ रवण्णउ ॥३॥
रामउरउ गुलु सरु पइठाणउ। अइवड्डउ भुजङ्गु वहु - जाणउ ॥४॥
अद्द-वेसु पिउ अव्वुअ - केरउ। जोव्वणु कण्णाडउ सवियारउ ॥५॥
चेलउ हरिकेलउ - सच्छायउ। वड्डायरउ लोणु विक्खायउ ॥६॥
वइरायरउ वज्ज मणि सिङ्घलु। णेवालउ कत्थूरिय - परिमलु ॥७॥
मोत्तिय - हार-णियरु सञ्जाणउ। खरु वज्जरउ तुरउ केक्काणउ ॥८॥
वर काविट्ठि सुट्ठु पउणारी। वाणि सुहासिणि णन्दुरवारी ॥९॥

एक भी बलवान् नहीं दिखाई देता। हाँ जयलक्ष्मीके साथ विजय उसीकी होगी जिसके पक्षमें हनुमान् होगा" ॥१-१०॥

[३] तब सुग्रीवने जाम्बवन्तसे कहा, "तुम्हें छोड़कर, और कौन बुद्धिमान् है, ऐसा कोई मन्त्र करो जिससे वह हमारे पक्षमें मिल जाय, गुणपूर्ण वचनोंसे जाकर हनुमानसे कहो कि इस समय रूठना ठीक नहीं, आप प्रसन्न हों, खरदूषण और शम्बुक कुमार अपने दुश्चरित्रसे ही मरणको प्राप्त हुए हैं। इसमें न तो रामका दोष है और न लक्ष्मणका। जैसे उनको रोष हुआ वैसे ही सबको रोष होता है, और यह उससे भी कहना कि क्या अभी तक तुमने चन्द्रनखाके चरित्र नहीं सुने, लक्ष्मणके द्वारा ठुकराई जाकर विरहातुरा उस दुष्टाने खरदूषणको मरवा दिया।" यह वचन सुनकर और आनन्दमग्न होकर दूतने विमानमें बैठकर प्रस्थान किया। पुलकसे विशिष्ट शरीर वह पलमात्रमें ही श्रीनगर जा पहुँचा। पवनपुत्र हनुमानका यह सुन्दर नगर हनूरुह द्वीपमें था, वह ऐसा था मानो किसी कारणसे स्वर्गका खण्ड ही धरतीपर अवतीर्ण हो ॥१-१०॥

[४] उस श्रीनगरमें पहुँचकर, लक्ष्मीभुक्तिको जो जो व्यवहार अच्छा लगा, वह उसे देखने लगा। पहले उसे देवकुल बाड़ी मिली। फिर फोप्फल, अन्यमूल, चेउल्ल, जातिफुल्ल ? करहाटक, चूर्णक, चित्तउडउ, सुन्दर कंचुक, राम उरड, गुल, सर, पैठन, बहुविज्ञ अत्यन्त बड़ा भुजंग, (विट) अर्बुदका प्रिय अर्धवेश, कन्याओंका सविकार यौवन, हरिकेलका सुन्दर कान्तिवाला कपड़ा, विख्यात बड़ा नमक, वैदूर्यमणि वज्र और सिंधल, नयपाल, ?? कत्थरिका परिमल, मोतीहार निकर, संजान, खरवज्जर, तुरग केक्कानक सुन्दर वासपूर्ण पउनारी ? सुभाषिणी वाणी णंदुरवारी और

कञ्चि-केरउ णयरु विसिट्ठउ। चीणउ णेत्तु वियड्ढेहिँ दिट्ठउ ॥१०॥
अण्णु इन्दु-वायरणु गुणिज्जइ। भूवावल्लउ गेउ झुणिज्जइ ॥११॥
एम णयरु गउ णिव्वण्णन्तउ। रायलु पवण-सुअहोँ संपत्तउ ॥१२॥

घत्ता

सो पडिहारिएँ णम्मयएँ सुग्गीव-दूउ ण णिवारिउ।
णाइँ महण्णवेँ णम्मयएँ णिय-जलपवाहु पइसारिउ ॥१३॥

[५]

दिट्ठु तेण दूरहोँ वि समीरण-णन्दणो।
सिसिर-कालेँ दिवसयरु व णयणाणन्दणो ॥१॥

सिरिसइल णरेण णिहालियउ। णं करि करिणिहिँ परिमालियउ ॥२॥
एक्केत्तहेँ एक्क णिविट्ठ तिय। वर - वीणविहत्थी पाण-पिय ॥३॥
णामेणाणङ्गकुसुम सुभुअ। सस सम्बुकुमारहोँ खरहोँ सुअ ॥४॥
अण्णेक्केत्तहेँ अण्णेक्क तिय। वर-कमल-विहत्थी णाइँ सिय ॥५॥
सा पङ्कयराय अभङ्गयहोँ। सुग्गीवहोँ सुअ सस अङ्गयहोँ ॥६॥
विहिँ पासेँहिँ वे वि वरङ्गणउ। कुवलय - दल - दीहर-लोयणउ ॥७॥
रेहइ सुन्दरु मज्झत्थु किह। विहिँ सञ्झहिँ परिमिउ दिवसु जिह ॥८॥
एत्थन्तरेँ गुज्झु ण रक्खियउ। हणुवन्तहोँ दूएँ अक्खियउ ॥९॥

घत्ता

'खेमु कुसलु कल्लाणु जउ सुग्गीवङ्गय-वीरहुँ।
अकुसलु मरणु विणासु खउ खर-दूसण-सम्बुकुमारहुँ' ॥१०॥

[६]

कहिउ सव्वु तं लक्खण-राम-कहाणउं।
दण्डयाइ मुणि-कोडि-सिला-अवसाणउं ॥१॥

तं सुणेँवि अणङ्गकुसुम डरिय। पङ्कयरायाणुराय - भरिय ॥२॥

काँचीका सुन्दर विशिष्ट नगर उसने देखा जहाँ पर विदग्ध लोग चीनी और नेत्र वस्त्र दिखा रहे थे, और भी जहाँ ऐन्द्र व्याकरणका विचार किया जा रहा था, "भूवा वल्ल गेय" हो रहा था। इस प्रकारके नगरको देखता हुआ वह गया। और हनुमानके राज-भवनमें पहुँचा। नर्बदा प्रतिहारीने सुग्रीवके दूतको भीतर आनेसे नहीं रोका, मानो नर्बदा नदीने अपना जल-प्रवाह ही समुद्रमें प्रविष्ट होने दिया हो ॥१-१३॥

[५] उसने भी दूरसे समीर-पुत्र हनुमानको देखा। मानो शिशिरकालमें नयनानन्दकारी दिवाकरको ही देखा हो। दूतने हनुमानको ऐसे देखा, मानो हाथी हथिनियोंसे घिरा हुआ बैठा हो। एक ओर एक स्त्री बैठी थी। प्राणप्रिय उसके हाथमें वीणा थी। सुबाहु वाली उसका नाम अनंगकुसुम था, वह शम्बूक-कुमारकी बहन और खरकी लड़की थी। दूसरी ओर एक और स्त्री बैठी थी जो अपने सुन्दर करकमलोंसे लक्ष्मीकी तरह जान पड़ती थी। वह अभंग सुग्रीवकी लड़की और अंगदकी बहन पुष्परागा थी। उन दोनोंके पास ही, सुन्दर अंगोंवाला, कुवलयदलकी तरह दीर्घनयन, बीचमें बैठा हुआ हनुमान ऐसा सोह रहा था मानो दोनों संध्याओंके बीचमें परिमित दिन ही हो। इसी अन्तरमें दूतने कोई बात छिपा नहीं रक्खी, हनुमानसे सब कुछ कह दिया। उसने वीर सुग्रीव, अंग और अंगदके क्षेमकुशल, कल्याण और जयका (वृत्तान्त) बताया और खरदूषण तथा शम्बुककुमारका, अकुशल, अकल्याण, विनाश और क्षय बताया ॥१-१०॥

[६] उसने राम-लक्ष्मणकी सब कहानी उन्हें सुना दी कि किस प्रकार दण्डकवनमें उन्होंने कोटिशिलाको उठा लिया। यह सुनकर अनंगकुसुम डर गई परन्तु पंकजरागा अनुरागसे भर

एक्कहें　णं वज्जासणि पडिय । अण्णेक्कहें　रोमावलि चडिय ॥३॥
एक्कहें मणें णाइँ पलेवणउ । अण्णेक्कहें पुणु　वद्धावणउ ॥४॥
एक्कहें　सरीरु णिच्चेयणउ । अण्णेक्कहें　ववगय - वेयणउ ॥५॥
एक्कहें हियवउ पलु पलु लहसिउ । अण्णेक्कहें पलु पलु ओससिउ ॥६॥
एक्कहें　ओहुल्लिउ मुह-कमलु । अण्णेक्कहें वियसिउ अहर-दलु ॥७॥
एक्कहें जल-भरियइँ लोअणइँ । अण्णेक्कहें रहस - पलोयणइँ ॥८॥
एक्कहें सरु वर-गेयहों तणउ । अण्णेक्कहें कलुणु　रुवावणउ ॥९॥
एक्कहें थिउ रायलु विमण-मणु । अण्णेक्कहें वड्डइ णाइँ　छणु ॥१०॥

घत्ता

अद्धउ　अंसु - जलोल्लियउ अद्धउ सरहसु रोमञ्चियउ ।
राउल पवण-सुयहों तणउ णं हरिस-विसाय-पणच्चियउ ॥११॥

[७]

खरहों धीय मुच्छङ्गय पुणु वि पडीविया ।
चन्दणेण　पव्वालिय पच्चुज्जीविया ॥१॥

उट्ठिय　रोवन्ति　अणङ्गकुसुम । णं चन्दण-लय　उब्भिण्ण-कुसुम ॥२॥
'हा ताय केण विणिवाइओ सि । विज्जाहरु होन्तउ घाइओ सि ॥३॥
सूराण　सूर　जस-णिक्कलङ्क । विज्जाहर - कुल-णहयल - मयङ्क ॥४॥
हा भाइ सहोयर देहि　वाय । विलवन्ति कासु पइँ मुक्क माय' ॥५॥
तं णिसुणेंवि कुसलेंहि पण्डिएहिँ । सत्थ - सत्थ　- परिचड्डिएहिँ ॥६॥
'किं ण सुउ जिणागमु जगें पगासु । जायहों जीवहों सव्वहों विणासु ॥७॥
जल-विन्दु जेम घड्डलें पडन्तु । जं दीसइ तं साहसु　महन्तु ॥८॥
साहारु ण बन्धइ पुइ　जाइ । अरहट्ट-जन्तें णव घडिय णाइँ ॥९॥

उठी। एक पर मानो वज्र ही टूट पड़ा हो तो दूसरे पर पुलक चढ़ आया। एकके मनमें प्रलोप उठा तो दूसरेके मनमें बधाईकी बात आई। एकका शरीर निश्चेतन हो गया तो दूसरीकी समस्त वेदना चली गई। एकका हृदय पल-पलमें टूटने लगा, तो दूसरी पल-पलमें श्वास लेने लगी। एकका मुखकमल कुम्हला गया, दूसरीका अधरदल हँस उठा। एककी आँखोंमें पानी भर आया, दूसरी हर्षसे देख रही थी। एकका स्वर संगीतमय हो रहा था और दूसरी करुण विलाप कर रही थी। एकका राजकुल विमन हो उठा, दूसरीका पूर्णचन्द्रकी तरह बढ़ने लगा। पवनपुत्र हनुमानके शरीरका आधा भाग आँसुओंसे आर्द्र हो रहा था और आधा हर्षसे पुलकित॥ १-११॥

[७] खरकी लड़की, बार-बार प्रदीप्त होकर मूर्छित हो गई, चन्दनका लेप करने पर उसे चेतना आई, वह विलाप करती हुई ऐसी उठी, मानो छिन्नकुसुम चन्दनकी लता ही हो। हे तात, तुम्हें किसने मार दिया। विद्याधर होकर भी तुम्हारा घात हो गया। शूरोंके भी शूर, अकलंक, यशस्वो, विद्याधरोंके कुलरूपी आकाशके चन्द्र, हे भाई, हे सहोदर, मुझसे बात करो, हे माँ, मुझ विलाप करती हुई को तुमने भी क्यों छोड़ दिया, यह सुनकर शब्द अर्थ और शास्त्रमें पारङ्गत कुशल पंडितोंने कहा, "क्या तुमने जगमें प्रसिद्ध जिनागममें यह नहीं सुना कि जो जीव उत्पन्न होता है, उसका नाश भी अवश्य होता है। जलविन्दुकी तरह धँधलमें पड़ा हुआ जीव जो कुछ देखता है, वही बहुत साहसकी बात है, उसे कोई सहारा नहीं बाँध पाता, आता और जाता है, वैसे ही जैसे

घत्ता

रोवहि काइँ अकारणेंण धीरवहि माएँ अप्पाणउ ।
अम्हहँ तुम्हहुँ अवरहु मि कदिवसु वि अवस-पयाणउ' ॥१०॥

[८]

खरहोँ धीय परिधीरविया परिवारेंणं ।
मय-जलं च देवाविय लोयाचारेंणं ॥१॥
इहेरिसम्मि वेलए । परिट्ठिए वमालए ॥२॥
समुट्ठिओऽरिमद्दणो । समीरणस्स णन्दणो ॥३॥
पलम्ब-बाहु - पञ्जरो । णिरङ्कुसो व्व कुञ्जरो ॥४॥
महीहरस्स उप्परी । विरुद्धउ व्व केसरी ॥५॥
फुरन्त-रत्त - लोयणो । सणि व्व सावलोयणो ॥६॥
दुवारसो व्व भक्खरो । जमो व्व दिट्ठि-णिट्ठुरो ॥७॥
विहि व्व किञ्चिदुट्ठिओ । ससि व्व अट्ठमो ठिओ ॥८॥
विहप्फइ व्व जम्मणेँ । अहि व्व कूर-कम्मणेँ ॥९॥

घत्ता

'मइँ हणुवन्तें कुद्धएँण कहिँ जीविउ लक्खण-रामहुँ ।
दिवसेँ चउत्थएँ पट्ठवमि पन्थेँ खर-दूसण-मामहुँ' ॥१०॥

[९]

लच्छिभुत्ति पभणिउ सुहि - सुमहुर - वायए ।
'एउ सव्वु किउ सम्बुकुमारहोँ मायए ॥१॥
देव गयण - गोयरीएँ । कामकुसुम - मायरीएँ ॥२॥
उववणं पढुक्कियाएँ । सुअ - विओय - मुक्कियाएँ ॥३॥
रावणस्स लहु - ससाएँ । काम - सर - परव्वसाएँ ॥४॥
लक्खणम्मि गय - मणाएँ । दिव्व - रूव - दावणाएँ ॥५॥

रहटयन्त्रमें लगी हुई नई घड़ियाँ आती जाती रहती हैं। तुम अकारण क्यों रोती हो। हे माँ अपनेको धीरज दो, हमारा तुम्हारा और दूसरोंका भी किसी-न-किसी दिन प्रयाण अवश्य होगा ॥१-१०॥

[८] परिवारने भी खरकी पुत्रीको धीरज बँधाया और लोकाचारके अनुसार, मृतजल भी उससे दिलवाया। इस तरहके कलकल ध्वनि बढ़नेपर शत्रुसंहारक, पवनका पुत्र हनुमान उठा, लम्बी बाहुओंसे पुष्ट ?, गजकी तरह निरङ्कुश, राजाके ऊपर सिंह की तरह क्रुद्ध, फड़कते हुए नेत्रोंवाला, वह देखनेमें शनिकी तरह था। सूर्यकी तरह दुर्निवार, यमकी तरह निष्ठुरदृष्टि, भाग्यकी तरह कुछ उठा हुआ, अष्टमीके चन्द्रकी तरह वक्र, जन्ममें बृहस्पति की तरह, क्रूरकर्ममें अहिकी तरह था वह। उसने घोषणा की,"मुझ हनुमानके क्रुद्ध होनेपर राम और लक्ष्मणका जीवन कैसे (सम्भव है) चौथे ही रोज मैं उन्हें खरदूषण मामा (ससुर) के पथपर भेज दूँगा ?" ॥१-१०॥

[९] तब लक्ष्मीभुक्ति दूतने अत्यन्त, श्रुतिमधुर वाणीमें कहा, "यह सब शम्बुकुमारकी माँने किया है। हे देव, अनंग-कुसुमकी माँ, विद्याधरी चन्द्रनखा, एक दिन उपवनमें पहुँची। रावणकी बहन उसका मन, वहाँ अपने पुत्र वियोगके दुखको भुलाकर, कुमार लक्ष्मणपर रीझ गया! अपना दिव्यरूप दिखाते हुए उसने कहा, "मेरी रक्षा करो" परन्तु उन महापुरुषोंने उसकी

परहरं समञ्चियाएँ । सुपुरिसेहिँ घञ्चियाएँ ॥६॥
विरह - दाह - भिम्भलाएँ । थण वियारिया खलाएँ ॥७॥
खरो स - दूसणो वि जेत्थु । गय रुअन्ति दुक्क तेत्थु ॥८॥
ते वि तक्खणम्मि कुइय । चन्द - भक्खर व्व उइय ॥९॥
भिडिय राम - लक्खणाहँ । जिह कुरङ्ग वारणाहँ ॥१०॥
विण्हुणा सरेहिँ भिण्ण । पडिय पायव व्व छिण्ण ॥११॥
एत्तहे वि रणेँ थिरेण । णीय सीय दससिरेण ॥१२॥
हरि वला वि वे वि तासु । गय पुरं विराहियासु ॥१३॥
एत्थु अवसरम्मि राउ । मिलिउ अङ्गयस्स ताउ ॥१४॥
विड - भडो वि राहवेण । विणिहओ अलाहवेण ॥१५॥

घत्ता

तं किउ कोडि-सिलुद्धरणु केवलिहिँ आसि जं भासिउ ।
अम्हहुँ जउ रावणहों खउ फुडु लक्खण-रामहुँ पासिउ' ॥१६॥

[१०]

कहिउ सव्वु जं चन्दणहिहेँ गुण-कित्तणु ।
अणिल-पुत्तु लज्जाविउ थिउ हेट्ठाणणु ॥१॥
जं पिसुणिउ कोडि - सिलुद्धरणु । अण्णु वि विडसुग्गीवहों मरणु ॥२॥
तं पवण - पुत्तु रोमञ्चियउ । णड्डु जिह रस-भाव-पणच्चियउ ॥३॥
कुलु णामु पसंसिउ लक्खणहों । सुर-सुन्दरि - णयण-कडक्खणहों ॥४॥
'सच्चउ णारायणु अट्ठमउ । दहवयणहों चन्दु व अट्ठमउ ॥५॥
मायासुग्गीउ जेण वहिउ । हलहरु अट्ठमउ सो वि कहिउ' ॥६॥
मणु जाणेँवि हणुवन्तहों तणउ । दूअहों हियवएँ वद्धावणउ ॥७॥
सिरु णवेँ वि णिरारिउ पिउ चवइ । सुग्गीउ देव पइँ सम्भरइ ॥८॥
अच्छइ गुण-सलिल-तिसाइयउ । तं हउँ हक्कारउ आइयउ ॥९॥

उपेक्षा कर दी, तब विरहसे विह्वल होकर उस दुष्टाने अपने स्तन विदीर्ण कर लिये और रोती-विसूरती हुई खरदूषणके पास पहुँची। वे दोनों भी तत्काल कुपित होकर, चन्द्र-सूर्यकी तरह प्रकट हुए। वे दोनों राम और लक्ष्मणसे उसी प्रकार भिड़े जिस प्रकार हरिणोंका झुण्ड सिंहसे भिड़ता है। लक्ष्मणके तीरोंसे आहत होकर वे दोनों कटे पेड़की तरह गिर पड़े। इधर रणमें अविचल रावणने छलसे सीताका हरण कर लिया। तब वहाँसे राम और लक्ष्मण विराधितके नगरको चले गये। ठीक इसी अवसरपर अंगदके पिता सुग्रीव रामसे मिले। तब रामने शीघ्र ही कपटी सुग्रीवको भी मार डाला। फिर उन्होंने उस कोटिशिलाको उठाया कि जिसके विषयमें केवलियोंने भविष्यवाणी की थी। अतः स्पष्ट है कि हमारी जय और रावणका क्षय राम-लक्ष्मणके पास है ॥१-१६॥

[१०] जब दूतने चन्दनखाके सब गुणोंका कीर्तन किया तो हनुमान लज्जित होकर मुख नीचा करके रह गया। और जो उसने कोटिशिलाका उद्धार तथा माया-सुग्रीवका मरण सुना तो वह पुलकित हो उठा। और वह नटकी तरह रसभावोंसे भरकर नाचने लगा। उसने सुर-सुन्दरियोंसे दृष्ट लक्ष्मणके कुल-नामकी प्रशंसा की, राम ही वह आठवें नारायण हैं जो रावणके लिए अष्टमीके चन्द्रकी तरह वक्र हैं। माया सुग्रीवका जिसने वध किया, उसे ही आठवाँ नारायण कहा गया है। हनुमानके मनकी बात जानकर, दूतका हृदय अभिनन्दनसे भर आया। माथा नवाकर, निराकुल होकर उसने कहा, "देव, सुग्रीवने आपको स्मरण किया है। वह आपके गुणरूपी जलके प्यासे बैठे हैं, उन्हींके कहनेपर

घत्ता

पइँ विरहिउ झुल्लुच्छुलुउ पुण्णालिहेँ चित्त व ऊणउ।
ण वि सोहइ सुग्गीव-वलु जिह जोव्वणु धम्म-विहूणउ' ॥१०॥

[११]

एह वोल्ल णिसुणेवि समीरण-णन्दणु।
स-गउ स-धउ स-तुरङ्गमु स-भडु स-सन्दणु ॥१॥
स-विमाणु स-साहणु पवण-सुउ। संचल्लिउ पुलय-विसट्ट-भुउ ॥२॥
संचल्लें हणुएँ संचल्लु वलु। णं पाउसेँ मेह-जालु स-जलु ॥३॥
णं रिसह-जिणिन्द-समोसरणु। णं णाण-समएँ देवागमणु ॥४॥
णं तारा-मण्डलु उग्गमिउ। णं णहेँ मायामउ णिम्मविउ ॥५॥
आणन्द-घोसु हणुवहों तणउ। णिसुणेवि तूरु कोड्डावणउ ॥६॥
पमयद्धय-साहणेँ जाय दिहि। घणेँ गज्जिएँ णं परितुट्ठ सिहि ॥७॥
णरवइ सुग्गीउ करेवि धुरेँ। किय हट्ट-सोह किक्किन्ध-पुरेँ ॥८॥
कञ्चण-तोरणइँ णिवद्धाइँ। घरेँ घरेँ मिहुणइँ समलद्धाइँ ॥९॥
घरेँ घरेँ परिहियइँ रवण्णाइँ। लोडइ पडिपाणिय-वण्णाइँ ॥१०॥
लहु गहिय-पसाहण सयल णर। णिग्गय सवडम्मुह अग्घ-कर ॥११॥

घत्ता

जम्वव-णल-णीलङ्गएँहिँ हणुवन्तु एन्तु जयकारिउ।
णाण-चरित्तेहिँ दंसणेँहिँ णं सिद्धु मोक्खेँ पइसारिउ ॥१२॥

[१२]

पइसरन्तु पुर पेक्खइ णिम्मल-तारइं।
घरेँ घरेँ जि मणि-कञ्चण-तोरण-वारइं ॥१॥
चन्दण-चच्चराइँ सिरिखण्डइँ। पेक्खइ पुरेँ णाणाविह-भण्डइँ ॥२॥
कुङ्कुम-कत्थूरिय-कप्पूरइँ। अगरु-गन्ध-सिल्हय-सिन्दूरइँ ॥३॥

मैं यहाँ आया हूँ, आपके बिना सुग्रीवकी सेना उसी तरह नहीं सोहती जैसे पुंश्चलीका उछलता हुआ हृदय, आधारके बिना नहीं सोहता। और जैसे धर्म-विहीन यौवन नहीं सोहता" ॥१-१०॥

[११] तब पुलकितबाहु पवनपुत्र अपने विमान और सेनाके साथ चल पड़ा। उसके चलते ही सैन्यदल भी चला। मानो पावसमें सजल मेघसमूह ही उमड़ पड़ा हो, या ऋषभ भगवानका समवशरण हो, या केवलज्ञानके उत्पन्न होनेके समय देवागम हो रहा हो, या तारामण्डल उदित हुआ हो या नभमें मायामयी रचना हो। हनुमानका आनन्दघोष और कुतूहल-जनक तूर्य सुनकर कपिध्वजियोंकी सेनामें आनन्द फैल गया, मानो मेघके गरजनेपर मयूर सन्तुष्ट हो उठा हो। राजा सुग्रीवने आगे होकर, किष्किधनगरके बाजारकी शोभा करवाई। सोनेके तोरण बाँधे गये, घर-घरमें मिथुन तैयार होने लगे। घर-घरमें सुन्दरियाँ रंग-बिरंगे सुन्दर-सुन्दर (वस्त्र) पहनने लगीं। शीघ्र ही सभी लोग सज-धजकर, और हाथोंमें अर्घ लेकर सामने निकल आये। जाम्बवन्त, नल, नील और अंग तथा अंगदने आते हुए हनुमानका इस तरह जय-जयकार किया, मानो ज्ञान दर्शन और चारित्रने ही, सिद्धको मोक्षमें प्रविष्ट किया हो ॥१-१२॥

[१२] नगरमें प्रवेश करते हुए, हनुमानने घर-घरमें निर्मल-तार वाले मणि और सुवर्णके तोरणोंसे सजे द्वार देखे। नगरमें उसने देखा कि चन्दनसे चर्चित और श्रीखंड (दही) से भरे, केशर, कस्तूरी, कपूर, अगरुगन्ध सिल्हय ?? और सिन्दूरसे

कत्थइ कत्थूरियहुँ कणिक्कउ । णं सिज्झन्ति तियउ पिय-मुक्कउ ॥४॥
अइ-वण्णुज्जलाउ णउ मिट्ठउ । णं वर-वेसउ वाहिर-मिट्ठउ ॥५॥
कत्थइ पुणु तम्बोलिय-सन्थउ । णं मुणिवर-मईउ मज्झत्थउ ॥६॥
अहवइ सुर-महिलउ वहुलत्थउ । जण-मुहमुज्झालेवि समत्थउ ॥७॥
कत्थइ पडियइँ पासा-जूअइँ । णट्टहरइँ पेक्खणइँ व हूअइँ ॥८॥
मुणिवर इव जिण-णामु लयन्तइँ । वन्दिण इव सु-दाय मग्गन्तइँ ॥९॥
कत्थइ वर-मालाहर-सन्थउ । णं वायरण-कहउ सुत्तत्थउ ॥१०॥
कत्थइ लवणइँ णिम्मल-तारइँ । खल-दुज्जण-वयणइँ व सु-खारइँ ॥११॥
कत्थइ तुप्पइँ तेल्ल-विमीसइँ । णाइँ कुमित्तत्तणइँ असरिसइँ ॥१२॥
कत्थइँ उम्मवन्ति णर-माणइँ । णं जम-दूआ आउ-पमाणइँ ॥१३॥
कत्थइ कामिणीउ मय-मत्तउ । णं रिह-वहुलउ अधिय-कडत्तउ ॥१४॥
एम असेसु णयरु वण्णन्तउ । मोत्तिय-रङ्गावलि चूरन्तउ ॥१५॥
लीलएँ पइट्ठु समीरण-णन्दणु । जहिँ हलहरु सुग्गीउ जणद्दणु ॥१६॥

घत्ता

रामहोँ हरिहेँ कइद्धयहोँ हणुवन्तु कयञ्जलि-हत्थउ ।
कालहोँ जमहोँ सणिच्छरहोँ णं मिलिउ कयन्तु चउत्थउ ॥१७॥

[१३]

राहवेण वइसारिउ णिय-अद्धासणे ।
मुणिवरो व्व थिउ णिच्चलु जिणवर-सासणे ॥१॥

अञ्चित, तरह-तरहके घड़े रखे हैं। कहीं पर, भोजन बनानेवाली स्त्रियोंका 'कनकन' शब्द हो रहा था मानो प्रियसे मुक्त स्त्री ही कुनकुना रही हो, कहीं पर अत्यन्त साफ रंगकी मिठाई थी, जो मानो वेश्याकी तरह बाहरसे मीठी थी। कहीं पर पानवालोंकी वीथी थी, मानो मुनिवरोंकी मध्यस्थ बुद्धि ही हो, अथवा बहुअर्थों से भरी हुई देवमहिला थी जो लोगोंका मुख उज्ज्वल करनेमें समर्थ थी। कहींपर जुएके पासे फेंके जा रहे थे, कहीं पर कूटद्यूत और नृत्य हो रहे थे, जो मुनिवरकी तरह जिन (जिनेंद्र और जीत) का नाम ले रहे थे, और जो बन्दीजनकी भाँति—सु-दाय [सुदान और दाँव] माँग रहे थे। कहीं पर स्वच्छ सफेद नमक रखा था। जो खल और दुष्ट मनुष्योंके वचनोंकी तरह अत्यन्त खारा था। कहीं पर उत्तम मालाकारोंकी वीथी थी जो व्याकरण और कथाकी तरह सुसूत्रित [गुथी हुई सूत्रोंसे सहित और कथासूत्रोंसे गुम्फित] थी। कहीं पर तेल मिश्रित घृत इस प्रकार रखा था मानो असमान कुमित्रता ही हो। कहीं पर मनुष्यांके मान ?? ऐसे जान पड़ते थे मानो आयु प्रमाणित करनेवाले, यमदूत हों। कहीं पर मदभरी कामिनियाँ ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानो रेखबहुल [मदकी रेखा–झुर्रियाँ] क्षीणता ही हो। इस प्रकार समस्त नगरका अवलोकन करता हुआ, और मोतियोंकी रंगावलिको चूर-चूर करता हुआ पवन-पुत्र हनुमान लीलापूर्वक वहाँ प्रविष्ट हुआ जहाँ राम, लक्ष्मण और सुग्रीव थे। उनमें हाथ जोड़े हुए हनुमान ऐसा लग रहा था मानो काल, यम और शनिमें चौथा कृतान्त हो ॥१-१७॥

[१२] रामने उसे अपने आधे आसनपर बैठाया, वह भी जिनवर शासनमें मुनिवरकी तरह निश्चल होकर उसपर बैठ गया।

एक्कहिँ णिविट्ठ हणुवन्त-राम । मण-मोहण णाइँ वसन्त-काम ॥२॥
जम्बव-सुग्गीव सहन्ति ते वि । णं इन्द-पडिन्द वइट्ठ वे वि ॥३॥
सोमित्ति-विराहिय परम मित्त । णमि-विणमि णाइँ थिर-थोर-चित्त ॥४॥
अङ्गङ्गय सुहड सहन्ति वे वि । णं चन्द - सूर-थिय अवयरेवि ॥५॥
णल-णील-णरिन्द णिविट्ठ केम । एक्कासणें जम - वइसवण जेम ॥६॥
गय-गवय-गवक्ख वि रण-समत्थ । णं वर - पञ्चाणण गिरिवरत्थ ॥७॥
अवर वि एक्केक्क पचण्ड वीर । थिय पासेंहिँ पवर - सरीर धीर ॥८॥
एत्थन्तरेँ जय - सिरि-कुलहरेण । हणुवन्तु पसंसिउ हलहरेण ॥९॥

घत्ता

'अज्जु मणोरह अज्जु दिहि महु साहणु अज्जु पचण्डउ ।
चिन्ता-सायरेँ पडियएँण जं मारुइ लद्धु तरण्डउ ॥१०॥

[१४]

पवण-पुत्तें मिलिए मिलियउ तइलोक्कु वि ।
रिउहेँ सेण्णेँ एयहोँ धुर धरइ ण एक्कु वि' ॥१॥
तं णिसुणेंवि जयकारु करन्तें । जाणइ-कन्तु वुत्तु हणुवन्तें ॥२॥
'देव देव वहु-रयण वसुन्धरि । अत्थि एत्थु केसरिहि मि केसरि ॥३॥
जहिँ जम्बव-णल-णीलङ्गङ्गय । णं मुक्कङ्कुस मत्त महागय ॥४॥
जहिँ सुग्गीवकुमार - विराहिय । अतुल-मल्ल जय-लच्छि-पसाहिय ॥५॥
गवय-गवक्ख समुण्णय-माणा । अण्ण वि सुहडेक्केक्क-पहाणा ॥६॥
तहिँ हउँ कवणु गहणु किर केहउ । सीहहुँ मज्झें कुरङ्गमु जेहउ ॥७॥
तो वि तुहारउ अवसरु सारमि । दे आएसु देव को मारमि ॥८॥
माणु मरट्टु कासु रणेँ भज्जउ । जगेँ जस-पडहु तुहारउ वज्जउ' ॥९॥

एक ओर हनुमान और राम आसीन थे, मानो मनमोहन वसन्त और काम ही हों। जाम्बवन्त और सुग्रीव भी ऐसे सोह रहे थे मानो इन्द्र और प्रतीन्द्र दोनों ही बैठे हों, परममित्र लक्ष्मण और विराधित भी, स्थिर और स्थूल चित्त नमि-विनमिकी तरह लगते थे। सुभट अङ्ग और अंगद भी ऐसे सोहते थे मानो चन्द और सूर्य ही अवतरित हुए हों। राजा नल नील ऐसे बैठे थे मानो एकासन पर यम और वैश्रवण बैठे हों, रणमें समर्थ गय, गवय और गवाक्ष भी ऐसे लगते थे मानो गिरिवरमें रहनेवाले सिंह हों, और भी एक-से-एक विशाल शरीर धीर प्रचंड वीर पास बैठे थे। इसी अन्तरमें जयश्रीके कुलगृह रामने हनुमानकी प्रशंसा करते हुए कहा, "आज ही मेरा मनोरथ सफल है, आज ही मेरा भाग्य है, आज ही मेरी सेना प्रचण्ड है, क्योंकि आज ही चिन्तासागरमें पड़े हुए मुझे हनुमानरूपी नाव मिली ॥१-१०॥

[१४] पवनपुत्रके मिलनेपर हमें त्रिलोक ही मिल गया। शत्रुकी सेनामें इसका भार कोई भी धारण नहीं कर सकता।" यह सुनकर, जयकारपूर्वक, हनुमानने रामसे कहा, "देव देव! इस वसुन्धरामें बहुतसे रत्न हैं। यहाँपर सिंहोंमें भी सिंह हैं। जहाँ जाम्बवन्त, नल, अंग और अंगद निरङ्कुश मत्त और मदगजकी तरह हैं; जहाँ सुग्रीव, कुमार विराधित, जैसे अतुल वीर जय-लक्ष्मीका प्रसाधन करनेवाले हैं। समुन्नतमान, गय और गवाक्ष हैं, और भी अनेक एक-एक सुभट प्रधान हैं उनमें मेरी गिनती वैसी ही है जैसी सिंहोंके बीचमें कुरङ्ग की। लेकिन तब भी आपके अवसरका निस्तार कर दूँगा। आदेश दीजिये किसे मारूँ, युद्धमें किसके मान और अहङ्कारको नष्टकर दुनियामें तुम्हारे यशका डङ्का

घत्ता

तं णिसुणेँ वि परितुट्ठऍण जम्ववेँण दिण्णु सन्देसउ ।
'पूरेँ मणोरह राहवहोँ वइदेहिहेँ जाहि गवेसउ' ॥१०॥

[१५]

तं णिसुणेँवि जयकारिउ सीरप्पहरणु ।
'देव देव जाएवउ केत्तिउ कारणु ॥१॥
अण्णु वि वड्डारउ स-विसेसउ । राहव किं पि देहि आएसउ ॥२॥
जेण दसाणणु जम-उरि पावमि । सीय तुहारएँ करयलें लावमि' ॥३॥
णिसुणेँवि गलगज्जिउ हणुवन्तहोँ । हरिसु पवड्ढिउ जाणइ-कन्तहोँ ॥४॥
'भो भो साहु साहु पवणञ्जइ । अण्णहोँ कासु वियम्भिउ छज्जइ ॥५॥
तो वि करेवउ मुणिवर -भासिउ । तहोँ खय-कालु कुमारहोँ पासिउ ॥६॥
ण वि पइँ ण वि मइँ ण वि सुग्गीवें । जुज्झेवउ समाणु दहगीवें ॥७॥
णवरि एक्कु सन्देसउ णेज्जहि । जइ जीवइ तो एम कहेज्जहि ॥८॥
वुच्चइ "सुन्दरि तुज्झ विओएं । झीणु करी व करिणि-विच्छोएं ॥९॥
झीणु सु-धम्मु व कलि-परिणामें । झीणु सु-पुरिसु व पिसुणालावें ॥१०॥
झीणु मयङ्कु व वर-पक्ख-क्खएँ । झीणु मुणिन्दु व सिद्धिहेँ कङ्खएँ ॥११॥
झीणु दु-राउलेण वर-देसु व । अवह-मउज्झें कइ-कव्व-विसेसु व ॥१२॥
झीणु सु-पन्थु व जण-परिचत्तउ । रामचन्दु तिह पइँ सुमरन्तउ" ॥१३॥

घत्ता

अण्ण वि लइ अङ्गुत्थलउ अहिणाणु समप्पहि मेरउ ।
आणेज्जहि सइँ भू सणउ चूडामणि सीयहेँ केरउ ॥१४॥

बजाऊँ।"यह सुनकर सन्तुष्ट मन जाम्बवन्तने सन्देश देते हुए कहा, "राघवका मनोरथ पूरा करो, और जाकर सीताकी खोज करो" ॥१-१०॥

[१५] यह सुनकर, सीर ?? से प्रहार करनेवाले हनुमानने कहा, "देव देव ! जाऊँगा, पर यह कितना सा काम है, अरे राघव, कोई बड़ा-सा विशेष आदेश दीजिये, जिससे रावणको यमपुरी भेज दूँ और सीता तुम्हारी हथेलीपर ला दूँ।" हनुमानकी महा गर्जना सुनकर राम (सीतापति) का हर्ष बढ़ गया। उन्होंने कहा, "भो भो हनुमान, साधु साधु, भला यह विस्मय और किसको सोहता है तो भी मुनिवरका कहा करना चाहिये। उसका (रावणका) विनाशकाल कुमार लक्ष्मणके पास है। इसलिए रावणके साथ लड़ना, मेरा तुम्हारा या सुग्रीवके लिए अनुचित है। हाँ, एक सन्देश और ले जाओ। यदि सीता जीवित हों तो उनसे कह देना कि राम कहते हैं कि तुम्हारे वियोगमें राम हथिनीसे वियुक्त हाथीकी तरह क्षीण हो गये हैं। राम तुम्हारे वियोगमें उसी तरह क्षीण हो गये हैं जिस तरह चुगुलखोरोंकी बातोंसे सज्जन पुरुष, कृष्ण पक्षमें चन्द्रमा, सिद्धिकी आकांक्षामें मुनि, खोटे राजासे उत्तम देश, मूर्खमण्डलीमें कविका काव्य-विशेष, मनुष्योंसे वर्जित सुपंथ, क्षीण हो जाता है। और भी उन्होंने अपनी पहचानके लिए अँगूठी दी है। और कहा है कि सीता देवीका चूड़ा लेते आना ॥१-१४॥

●

[४६. छायालीसमो संधि]

जं अक्कुत्थलउ उवलद्धु राम - सन्देसउ ।
गउ कण्टइय-भुउ सीयहेँ हणुवन्तु गवेसउ ॥

[१]

मणि - मऊह - सच्छायएँ । णिच्चं देव-णिम्मिए ।
चन्दक्रन्ति-खचिए । रयणी-चन्दे व णिम्मिए ॥१॥
चन्दसाल - साला - विसालए । टणटणन्त - घण्टा - वमालएँ ॥२॥
रणरणन्त - किङ्किणि - सुघोसए । घवघवन्त - घग्घर-णिघोसए ॥३॥
धवल - धयवडाडोय - डम्बरे । पवण - पेल्लणुव्वेल्लियम्बरे ॥४॥
छत्त - दण्ड - उद्दण्ड - पण्डुरे । चारु - चमर - पब्भार-भासुरे ॥५॥
मणि-गवक्ख - मणि-मत्तवारणे । मणि - कवाड-मणि - वार-तोरणे ॥६॥
मणि - पवाल - मुत्तालि-झुम्बिरे । भमिर - भमर - पब्भार-चुम्बिरे ॥७॥
पडह - मद्दलुल्लोल - तालए । जिणवरो व्व सुरगिरि-जिणालए ॥८॥
तहिँ विमाणेँ थिउ पवण-णन्दणो । चलिय णाइँ णहे रवि स-सन्दणो ॥९॥

घत्ता

गयणङ्गणेँ थिएँण विज्जाहर - पवर-णरिन्दहोँ ।
णाइँ सणिच्छरेँण अवलोइउ णयरु महिन्दहोँ ॥१०॥

[२]

चउ-दुवारु चउ-गोउरु चउ - पायारु पण्डुरं ।
गयण - लग्ग - पवणाहय - धय-मालाउलं पुरं ॥१॥
गिरि - महिन्द - सिहरे रमाउलं । रिद्धि - विद्धि- धण-धण्ण-संकुलं ॥२॥
तं णिएवि हणुएण चिन्तियं । 'सुरपुरं किमिन्देण घत्तियं' ॥३॥
पुच्छियारविन्दाभ - लोयणी । कहहुँ लग्ग विज्जावलोयणी ॥४॥

छयालीसवीं सन्धि

रामका सन्देश और अंगूठी पाकर, पुलकितबाहु हनुमान सीताकी खोज करने चल पड़ा।

[१] विमानमें बैठा हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशमें रथसहित सूर्य ही जा रहा हो, उसका विमान मणि किरणोंकी कांतिसे चमक रहा था, वह निशा चन्द्रके समान चन्द्रकान्त मणियोंसे जड़ा हुआ था। ऊपर, सुन्दर चन्द्रशालासे विशाल था। वह घण्टोंकी टन-टन ध्वनिसे झंकृत हो रहा था। झनझुन करती हुई किंकिणियोंसे मुखर था। घव-घव और घर-घर शब्दसे गुंजित था, हवासे उड़ती हुई, ऊपर सफेद ध्वजाओंके विस्तृत आटोपसे नाच-सा रहा था। वह, छत्रदण्डसे उन्नत, सफेद सुन्दर चमरोंके भारसे भास्वर था। उसमें मणियोंके झरोखे, छज्जे, किवाड़ और तोरणद्वार थे, तथा मणियों और प्रवालों और मोतियोंके झूमर लटक रहे थे। मड़राते हुए भ्रमरोंका समूह उसको चूम रहा था, मन्दराचल पहाड़पर स्थित जिनालयकी जिनप्रतिमाकी तरह, वह, पटह, मृदंग और उत्तालकसे सहित था। आकाशमें जाते हुए उसने विद्याधरोंके राजा महेन्द्रका नगर शनीचरकी भाँति देखा। उसमें चार द्वार, चार गोपुर और चार परकोटे थे और वह उड़ती हुई पताकाओंसे व्याप्त था॥१-१०॥

[२] महेन्द्र पर्वतपर स्थित वह नगर लक्ष्मीसे भरपूर, और धनधान्य तथा ऋद्धि-वृद्धिसे व्याप्त था। उसे देखकर हनुमानको ऐसा लगा मानो इन्द्रने स्वर्गको ही नीचे गिरा दिया हो। पूछनेपर, कमलनयनी अवलोकिनी विद्याने कहा, "देव, इस नगरमें वही महासाहसी दुष्ट और क्षुद्रहृदय राजा महेन्द्र रहता है, जिसने जनमनको आनन्द देनेवाले तुम्हारे प्रसवकालमें

'देव गब्भ - सम्भवेँ तुहारए । सव्व - जण - मणाणन्द- गारए ॥५॥
जेण घल्लियं जण - पसूयणे । वग्घ - सिङ्घ - गय-संकुले वणे ॥६॥
सो महिन्दु णिव्वूढ - साहसो । वसइ एत्थु खलु खुद्द-माणसो ॥७॥
एह णयरि माहिन्द - णामेँणं । कामपुरि व णिम्मविय कामेँणं' ॥८॥
तं सुणेवि बहु - भरिय - मच्छरो । मीण - रासि णं गउ सणिच्छरो ॥९॥

घत्ता

अमरिस - कुद्धएँ ण मणे चिन्तिउ 'गवणु विवज्जमि ।
आयहोँ आहयणेँ लइ ताम मडप्फरु भञ्जमि' ॥१०॥

[३]

तक्खणेँ जेँ पण्णत्ति-बलेण विणिम्मियं बलं ।
रह-विमाण-मायङ्ग-तुरङ्गम - जोह-संकुलं ॥१॥
मेह - जालमिव विज्जुलुज्जलं । पडह - मन्दलुद्दाम - गोन्दलं ॥२॥
धुद्धुवन्त - सय - सङ्ख - संघडं । धवल - छत्त - धुव्वन्त-धयवडं ॥३॥
मत्त-गिल्ल-गिल्लोल - गय - घडं । कण्ण - चमर - चल्लन्त-मुहवडं ॥४॥
हिलिहिलन्त - तुरयाणणुब्भडं । तुट्ट - फुट्ट - घड - सुहड-सङ्कडं ॥५॥
कलयलारउग्घुट्ठ - भड-थडं । झसर-सत्ति - सव्वलि-वियावडं ॥६॥
तं णिएवि पर-बल-पलोट्टणे । खोहु जाउ माहिन्द-पट्टणे॥७॥
भड विरुद्ध सण्णद्ध दुद्धरा । परसु - चक्क - मोग्गर - धणुद्धरा ॥८॥
बद्ध - परिकराकार भासुरा । कुरुड - दिट्ठि - दट्ठोट्ठ-णिट्ठुरा ॥९॥

घत्ता

स-बलु महिन्द-सुउ सण्णहेँवि महा-भय-भीसणु ।
हणुवहोँ अब्भिडिउ विब्भइरिहे जेम हुआसणु ॥१०॥

[४]

मरु-महिन्द-णन्दण - बलाण जाअं महाहवं ।
चारु-जय - सिरी-रामालिङ्गण-पसर - लाहवं ॥१॥

तुम्हारी माँ को, जनशून्य, वनगजों और सिंहोंसे संकुल जंगलमें छुड़वा दिया। यह माहेन्द्र नामकी नगरी है जिसे कामदेवने कामनगरीकी तरह निर्मित किया है।" यह सुनकर, हनुमान बहुत भारी मत्सरसे भर उठा मानो शनीचर ही मीन राशिमें पहुँच गया हो। अमर्षसे क्रुद्ध होकर उसने विचार किया कि गमन स्थगितकर पहले मैं युद्धमें इस राजाका अहंकार चूर-चूरकर दूँ ॥१-१०॥

[३] उसने तत्काल विद्याके बलसे रथ, विमान, हाथी, घोड़ों और योधाओंसे संकुल सेना गढ़ ली। जो बिजलीसे चमकते हुए मेघजालकी तरह, पटह और मृदंगोंसे अत्यन्त मुखर थी। बजते हुए सैकड़ों शंखोंसे संघटित थी। धवल छत्र और उड़ते हुए ध्वजपटोंसे सहित, मुखपर कानके चमरोंको डुलाते हुए, और मद झारते हाथियोंकी घटासे व्याप्त, हिनहिनाते हुए अश्वमुखोंसे उत्कट, संतुष्ट और स्फुट शरीरवाले सुभटोंसे संकुल, और झसर, शक्ति तथा सव्वलसे व्याप्त उस सेनाको देखकर, शत्रुसेनाका संहार करनेवाले महेन्द्रनगरमें क्षोभ फैल गया। दुर्धर कठोर योधा तैयार होने लगे। फरसा, चक्र, मुद्गर और धनुष लेकर, आकारमें भयंकर सैनिक घेरे बनाने लगे। उनकी दृष्टि कठोर थी और वे निष्ठुर दाँतोंसे अधर काट रहे थे। महाभयसे भीषण, राजा महेन्द्रका पुत्र भी सेनाके साथ तैयार होकर, हनुमानसे वैसे ही भिड़ गया मानो जैसे विंध्याचलमें आग लग गई हो ॥१-१०॥

[४] पवनञ्जय और महेन्द्रराजके पुत्रोंकी सेनाओंमें घमासान लड़ाई होने लगी। वे दोनों ही सुन्दर विजयलक्ष्मीका आलिंगन करनेके लिए शीघ्रता कर रहे थे। आक्रमणकी हनहनाकारसे युद्धमें

कहीँ वि कवउ कासु कडिल्लयं । कहो वि कञ्चयं संकडिल्लयं ॥६॥
एम पवर - हुअवह - फुलुक्कियं । रिउ - वलं गयं घोण - वङ्कियं ॥७॥
णवर एक्कु माहिन्दि थक्कओ । केसरि व्व केसरिहिँ ढुक्कओ ॥८॥
वारुणत्थु सन्धइ ण जावँहिँ । रोसिएण हणुएण तावँहिँ ॥९॥

घत्ता

कयण-समुज्जलेँहिँ तिहिँ सरेँहिँ सरासणु ताडिउ ।
दुज्जण-हियउ जिह उच्छिन्दें वि धणुवरु पाडिउ ॥१०॥

[६]

अवरु चाउ किर गेण्हइ जाम महिन्द-णंदणो ।
मरु-सुएण विद्धंसिउ ताव सरेहिँ सन्दणो ॥१॥
खण्ड-खण्ड-क्किए रहवरावीढए । वर-तुरङ्गम-जुए पडिएँ भय-गीढए ॥२॥
मोडिए छत्त-दण्डे धए छिण्णए । लहु विमाणे समारूढु विच्छिण्णए ॥३॥
तं पि हणुवेण वाणेहिँ णिण्णासियं । णरय-दुक्खं व सिद्धेहिँ विद्धंसियं ॥४॥
णिग्गओ विप्फुरन्तो णिरत्थो णरो । णाइँ णिग्गन्थ-रूओ थिओ मुणिवरो॥५॥
पवण-पुत्तेण घेत्तूण रिउ वद्धओ । वर-भुयङ्गु व्व गरुडेण उद्दुद्धओ ॥६॥
पुत्तेँ वेहे सुए सवर-वावारिओ । अणिल-पत्तो महिन्देण हक्कारिओ ॥७॥
अञ्जणा-पियर- पुत्ताण दुद्दरिसणो । संपहारो समालग्गु भय-भीसणो ॥८॥
खग्ग-तिक्खग्ग-वर-मोग्गरुग्गामणो । सेल्ल- वावल्ल - भल्लाइ-सङ्कावणो ॥९॥

कहींपर किसीका सिर जलने लगा, कहीं किसीका कवच और कटिसूत्र। कहीं किसीका, शृंखलासहित कवच खिसक गया। इस प्रकार आगकी प्रचण्ड ज्वालामें शत्रुसेनाकी नाक घूमने लगी ? केवल महेन्द्र-पुत्र ही शेष रहा। वह पवनपुत्रके पास इस प्रकार पहुँचा मानो सिंहके पास सिंह पहुँचा हो। वह जब तक अपने वरुण तीरका संधान करता तब तक पवन-पुत्र हनुमानने रुष्ट होकर अपने स्वर्णिम तीरोंसे उसे आहत कर दिया। तथा दुर्जनके हृदयकी तरह उसके श्रेष्ठ धनुषको छिन्न-भिन्न कर गिरा दिया ॥१-१०॥

[६] और जब तक महेन्द्रपुत्र दूसरा धनुष ले, तबतक हनुमानने तीरोंसे उसका रथ छेद डाला। उसके श्रेष्ठ रथकी पीठ टूक-टूक होने पर, जुते हुए अश्व गिर पड़े। छत्र-दंड झुक गया। पताका छिन्न-भिन्न हो गई। तब महेन्द्रपुत्र दूसरे विमानपर जाकर बैठ गया। किन्तु पवनपुत्रने उसे तीरोंसे उसी प्रकार नष्ट कर दिया जिस प्रकार सिद्ध पुरुष नरकके घोर दुखोंको नष्ट कर देते हैं ॥१-४॥

तब महेन्द्रपुत्र अस्त्रहीन होकर ही तमतमाता हुआ निकला, अब वह निर्ग्रंथ मुनिकी भाँति प्रतीत हो रहा था। किंतु हनुमानने उसे आहतकर बाँध लिया। उसे उसने वैसे ही उठा लिया जैसे गरुड़ पक्षी साँपको उठा लेता है। इस प्रकार अपने पुत्रके आहत और बद्ध हो जानेपर राजा महेन्द्रने युद्धरत पवनपुत्र हनुमानको ललकारा, और प्रहरणशील दुर्दर्शनीय और भयभीषण वह, अंजनाके प्रियपुत्र हनुमानसे आकर भिड़ गया। उसके हाथमें खड्ग, और नुकीले तेज मुद्गर थे। खेल्ल वावल्ल और भालेसे

घत्ता

पढम-भिडन्तएँण सर-पञ्जरु मुक्कु महिन्दें।
छिण्णु कइद्धएँण जिह भव-संसारु जिणिन्दें ॥१०॥

[७]

छिण्णु जं जें जर-पञ्जरु रणउहॅ पवण-जाएँण।
धगधगन्तु अग्गेउ विमुक्कु महिन्द-राएँणं ॥१॥
दुद्धुवन्तु जालऽसणि-घोसणो। जलजलन्तु जालोलि-भीसणो ॥२॥
दिट्ठु वाणु जं पवण-पुत्तेंणं। वारुणत्थु मेल्लिउ तुरन्तेंणं ॥३॥
जिह घणेण गलगजमाणेंणं। पसमिओ वि गिम्भो व्व णाएँणं ॥४॥
वायवो महिन्देण मेल्लिओ। पवण-पुत्तु तेण वि ण भेल्लिओ ॥५॥
चाव-लट्ठि घत्तें वि तुरन्तेणं। वड-महद्दुमो विप्फुरन्तेंणं ॥६॥
मेल्लिओ महा - वहल - पत्तलो। कढिण - मूलु थिर - थोर-गत्तलो ॥७॥
खण्डु खण्डु किउ पवण - पुत्तेंणं। कुकइ - कव्व - वन्धो व्व धुत्तेंणं ॥८॥
णवर मुक्कु महिहरु विरुद्धेंणं। सो वि छिण्णु णरउ व्व सिद्धेंणं ॥९॥

घत्ता

जं जं लेइ रिउ तं तं हणुवन्तु विणासइ।
जिह णिल्लक्खणहों करें एक्कु वि अत्थु ण दीसइ ॥१०॥

[८]

अञ्जणाएँ जणणेण विलक्खीहूय- चित्तेंणं।
गय विमुक्क भामेप्पिणु कोवाणल-पलित्तेंणं ॥१॥
तेण लउडि - दण्डाहिघाएँणं। तरुवरो व्व पाडिउ दुवाएँणं ॥२॥
गिरि व वज्जेंणं दुण्णिवारेंणं। अणिल - पुत्तु तिह गय-पहारेंणं ॥३॥

सचमुच वह आशंका उत्पन्न कर रहा था। पहली ही भिड़ंतमें राजा महेन्द्रने तीरोंकी बौछार की। किन्तु कपिध्वज हनुमानने उसे वैसे ही छेद दिया जिस प्रकार जिनेन्द्र भव-संसारको छेद देते हैं ॥१–१०॥

[७] युद्ध-मुखमें जब हनुमानने इस प्रकार तीरोंको नष्ट कर दिया तब राजा महेन्द्रने धकधक करता हुआ आग्नेय बाण छोड़ा तब हनुमानने भी लपटें उड़ाते वज्रघोष करते हुए ज्वालमालासे भीषण उस तीरको देखकर, तुरन्त अपना वारुण बाण छोड़ा। उसने आग्नेय वाणको वैसे ही ठंडा कर दिया जैसे गरजता हुआ मेघ ग्रीष्म कालको ठंडा कर देता है। राजा महेन्द्रने वायु बाण जोड़ा, पवनपुत्र उससे भी नहीं डरा। तब उसने अपनी चापयष्टि डालकर और तमतमाकर, मजबूत जड़वाला स्थिर तथा स्थूल आकारका प्रचुर पत्तोंवाला विशाल वटवृक्ष फेंका। किंतु हनुमानने उसके भी वैसे ही सौ टुकड़े कर दिये जैसे धूर्त कुकविके काव्यबंधके टुकड़े-टुकड़े कर देता है। तब राजा महेन्द्रने पहाड़ उछाला परन्तु हनुमानने उसे भी वैसे ही काट दिया जैसे सिद्ध नरकको काट देते हैं। इस प्रकार राजा जो भी लेता हनुमान उसे ही नष्ट कर देता उसी प्रकार जिस प्रकार लक्षणहीन व्यक्तिके हाथमें प्रत्येक अर्थ नष्ट हो जाता है ॥१–१०॥

[८] यह देखकर अंजनाका पिता राजा महेन्द्र अपने मनमें व्याकुल हो उठा। उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसने घुमाकर गदा मारी। उस लकुटिदंडके प्रहारसे हनुमान उसी प्रकार गिर पड़ा, जिस प्रकार दुर्वातसे वृक्ष गिर पड़ता है। उस गदाके प्रहारसे हनुमान उसी तरह गिर गया जिस प्रकार दुर्निवार वज्रके आघातसे पहाड़। हनुमानके इस प्रकार गिरनेपर आकाश-

णिवडिए सिरीसेलें विम्भलें। जाय वोल्ल सुरवरहँ णहयले ॥४॥
णिप्फलं गयं हणुव-गज्जियं। घण-समूहमिव सलिल-वज्जियं ॥५॥
राम-दूअकज्जं ण साहियं। जाणईहें वयणं ण चाहियं ॥६॥
रावणस्स ण वणं विणासियं। विहलु आसि केवलिहिँ भासियं ॥७॥
एव वोल्ल सुर-सत्थें जावँ हिँ। हणुउ हूउ सज्जीउ तावँ हिँ ॥८॥
उट्ठिओ सरासण-विहत्थओ। सरवरेहिँ किउ रिउ णिरत्थओ ॥९॥

घत्ता

मण्ड कइद्धएँण सर-पन्जरें छुहँवि रउद्दें।
धरिउ महिन्दु रणें णं गङ्गा-वाहु समुद्दें ॥१०॥

[९]

कुद्धएण समरङ्गणें माया-वइर-हेउणा।
धरिय वे वि माहिन्दि-महिन्द कइद्ध-केउणा ॥१॥
माणु मलेवि करँवि कडमद्दणु। चलणेंहिँ पडिउ समीरण-णन्दणु ॥२॥
'अहों माहिन्द माम मरुसेज्जहि। जं विमुहिउ तं सयलु खमेज्जहि ॥३॥
अहों अहों ताय ताय रिउ-भञ्जण। णिय-सुय तं वीसरिय किमञ्जण ॥४॥
हउँ तहें तणउ तुज्झु दोहित्तउ। णिम्मल-वंसु समुज्जल-गोत्तउ ॥५॥
भग्गु मरट्टु जेण रणें वरुणहों। हउँ हणुवन्तु पुत्त तहों पवणहों ॥६॥
पेसिउ अब्भत्थेंवि सुग्गीवें। रामहों हिउ कलत्तु दहगीवें ॥७॥
दूअ-कज्जें संचल्लिउ जावँ हिँ। पट्टणु दिट्ठु तुहारउ तावँ हिँ ॥८॥
माया-वइरु असेसु विवुज्झिउ। तें तुम्हहिँ समाणु मइँ जुज्झिउ' ॥९॥

घत्ता

तं णिसुणेंवि वयणु विज्जाहर-णयणाणन्दें।
णेह-महाभरेंण मारुइ अवगूढु महिन्दें ॥१०॥

तलमें देवतालोगोंमें बातें होने लगीं—"अरे निर्जल मेघकुलके समान हनुमान का गरजना व्यर्थ गया। रामका न तो वह दौत्य ही साध सका, और न उन्हें सीता देवीका मुख दिखा सका। रावणके वनका नाश भी नहीं किया अतः केवलज्ञानियोंका कहा हुआ विफल हो गया"। जब सुरसमूहमें इस प्रकार बातें हो रहीं थीं कि इतनेमें हनुमान फिरसे तैयार हो गया। हाथमें धनुष लेकर वह उठा और तीरोंसे उसने राजा प्रह्लादको निरस्त्र कर दिया। रौद्र कपिध्वजी हनुमानने सहसा युद्धमें क्षुब्ध होकर अपने तीरोंकी बौछारसे राजा प्रह्लादको उसी प्रकार अवरुद्ध कर दिया जिस प्रकार गंगाके प्रवाहको समुद्र अवरुद्ध कर देता है ॥१-१०॥

● [६] इस प्रकार माताकी शत्रुताके कारण क्रुद्ध होकर हनुमानने युद्धप्रांगणमें ही राजा प्रह्लाद और उसके पुत्र महेन्द्रको पकड़ लिया। इस प्रकार मानमर्दनकर और संहार मचाकर हनुमान् राजाके चरणोंमें गिर पड़ा। वह बोला, "राजन्, मनमें बुरा न मानिए। जो कुछ भी मैंने बुरा किया है उसे क्षमा कर दीजिए। अरे शत्रुसंहारक तात, क्या तुम अपनी पुत्री अंजनाको भूल गये। मैं उसीका पुत्र, तुम्हारा नाती हूँ। मेरा वंश निर्मल और गोत्र समुज्ज्वल है। फिर मैं उसी पवनञ्जयका पुत्र हूँ जिसने युद्धमें वरुणका अहंकार नष्ट किया था। सुग्रीवने रावणसे अभ्यर्थना करनेके लिए मुझे भेजा है। उसने रामकी पत्नीका हरण कर लिया है। मैं दूतकर्मके लिए जा रहा था कि मार्गमें आपका नगर दीख पड़ा। बस, मुझे माताजीके वैरका स्मरण हो आया। इसीसे आपके साथ युद्ध कर बैठा हूँ। यह सुनते ही विद्याधरोंके नयनप्रिय राजा महेन्द्रने स्नेह-विह्वल होकर हनुमानका जीभर आलिङ्गन किया ॥१-१०॥

[१०]

'साहु साहु भो सुन्दर सुउ सच्चउ जेँ पवणहो ।
पइँ मुएवि सुहडत्तणु अण्णहोँ होइ कवणहो ॥१॥
जो सत्तु - सङ्गाम - लक्खेहिँ जस - णिलउ ।
जो उभय- कुल- दीवओ उभय- कुल-तिलउ ॥२॥
जो उभय - वंसुज्जलो ससि व अकलङ्कु ।
जो सीहवर - विक्कमो समरेँ णीसङ्कु ॥३॥
जो दस - दिसा - वलय - परिचत्त-गय-णामु
जो मत्त - मायङ्ग - कुम्भत्थलायामु ॥४॥
जो पवर - जयलच्छि - आलिङ्गणावासु
जो सयल - पडिवक्ख-दुप्पेक्ख-णिण्णासु ॥५॥
जो कित्ति - रयणायरो जस - जलावत्तु
जो वीर - णारायणो जयसिरी - कन्तु ॥६॥
जो सयण - कप्पद्दुमो सच्च - अचलेन्दु
जो पवर - पहरण - फडा-डोय-भुअइन्दु ॥७॥
जो माण - विञ्झइरि अहिमाण - सयु- सिहरु
धणुवेय - पञ्चाणणो वाण - णह-णियरु ॥८॥
जो अरि - कुरङ्गोह - णिट्टवण - दुग्घोट्टु
पडिवक्ख-जलवाहिणी-सिसिर-जल-घोट्टु ॥९॥

घत्ता

जो केण वि ण जिउ आसङ्क - कलङ्क - विवज्जिउ ।
सो हउँ आहयणेँ पइँ एक्कें णवरि परज्जिउ' ॥१०॥

[११]

एउ वयणु णिसुणेप्पिणु दुद्दम-दणु-विमद्दणो ।
'कवणु एत्थु किर परिहवु' भणइ घणारिणन्दणो ॥१॥
'तुहुँ देव दिवायरु तेय-पिण्डु । हउँ किं पि तुहारउ किरण-सण्डु ॥२॥
तुहुँ वर-मयलञ्छणु भुवण-तिलउ । हउँ किं पि तुहारउ जोण्ह-णिलउ ॥३॥
तुहुँ पवर - समुद्दु समुद्द-सारु । हउँ किं पि तुहारउ जल-तुसारु ॥४॥
तुहुँ मेरु - महीहरु महिहरेसु । हउँ किं पि तुहारउ सिल-णिवेसु ॥५॥

[१०] वह बोला, "साधु-साधु, तुम पवनञ्जयके सच्चे पुत्र हो, तुम्हें छोड़कर, और किसमें इतनी वीरता हो सकती है, जो सैकड़ों शत्रु-युद्धोंमें यशका निकेतन है, जो दोनों कुलोंका दीपक और तिलक है, जो दोनों कुलोंमें उज्ज्वल और चन्द्रकी तरह अकलंक है, जो सिंहकी तरह पराक्रमी और युद्धमें निडर है, दसों दिशाओंके मण्डलमें जिसका नाम विख्यात है, जो मदमाते हाथियोंके कुम्भस्थलोंका झुकानेवाला और जो प्रवर विजयलक्ष्मीके आलिङ्गनका आवास ही है। जो सकल शत्रुसमूहका दुर्दर्शनीय संहारक है, जो कीर्तिका रत्नाकर, यशका जलावर्त, विजयलक्ष्मीका प्रिय वीरनारायण, सज्जनोंका कल्पवृक्ष, सत्यका मेरु, प्रवर प्रहार फनोंके धरणेन्द्र, मानमें विंध्याचल, जो अभिमानमें शिखर, धनुष धारियोंमें बाण-रूपी नखोंके समूहसे सहित सिंह, शत्रुरूपी मृगोंके लिए महागज, और जो शत्रुसेनाके जलका शोषक है, आशंका और कलंकसे रहित जो तब तक किसीसे भी नहीं जीता जा सका, वह मैं भी आज तुमसे पराजित हो गया ॥१-१०॥

[११] यह वचन सुनकर, दुर्दम दानव-संहारक हनुमानने कहा, "तो इसमें पराभवकी कौन-सी बात, आप यदि तेजपिण्ड दिवाकर हैं और मैं आपका ही थोड़ा-सा किरण-समूह हूँ, आप भुवनतिलक चन्द्र हैं, मैं भी आपका ही छोटा-सा ज्योत्स्ना-निकेतन हूँ, आप श्रेष्ठ महासमुद्र हैं और मैं भी आपका ही एक जलकण हूँ, आप समस्त पर्वतोंमें मन्दराचल हैं और मैं भी एक

तुहुँ केसरि घोर-रउद्द - णाउ । हउँ किं पि तुहारउ णह - णिहाउ ॥६॥
तुहुँ मत्त - महग्गउ दुण्णिवारु । हउँ किं पि तुहारउ भय-वियारु ॥७॥
तुहुँ माणस - सरवरु सारविन्दु । हउँ किं पि तुहारउ सलिल-विन्दु ॥८॥
तुहुँ वर-तित्थयरु महाणुभाउ । हउँ किं पि तुहारउ वय-सहाउ ॥९॥

घत्ता

को पडिमल्लु तउ तुहुँ केणऽवरेणोद्दद्धउ ।
णिय पइ परिहरइ किं मणि चामियर-णिवद्धउ' ॥१०॥

[१२]

कह वि कह वि मणु धीरिउ विज्जाहर-णरिन्दहो ।
'ताय ताय मिलि साहणेँ गम्पिणु रामचन्दहो ॥१॥
वड्डारउ किउ उवयारु तेण । मारिउ मायासुग्गीउ जेण ॥२॥
को सक्कइ तहोँ पेसणु करेवि । मिलु रामहोँ मच्छरु परिहरेवि ॥३॥
उवयारु करेवउ मइ मि तासु । जाएवउ लङ्काहिवहोँ पासु' ॥४॥
हणुयहोँ एयइँ वयणइँ सुणेवि । माहिन्दि- महिन्द पयट्ट वे वि ॥५॥
सुग्गीव-णयरु णिविसेण पत्त । वलु पुच्छइ 'एँहु को जम्ववन्त ॥६॥
किं वलेँवि पडीवउ पवण-जाउ । असमत्त- कज्जु हणुवन्त आउ' ॥७॥
मन्तिण पवुत्तु णरवर-मइन्दु । अञ्जणहेँ वप्पु एँहु सो महिन्दु' ॥८॥
वल-जम्वव वे वि चवन्ति जाम । सवडम्मुहु आउ महिन्दु ताम ॥९॥

घत्ता

हलहर - सेवएँहिँ सव्वहिँ एक्केक - पचण्डेँहिँ ।
अग्घुक्खाइयउ दिढ-कढिण स इं भु व-दण्डेँहिँ ॥१०॥

●

चट्टानका टुकड़ा हूँ, आप घोर गर्जन करनेवाले सिंह हैं और मैं छोटा-सा नखनिघात हूँ। आप महागज हैं और मैं भी आपका ही थोड़ा-सा महा विकार हूँ। आप कमलोंसे शोभित मान सरोवर हैं और मैं भी आपका ही छोटा जलकण हूँ। आप महानुभाव श्रेष्ठ तीर्थंकर हैं और मैं भी आपका कुछ-कुछ व्रत स्वभाव हूँ। आपका प्रतिमल्ल कौन हो सकता है, आप किससे पराजित हो सकते हैं। सोनेसे जड़ा हुआ मणि क्या अपनी आभा छोड़ देता है !" ॥१-१०॥

[१२] तब हनुमानने किसी तरह राजा महेन्द्रको धीरज बँधाकर कहा, "तात तात, चलकर रामचन्द्रकी सेनामें मिल जाइए। उन्होंने हमारा बहुत भारी उपकार किया है। क्योंकि उन्होंने दुष्ट मायासुग्रीवको मार डाला है। भला उनकी सेवा कौन कर सकता था। अतः आप ईर्ष्या छोड़कर रामसे मिल जायँ। मैं भी उनका उपकार करूँगा। मैं लंकानरेशके पास जा रहा हूँ।" हनुमानके इन वचनोंको सुनकर राजा महेन्द्र और माहेन्द्र दोनों तुरन्त चल पड़े। वे एक पलमें ही सुग्रीव राजाके नगरमें पहुँच गये। रामने (उन्हें आते देखकर) जाम्बवन्तसे पूछा कि ये कौन हैं। कहीं काम समाप्त किये बिना ही हनुमान लौटकर तो नहीं आ गया है ! इसपर मन्त्रीने उत्तर दिया कि यह अंजना देवीके पिता महेन्द्र राजा हैं। जब तक राम और जाम्बवन्तमें इस प्रकार बातें हो रही थीं तब तक राजा महेन्द्र उनके सम्मुख ही आ पहुँचे। रामके एकसे एक प्रचण्ड सेवकोंने अपने कठोर और दृढ़ भुजदण्डोंसे राजाको (शुभागमन पर) अर्घ्यदान किया।

●

[४७. सत्तचालीसमो संधि]

मारुइ पवर-विमाणारूढउ अहिणव-जयसिरि-वहु-अवगूढउ
सामि-कज्जें संचल्लु महाइउ लीलएँ दहिमुह-दीउ पराइउ ॥

[१]

मण - गमणेण तेण णहें जन्तें । दहिमुहणयरु दिट्ठु हणुवन्तें ॥१॥
दिट्ठाराम सीम चउ-पासेंहिं । धरिउ णाइँ पुरु रिणिय-सहासेंहिं ॥२॥
जहिं पप्फुल्लियाइँ उज्जाणइँ । वड्डइँ णं तित्थयर - पुराणइँ ॥३॥
जहिँ ण कयावि तलायइँ सुक्कइँ । णं सीयलइँ सुट्ठु पर - दुक्खइँ ॥४॥
जहिँ वाविउ वित्थय - सोवाणउ । णं कुगइउ हेट्ठामुह - गमणउ ॥५॥
जहिँ पायार ण केण वि लङ्घिय । जिण-उवएस णाइँ गुरु- संधिय ॥६॥
जहिँ देउलइँ धवल-पुण्डरियइँ । पोत्था-वायणइँ व वहु-चरियइँ ॥७॥
जहिँ मन्दिरइँ स-तोरण- वायइँ । णं समसरणइँ सुप्पाडिहारइँ ॥८॥
जहिँ भुव- णेत्त- सुत्त- दरिसावण । हरि - हर -वम्भहिँ जेहा आवण ॥९॥
जहिँ वर-वेसउ तिणयण - रूवउ । पवर- भुअङ्ग- सएँहिँ अणुहूअउ ॥१०॥
जहिँ गयणत्थ- वसह- हलहर-मइ । राम- तिलोयण - जेहा गहवइ ॥११॥

सैंतालीसवीं सन्धि

इस प्रकार अभिनव विजयलक्ष्मीका आलिंगन करनेवाले हनुमानने विशाल विमानमें बैठकर अपने स्वामीके कामके लिए प्रस्थान किया। शीघ्र ही महनीय वह दधिमुख विद्याधरके द्वीपमें लीलापूर्वक ही पहुँच गया।

[१] आकाश मार्गसे जाते हुए हनुमानको दधिमुख नगर दिखाई दिया। उस नगरके चारों ओर उद्यान और सीमाएँ इस प्रकार थीं मानो उसने हजारों ऋषियोंको (बंधक) रख लिया हो। विकसित और खिले हुए विमान उसमें ऐसे लगते थे मानो बड़े-बड़े तीर्थंकर-पुराण हों। वहाँ एक भी सरोवर सूखा नहीं था, मानो वे परदुखकातरतासे ही शीतल थे। उनकी विस्तृत सीढ़ियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो अधोगामी कुगति ही हो। उसका परकोटा कोई उसी प्रकार नहीं लाँघ सकता था जिस प्रकार गुरु-उपदिष्ट जिनोपदेशको कोई नहीं लाँघ पाता। उसमें देवकुल धवलकमलोंकी तरह थे। वहाँके लोग पुस्तक वाचनाकी तरह (स्वाध्यायकी तरह) बहुत चरितवाले थे। जहाँ तोरण-द्वारोंसे अलंकृत मंदिर ऐसे लगते थे मानो प्रातिहार्योंसे सहित समवशरण हो। वहाँके बाजार हरि, हर और ब्रह्माकी तरह क्रमशः भुव [द्रव्य और हाथ] नेत्र [वस्त्र और आखें] और सुत्त (सूत्र) दिखा रहे थे। जहाँ वेश्याएँ शिवकी तरह बड़े-बड़े भुजंगों (लंपटों और साँपोंसे) आलिंगित थीं। जहाँ गृहपति, राम और शिवकी तरह हलधर [राम हलधर कहलाते हैं, शिव बैलपर चलते हैं, और गृहस्थ बैल और हलकी इच्छा रखते हैं] थे। इस प्रकार अनेक

घत्ता

तहिँ पट्टणेँ वहु-उवमहँ भरियएँ णं जगेँ सुकइ-कव्वेँ वित्थरियएँ।
सहइ स-परियणु दहिमुह-राणउ णं सुरवइ सुरपुरहोँ पहाणउ ॥१२॥

[२]

तहोँ अग्गिम महिसि तरङ्गमइ। णं कामहोँ रइ सुरवइहेँ सइ ॥१॥
आवन्तएँ जन्तएँ दिण-णिवहेँ। उप्पण्णाउ कण्णाउ तिण्णि तहेँ ॥२॥
विज्जुप्पह चन्दलेह वाल। अण्णेक्क तहा तरङ्गमाल ॥३॥
तिण्णि वि कण्णउ परिवड्ढियउ। णं सुकइ-कहउ रस-वड्ढियउ ॥४॥
वहु-दिवसेँहिँ सुरय-पियारएँण। पट्ठविउ दूउ अङ्गारएँण ॥५॥
'जइ भल्लउ दहिमुह माम महु। तो तिण्णि वि कण्णउ देहि बहु' ॥६॥
तेण वि विवाहु सङ्कच्छियउ। कल्लाणभुत्ति मुणि पुच्छियउ ॥७॥
कहोँ धीयउ देमि ण देमि कहोँ। मुणिवरेँण वि तक्खणेँ कहिउ तहोँ ॥८॥

घत्ता

'वेयड्ढुत्तर-सेढिहिँ राणउ साहसगइ-णामेण पहाणउ।
जीविउ तासु समरेँ जो लेसइ तिण्णि वि कण्णउ सो परिणेसइ ॥९॥

[३]

गुरु-वयणेण तेण अइ भाविउ। मणेँ गन्धव्व-राउ चिन्ताविउ ॥१॥
'साहसगइ वहु-विजावन्तउ। तेण समाणु कवणु परहन्तउ ॥२॥
अहवइ एउ वि णउ वुज्झिज्जइ। गुरु-भासिएँ सन्देहु ण किज्जइ ॥३॥
जम्म-सएँ वि पमाणहोँ ढुक्कइ। मुणिवर-वयणु ण पलएँ वि चुक्कइ ॥४॥
अवसेँ कन्दिवसु वि सो होसइ। साहसगइहेँ जुज्झु जो देसइ' ॥५॥
तं णिसुणेवि लडह-लायण्णेँहिँ। णिय-जणेरु आउच्छिउ कण्णेँहिँ ॥६॥

उपमाओंसे भरपूर सुकविके काव्यकी तरह विस्तृत उस नगरमें राजा दधिमुख अपने परिवारके साथ इस तरह रहता था मानो स्वर्ग का प्रधान इन्द्र हो ॥१-१२॥

[२] उसकी सबसे बड़ी रानी तरंगमति, कामदेवकी रति, या इन्द्रकी शचीकी भाँति थी। दिन आये और चले गये। इसी अंतरमें उसकी तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। उनके नाम थे चन्द्रलेखा, विद्युत्प्रभा और तरंगमाला। सुकविकी रसवर्धित कथाकी भाँति वे तीनों कन्याएँ दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगीं। तब बहुत दिनोंके अनन्तर, सुरतिप्रिय राजा अंगारकने दधिमुखके पास अपना दूत भेजकर यह कहलाया, "हे माम (ससुर), यदि तुम भला चाहते हो तो शीघ्र ही तीनों कन्याएँ मुझे दे दो" ॥१-६॥

(यह सुनकर) और अपनी पुत्रियोंके विवाहकी बात मनमें रखकर राजा दधिमुखने कल्याणभुक्ति नामके मुनिसे पूछा कि "मैं अपनी लड़कियाँ किसे दूँ और किसे न दूँ।" मुनिवरने फौरन राजासे कहा कि "विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीका मुख्य राजा सहस्रगति है। युद्धमें जो उसका अन्त कर दे, तुम अपनी तीनों पुत्रियाँ उसीको देना" ॥७-९॥

[३] गुरुके वचनोंसे अत्यंत भावुक वह राजा दधिमुख इस चिंतामें पड़ गया कि अनेक विद्याओंके जानकारराजा सहस्रगतिसे कौन युद्ध कर सकता है। अथवा मुझे इन सब बातोंमें न पड़ना चाहिए। क्योंकि गुरुका कहा हुआ प्रलयकालमें भी नहीं चूक सकता (गलत नहीं हो सकती)। वह सैकड़ों जन्मोंमें भी प्रमाणित होकर रहता है। अवश्य ही एक दिन वह मनुष्य उत्पन्न होगा जो सहस्रगतिके साथ युद्ध करेगा। यह पता लगनेपर अनिंद्य सुन्दरी उन कन्याओंने अपने पितासे पूछा

'भो भो ताय ताय दणु-दारा । लइ वण - वासहों जाहुँ भडारा ॥७॥
करहुँ किं पि वरि मन्तराहणु । जोग्गब्भासें विज्जासाहणु' ॥८॥

घत्ता

एव भणेप्पिणु चल-भउहालउ मणि-कुण्डल-मण्डिय-गण्डयलउ ।
गम्पि पइट्ठइ विलउ - वणन्तरें णाइँ ति - गुत्तिउ देहब्भन्तरें ॥९॥

[४]

तं वणु तिहि मि ताहिँ अवयज्जिउ । णं भव-गहणु असोय - विवज्जिउ ॥१॥
णं णित्तिलउ थेरि - मुह - मण्डलु । णं णिच्चूयउ कण्ण-उरत्थलु ॥२॥
णं णिप्फलु कुसामि - ओलग्गिउ । णं णित्तालु अ- णच्चण - वग्गिउ ॥३॥
णं हरि - घरु पुण्णाय -विवज्जिउ । णं णीसुण्णु वउद्धहुँ गज्जिउ ॥४॥
जहिँ वोराहिउ कामिणि-लीलउ । मण्ड मण्ड उव्वीरण - सीलउ ॥५॥
जहिँ पाहण वलन्ति रवि-किरणेंहिँ । णं सज्जण दुज्जण - दुव्वयणेंहिँ ॥६॥
तहिँ अच्छन्ति जाव वणेँ वित्थएँ । ताव पढुक्किय दिवसेँ चउत्थएँ ॥७॥

घत्ता

चारण पवर - महारिसि आइय भद्द- सुभद्द वे वि वेराइय ।
कोसहों तणेण चउत्थें भाएँ अट्ठ दिवस थिय काओसाएँ ॥८॥

[५]

किडिकिडिजन्त-मिलिम्मिलि-लोयण । लम्बिय-भुअ परिवज्जिय-भोयण ॥१॥
जल्ल-मलोह - पसाहिय-विग्गह । णाण - पिण्ड परिचत्त-परिग्गह ॥२॥
थिय रिसि पडिमा-जोएं जावेंहिँ । अट्ठमु दिवसु पढुक्किउ तावेंहिँ ॥३॥
तहिँ अवसरें तिय-लोलुअ-चित्तहों । केण वि गम्पि कहिउ वरइत्तहों ॥४॥
'देव देव तउ जाउ मणिट्ठउ । तिण्णि वि कण्णउ रण्णें पइट्ठउ ॥५॥
अण्णु ताहिँ वरइत्तु गविट्ठउ । तुहुँ पुणु मुहियएँ जें परितुट्ठउ' ॥६॥

कि "हे दनुसंहारक तात ! क्या हमलोग वनवासके लिए जाँय। वहाँ हम किसी मंत्रकी आराधना करेंगी या योगके अभ्यास द्वारा कोई विद्या साधेंगी।" यह कहकर चंचल भौंहों और मणि-मय कुंडलोंसे शोभित कपोलोंवाली वे तीनों कन्याएँ विशाल वनमें इस प्रकार प्रविष्ट हुईं मानो शरीरमें तीन गुप्तियाँ ही प्रविष्ट हुई हों ॥१-६॥

[४] उन्होंने उस वनको देखा, जो भवसंसारकी तरह अशोकवर्जित (वृक्षविशेष, सुखसे रहित है), वृत्तके मुखमंडल की तरह, तिलक (वृक्षविशेष और टीका) से रहित, कन्याके स्तनमण्डलकी तरह निच्चूय [आम्र वृक्ष और चूचकसे रहित], कुस्वामीकी सेवाकी तरह निष्फल, अनतंक समूहके समान निताल [ताड़ वृक्ष और तालसे रहित], स्वर्गकी तरह पुन्नागवर्जित [राक्षस और सुपारीका वृक्ष], बौद्धोंके गर्जनकी तरह निशून्य था। उस वनमें सूकरी कामिनीकी लीला धारण कर रही थी। जैसे कामिनी बलात् चूर्ण विकीर्ण करती चलती है वैसे ही वह चल रही थी। उस वनमें सूर्यकी किरणोंसे पत्थर जल उठते थे मानो दुर्जनोंके वचनोंसे सज्जन ही जल उठे हों। इस प्रकारके उस विस्तृत वनमें बैठे-बैठे उन कन्याओंको चौथा दिन व्यतीत हो गया। इसी समय दो विरक्त चारण महामुनि वहाँ आये और एक कोसके चौथे भागकी दूरीपर आठ दिनके लिए कायोत्सर्गमें स्थित हो गये ॥१-८॥

[५] किड़किड़ाती हुई भी उनकी आँखें चमक रही थीं। उनके हाथ लम्बे और उठे हुए थे। उन्होंने भोजन छोड़ रखा था। उनका शरीर ज्वाला और मल-निकरसे प्रसाधित था। इस प्रकार ज्ञानपिण्ड और परिग्रहसे हीन उन्हें प्रतिमायोगमें लीन हुए आठ

तं णिसुणेवि कुविउ अङ्गारउ । णं हवि घिऍण सित्तु सय-वारउ ॥७॥
'भञ्जमि अज्जु मडप्फरु कण्णहुँ । जेण ण होन्ति मज्झु ण वि अण्णहुँ' ॥८॥

घत्ता

अमरिस-कुद्धउ कुरुडु पधाइउ गम्पिणु वणेँ वइसाणरु लाइउ ।
धगधगमाणु समुट्ठिउ वण-दउ झत्ति पलित्तु णाइँ खल-जण-वउ ॥९॥

[६]

पढम-दवग्गि ढुक्कु सिप्पीरहोँ । णाइँ किलेसु णिहीण-सरीरहोँ ॥१॥
सयलु वि काणणु जालालीविउ । रामहो हियउ णाइँ संदीविउ ॥२॥
कत्थइ दारु - वणाइँ पलित्तइँ । णं वइदेहि - दसाणण - चित्तइँ ॥३॥
सुक्केहि मि असुक्क पजलाविय । णं सुपुरिस पिसुणेँहिँ संताविय ॥४॥
कहि मि पणट्ठइँ वणयर-मिहुणइँ । कन्दन्तइँ णिय-डिम्भ-विहूणइँ ॥५॥
गप्पि मुणिन्दहुँ सरणु पइट्ठइँ । सायव इव संसारहोँ तट्ठइँ ॥६॥
तहिँ अवसरेँ गयणङ्गणेँ जन्तें । खञ्चिउ णिय-विमाणु हणुवन्तें ॥७॥
मरु मरु लाइउ केण हुवासणु । अच्छउ गमणु करमि गुरु-पेसणु ॥८॥

घत्ता

अह सरणाइएँ अह वन्दिग्गहेँ सामि-कज्जेँ अह मित्त-परिग्गहेँ ।
आएँहिँ विहुरेँहिँ जो णउ जुज्झइ सो णरु मरण-सए वि ण सुज्झइ ॥९॥

दिन व्यतीत हो गये। इसी बीचमें किसीने जाकर स्त्री-लोलुप वर अंगारकसे यह कह दिया कि "हे देवदेव! तुम्हारी अभिलषित तीनों कन्याएँ वनमें चली गई हैं। तुम उनको खोज लो और फिर बार-बार उनसे संतुष्ट होओ।" यह सुनकर अंगारक एकदम आग-बबूला हो उठा, मानो किसीने आगमें सौ बार घी डाल दिया हो। उसने यह निश्चय कर लिया कि आज मैं अवश्य उन लड़कियों का घमण्ड चूर-चूर कर दूँगा जिससे न तो वे मेरी हो सकें और न किसी दूसरेको। अत्यन्त निष्ठुर वह, क्रोधसे भरा हुआ दौड़ा, और उस वनमें आग लगा आया। धक धक करके आग चलने लगी और शीघ्र दुष्टजनके वचनोंकी भाँति भड़क उठी ॥१-६॥

[६] सूखे तिनकोंकी वह पहली आग उसी प्रकार फैलने लगी जिस प्रकार निर्धनके शरीरमें क्लेश फैलने लगता है। ज्वालमाला से वह समूचा वन उसी प्रकार प्रदीप्त हो उठा जिस प्रकार रामका हृदय (सीता के वियोगमें) संतप्त हो रहा था। कहीं पर सूखे तिनकोंका ढेर जल रहा था, कहीं पर वनचरोंके जोड़े नष्ट हो रहे थे। कहींपर वे अपने बच्चोंसे हीन होनेके कारण चिल्ला रहे थे। संसारसे भीत श्रावकोंकी भाँति वे उन मुनिवरोंकी शरणमें चले गये। इस अवसरपर आकाशमार्गसे जाते हुए हनुमानने (उस आगको देखकर) अपना विमान रोक लिया। वह अपने मनमें सोच रहा था कि 'मर मर' यह आग किसने लगा दी। मुझे अपना जाना स्थगित करके गुरुकी सेवा करनी चाहिए। क्योंकि (नीति-विदोंका कथन है कि) शरणागतका आना, बंदीको पकड़ना, स्वामीका कार्य और मित्रका परिग्रह, इन कठिन प्रसंगोंमें जो जूझता नहीं वह शत-शत जन्मोंमें भी शुद्ध नहीं हो सकता ॥१-६॥

[७]

मणें चिन्तेप्पिणु णिम्मल - भावें । मारुइ - णिम्मिय - विज्ज- पहावें ॥१॥
सायर-सलिलु सव्वु आकरिसिउ । मुसल-पमाणेंहिं धारेंहिं वरिसिउ ॥२॥
हुअवहु उल्हाविउ पजलन्तउ । खम - भावेण कलि व वड्ढन्तउ ॥३॥
तं उवसग्गु हरेंवि रिउ - महणु । गउ मुणिवरहुँ पासु मरु-णन्दणु ॥४॥
कर - कमलेहिं पाय पुज्जेप्पिणु । वन्दिय गुरु गुरु - भत्ति करेप्पिणु ॥५॥
मुणि - पुङ्गवेंहिं समुब्भाएँ वि कर । हणुवहों दिण्णासीस सुहङ्कर ॥६॥
तहिं अवसरें विज्जउ साहेप्पिणु । मेरुहें पासेंहिं भामरि देप्पिणु ॥७॥
तिण्णि वि कण्णउ सालङ्कारउ । अहिणव-रम्भ- गब्भ - सुकुमारउ ॥८॥

घत्ता

भद्द - सुभद्दहँ चलण णमन्तिउ हणुयहों साहुक्कारु करन्तिउ ।
अग्गएँ थियउ सहन्ति सु-सीलउ णं तिहुँ कालहुँ तिण्णि वि लीलउ ॥९॥

[८]

पुणु वि पसंसिउ सो पवणङ्गइ । 'सुहड-लील अण्णहों कहों छज्जइ ॥१॥
चङ्गउ पइँ वच्छल्लु पगासिउ । उवसग्गहों णाउ मि णिण्णासिउ ॥२॥
एत्तिउ जइ ण पत्तु तुहुँ सुन्दर । तो णवि अज्जु अम्हें णवि मुणिवर ॥३॥
तं णिसुणेंवि मारुइ गओल्लिउ । दन्त-पन्ति दरिसन्तु पवोल्लिउ ॥४॥
'तिण्णि वि दीसहों सुट्ठु विणीयउ । कवणु थाणु कहों तिण्णि वि धीयउ ॥५॥
किं कज्जें वण - वासें पइट्ठउ । केण वि कउ उवसग्गु अणिट्ठउ ॥६॥
हणुवहों केरउ वयणु सुणेप्पिणु । पभणइ चन्दलेह विहसेप्पिणु ॥७॥
'तिण्णि वि दहिमुह-रायहों धीयउ । छुड्डु छुड्डु अङ्गारेण वि वरियउ ॥८॥

[७] अपने मनमें विशुद्ध रूपसे यह विचारकर हनुमानने अपनी विद्याके प्रभावसे समुद्रका सारा पानी खींचकर मूसलाधार धाराओंमें उसे बरसा दिया जिससे जलती हुई आग शांत हो गई, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार क्षमाभावसे बढ़ता हुआ कलियुग शांत हो जाता है। इस तरह उस उपसर्गको दूरकर शत्रु-संहारक हनुमान उन मुनियोंके निकट पहुँचा। उसने अपने हाथोंसे पूजा और भक्तिकर उनकी खूब वंदना की। उन मुनियोंने भी हाथ उठाकर हनुमानको कल्याणकारी आशीर्वाद दिया। इसी अवसरपर विद्या सिद्धकर और मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणाकर, केलेके गाभकी तरह सुकुमार, अलंकारोंसे सहित उन कन्याओंने आकर भद्र-समुद्र मुनियोंके चरणोंमें प्रणाम किया। उन्होंने हनुमानको खूब-खूब साधुवाद दिया। उनके सम्मुख स्थित वे तीनों सुशील कन्याएँ ऐसी मालूम हो रही थीं मानो त्रिकालकी तीन सुंदर लीलाएँ ही हों ॥१-९॥

[८] उन्होंने बार-बार हनुमानकी प्रशंसा करते हुए कहा कि "इतनी सुभटलीला भला किसी दूसरेको क्या सोह सकती है। आपने बहुत अच्छा धर्मवात्सल्य प्रकट किया कि उपसर्गका नामतक मिटा दिया। हे सुंदर, यदि आप आज यहाँ न आते तो न तो हम तीनों बचतीं और न ये दोनों मुनिवर।" यह सुनकर हनुमानको रोमांच हो आया। वह अपनी दंतपंक्ति दिखाते हुए बोले कि "आप तीनों बहुत ही विनयशील जान पड़ती हैं। आपकी निवास भूमि कहाँ है। और आप किसकी पुत्रियाँ हैं, वनमें आपलोग किसलिए आईं, और यह अनिष्ट उपसर्ग किसने किया ?" हनुमानके ये वचन सुनकर, चंद्रलेखाने हँसकर कहा—"हम तीनों दधिमुख राजाकी पुत्रियाँ हैं, शायद अंगारकने हमारा वरण कर

घत्ता

तहिँ अवसरेँ केवलिहिँ पगासिउ "दससयगइहेँ मरणु जसु पासिउ ।
कोडि - सिल वि जो संचालेसइ सो वरइत्तहोँ भाइउ होसइ" ॥६॥

[६]

एम वत्त गय अम्हहुँ कण्णें । तें कज्जेण पइट्ठउ रण्णें ॥१॥
बारह दिवस एत्थु अच्छन्तिहुँ । ताहि मि पुज्जारम्भु करन्तिहुँ ॥२॥
ताम वरेण तेण आरुट्ठें । उववणेँ दिण्णु हुआसणु दुट्ठें ॥३॥
तो वि ण चित्त जाउ विवरेरउ । एउ कहाणउ अम्हहुँ केरउ ॥४॥
तो एत्थन्तरेँ रोमञ्चिय - भुउ । भणइ हसेप्पिणु पवणञ्जय - सुउ ॥५॥
'तुम्हेँ हिँ जं चिन्तिउ तं हूअउ । साहसगइहेँ मरणु संभूअउ ॥६॥
जसु पासिउ सो अम्हहुँ सामिउ । तिहुअणेँ केण वि णउ आयामिउ ॥७॥
जाहुँ पासु पुज्जन्तु मणोरह' । वट्टइ जाम परोप्परु इय कह ॥८॥

घत्ता

दहिमुह-राउ ताव स - कलत्तउ पुप्फ - णिवेय-हत्थु संपत्तउ ।
गुरु पणवेवि करेवि पसंसणु हणुवें समउ कियउ संभासणु ॥९॥

[१०]

संभासणु करेवि तणु - तणुवें । दहिमुह - राउ वुत्तु पुणु हणुवें ॥१॥
'भो भो णरवइ महिहर- चिन्धहोँ । कण्णउ लेवि जाहि किक्किन्धहोँ ॥२॥
तहिँ अच्छइ णारायण - जेट्ठउ । जो वरु चिरु केवलिहिँ गविट्ठउ ॥३॥
घाइउ तेण समरेँ साहसगइ । वेयड्ढुत्तर - सेढिहेँ णरवइ ॥४॥
ताउ कुमारिउ अहिणव- भोग्गउ । तिण्णि वि राहवचन्दहोँ जोग्गउ ॥५॥
मइँ पुणु लङ्काउरि जाएव्वउ । पेसणु सामिहेँ तणउ करेव्वउ' ॥६॥
तं णिसुणेँवि संचल्लिउ दहिमुहु । जो संगामेँ दाणेँ रणेँ अहिमुहु ॥७॥
तं किक्किन्ध - णयरु संपाइउ । जम्बव - णल - णीलेँ हिँ पोमाइउ ॥८॥

लिया था। उसी समय एक केवलज्ञानीने यह बात प्रकट की कि जिससे सहस्रगतिका मरण होगा, और जो कोटिशिला उठायेगा, वही इनका भावी वर होगा" ॥१-६॥

[६] जब यह बात हमारे कानों तक आई, तो इसी कामसे हम लोग वनमें प्रविष्ट हुईं। हम लोग यहाँ आराधना प्रारम्भ करके बारह दिनों तक बैठी रहीं। तब उसपर अंगारकने क्रुद्ध होकर वनमें आग लगा दी, तब भी हमारा मन बदला नहीं, बस यही हमारी कहानी है"। तब इसके अनन्तर, पुलकितबाहु हनुमानने हँसकर कहा, "आप लोगोंने जो सोचा था वह हो गया। सहस्रगतिका मरण हो चुका है, जिससे हुआ है, वह हमारे स्वामी हैं। दुनियामें कोई भी उन्हें पराजित नहीं कर सका। उन्हींके पास आपका मनोरथ पूरा होगा"। जब उनमें इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि इतनेमें अपनी पत्नी सहित, दधिमुख राजा, पुष्प और नैवेद्य हाथमें लेकर आ पहुँचा। गुरुको प्रणाम और स्तवनकर उसने हनुमानके साथ संभाषण किया॥ १-६ ॥

[१०] बातचीतके अनन्तर, लघुशरीर हनुमानने राजा दधिमुखसे कहा, "हे राजन्, तुम महीधरचिह्नवाले किष्किंध नगर अपनी लड़कियाँ लेकर जाओ। नारायणके बड़े भाई वहीं हैं जो केवलियों द्वारा घोषित इनके वर हैं। युद्धमें उन्होंने विजयार्ध-श्रेणिके राजा सहस्रगतिको मार डाला है। हे तात, अभिनव भोगवाली ये कुमारियाँ, राघवचन्द्रके ही योग्य हैं, मैं फिर लंका जाऊँगा जहाँ अपने स्वामीकी ही सेवा करूँगा"। यह सुनकर दधिमुख वहाँसे चल पड़ा। वह उस किष्किंध नगरमें जा पहुँचा जो सम्मान दान और युद्धमें प्रमुख था। तब सुग्रीवने जाकर,

घत्ता

गम्पिणु भुवण - विणिग्गय - णामहों सुग्गीवें दरिसाविउ रामहों।
तेण वि कामिणि-थण-परिवड्डणु दिण्णु स यं भु एहिँ अवरुण्डणु ॥९॥

●

[४८ अट्ठचालीसमो संधि]

सविमाणहों णहयलें जन्ताहों खुड्डु लङ्काउरि पइसन्ताहों।
णिसि सूरहों णाइँ समावडिय आसाली हणुवहों अब्भिडिय ॥

[१]

तो एत्थन्तरे । देह-विसालिया ।
जुज्झु समोड्डेवि । थिय आसालिया ॥तेन तेन तेन चित्तें॥१
'मरु मरु मड्डुए । अप्पउ दरिसइ ।
मइँ अवगण्णेंवि । एँहु को पइसइ ॥तेन तेन तेन-चित्तें ॥२

[जम्भेट्टिया]

को सक्कइ हुअवहें झम्प देवि । आसीविसु भुअहिँ भुयङ्ग लेवि ॥३॥
को सक्कइ महि कक्खएँ लुहेवि । गिरि - मन्दर - अरुअ-भरुव्वहेवि ॥४॥
को सक्कइ जम - मुहेँ पइसरेवि । भुअ - वलेण समुद्दु समुत्तरेवि ॥५॥
को सक्कइ असि - पञरें चडेवि । धरणिन्द - फणालिहेँ मणि खुडेवि ॥६॥
को सक्कइ सुर-करि-कुम्भु दलेंवि । गयणङ्गणें दिणयर - गमणु खलेंवि ॥७॥
को सक्कइ सुरवइ समरें हणेंवि । को पइसइ मइँ तिण-समु गणेवि' ॥८॥

घत्ता

तं वयणु सुणेंवि जस-लुद्धएँण हणुवन्तें अमरिस-कुद्धएँण ।
अवलोइय विज्ज स-मच्छरेंण णं मेइणि पलय - सणिच्छरेंण ॥९॥

भुवन-विख्यातनाम, रामसे उनकी भेंट कराई, उन्होंने भी उन्हें अपने हाथोंसे कामिनीस्तनोंको बढ़ानेवाला आलिंगन दिया ॥ १–६ ॥

●

अड़तालीसवीं सन्धि

विमानसहित, आकाशमें जाते हुए हनुमानने जैसे ही लंका-नगरीमें प्रवेश किया वैसे ही आसाली विद्या आकर उनसे ऐसे भिड़ गई, मानो रात ही सूर्यसे भिड़ गई हो।

[१] इतनेमें विशाल देह धारणकर आसाली विद्या, हनुमानसे युद्ध करनेके लिए आकर जम गई, उसने ललकारा— "मरो-मरो, जरा बलपूर्वक अपनेको दिखाओ, मेरी उपेक्षा करके कौन नगरमें प्रवेश करना चाहता है, किसका है इतना हृदय (साहस) ? आगको कौन बुझा सकता है, आशीविष साँपको अपने हाथ में कौन ले सकता है, धरतीको अपनी काँखमें कौन चाप सकता है, मंदराचलके भारको कौन उठा सकता है, यमके मुखमें कौन प्रवेश कर सकता है ? अपने बहुबलसे समुद्र कौन तर सकता है, तलवारकी धारपर कौन चल सकता है, धरणेंद्रके फनसे मणि कौन तोड़ सकता है। ऐरावत गजके कुंभस्थलको कौन विदीर्ण कर सकता है, आकाशके प्रांगणमें सूर्यके गमनको कौन रोक सकता है, इन्द्रको युद्धमें कौन मार सकता है, (ऐसे ही) मुझे तृणवत् समझकर कौन, इस नगरीमें प्रवेशकर सकता है।" यह वचन सुनकर पथके लोभी हनुमानने क्रुद्ध होकर आसाली विद्याको ईर्ष्यासे वैसे ही देखा जैसे प्रलय शनैश्चर धरतीको देखता है ॥१–६॥

[२]

पिहुमइ-णामेँण । मन्ति पपुच्छिउ ।
'समर-महाभरु । केण पडिच्छिउ ॥तेन तेन तेन चित्तं॥४॥१
कालेँ चोइउ । को हक्कारइ ।
जो महु सम्मुहु । गमणु णिवारइ ॥तेन तेन तेन चित्तं॥४॥२
तं वयणु सुणेविणु भणइ मन्ति । किं तुज्झु वि मणेँ एवड्डु भन्ति ॥३॥
जइयहुँ सुरवर-संतावणेण । हिय रामहोँ गेहिणि रामणेण ॥४॥
तइयहुँ पर-वल-दुद्दंसणेण । लङ्कहेँ चउदिसिहिँ विहीसणेण ॥५॥
परिरक्ख दिण्ण जण-पुज्जणिज्ज । णामेण एह आसाल-विज्ज' ॥६॥
तं वयणु सुणेप्पिणु पवण-पुत्तु । रोमञ्च - उच्च - कञ्चुइय - गत्तु ॥७॥
पचविउ 'मरु मलमि मरट्टु तुज्झु । वलु वलु आसालिएँ देहि जुज्झु ॥८॥

घत्ता

जं सयल-काल-गलगज्जियउ मं जाउ मडप्फर-वज्जियउ ।
सा तुहुँ सो हउँ तं एउ रणु लइ खत्तें जुज्झहुँ एक्कु खणु' ॥९॥

[३]

लउडि-विहत्थउ । समरेँ समत्थउ ।
कवय-सणाथउ । कइधय-णाहउ ॥ तेन तेन तेन चित्तं ॥४॥१॥
रह-गय-वाहणु । खञ्चिय-साहणु ।
सीहु व रोक्केँवि धाइय कोक्केँवि ॥ तेन तेन तेन चित्तं ॥४॥२॥
परिहरेँवि सेण्णु खञ्चेँवि विमाणु । एकल्लउ पर लउडिएँ समाणु ॥३॥
'वलु वलु' भणन्तु अहिमुहु पयट्टु । णं वर-करिणिहेँ केसरि विसट्टु ॥४॥
णं महिहर-कोडिहेँ कुलिस-घाउ । णं दव-जालोलिहेँ जल-णिहाउ ॥५॥
एत्थन्तरेँ वयण - विसालियाएँ । हणुवन्तु गिलिउ आसालियाएँ ॥६॥
रेहइ मुह - कन्दरेँ पइसरन्तु । णं णिसि - संभवेँ रवि अत्थवन्तु ॥७॥
वड्ढेवएँ लग्गु पचण्डु वीरु । संचूरिउ गय - घाएँहिँ सरीरु ॥८॥

[२] तब उसने पृथुमति नामके मंत्रीसे पूछा, "समरके महाभारकी इच्छा किसने की है, (किसका इतना साहस है), कालसे प्रेरित होकर यह कौन ललकार रहा है, जो मेरे सम्मुख आकर मुझे जानेसे रोक रहा है।" यह वचन सुनकर मंत्रीने कहा "क्या तुम्हारे मनमें भी इतनी बड़ी भ्रांति है, जबसे रावण ने रामकी गृहिणी सीता देवीका अपहरण किया है, तभीसे परबलके लिए दुदर्शनीय विभीषणने लंकाके चारों ओर, आसाली नामकी इस जन-पूज्य आसाली विद्याको रक्षाके लिए नियुक्त कर दिया है"। यह बात सुनकर पवनपुत्र, पुलकसे कण्टकित शरीर हो उठा, और बोला "मर, तेरा भी मान चूर-चूर करूँगा, मुड़-मुड़, आसाली विद्या, मुझसे युद्धकर"। जो तुमने हमेशा गलगर्जन किया है उसे अभिमानशून्य मत करो। वही तुम हो, और मैं भी वहीं हूँ। यह रण है, जरा क्षात्रभावसे हम लोग एक क्षण युद्ध कर लें" ॥१-९॥

(३) साहसी युद्धमें समर्थ हनुमानके हाथमें गदा थी, वह कवच पहने था। रथगजका वाहन था उसके पास। वह वानर राज सेनासहित, सिंहकी तरह रुककर, गरजकर, फिर साहस पूर्वक दौड़ा, तदनंतर, सेना और विमानको छोड़कर, केवल गदा लेकर अकेला ही वह, "मुड़ो-मुड़ो" कहता हुआ विद्याके सामने आकर ऐसे खड़ा हो गया, मानो सिंह ही उत्तम हथिनीके सम्मुख आया हो। या, पहाड़की चोटीपर वज्रका आघात हुआ हो, या दावानलकी ज्वाल-मालापर पानीकी बौछार हुई हो। उस विशालकाय आसाली विद्याने हनुमानको निगल लिया, उसके भीतर प्रविष्ट होता हुआ हनुमान ऐसा शोभित हो रहा था मानो रात होनेपर सूर्य ही अस्त हो रहा हो। तब उस वीरने

घत्ता

पेट्टहों अब्भन्तरें पइसरेंवि वलु पउरिसु जीविउ अवहरेंवि ।
णीसरिउ पडीवउ पवणि किह महि ताडेंवि फाडेंवि विञ्झु जिह ॥१॥

[४]

पडियासालिया जं समरङ्गणे ।
उट्ठिउ कलयलु हणुयहों साहणे ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥ ४ ॥ १ ॥
दिण्णइँ तूरइँ विजउ पघुट्ठउ ।
मारुइ लीलएँ लङ्क पइट्ठउ ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥ ४ ॥ २ ॥
जं दिट्ठु पहञ्जणि पइसरन्तु । वज्जाउहु धाइउ 'हणु' भणन्तु ॥३॥
'आसाली वहेंवि महाणुभाव । मरु पहरु पहरु कहिँ जाहि पाव ॥४॥
वयणेण तेण हणुवन्तु वलिउ । णं सीहहों अहिमुहु सीहु चलिउ ॥५॥
अब्भिट्ट वे वि गय-गहिय - हत्थ । रिउ- रण- भर- परियट्टण- समत्थ ॥६॥
वलु वलहों भिडिउ गउ गयहों ढुक्कु।तुरयहों तुरङ्गु रहु रहहों मुक्कु ॥७॥
धउ धयहों विमाणहों वर-विमाणु। रणु जाउ सुरासुर - रण - समाणु ॥८॥

घत्ता

रह-तुरय जोह-गय - वाहणइँ मारुइ - विज्जाहर - साहणइँ ।
अब्भिट्टइँ वे वि स-कलयलइँ णं लक्खण-खर-दूसण - वलइँ ॥१॥

[५]

वे वि परोप्परु अमरिस-कुद्धइं ।
वे वि रणङ्गणे जय-सिरि-लुद्धइं ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥ ४ ॥ १ ॥
वे वि हणन्तइं कर-परिहत्थइं ।
दुज्जस-मुहइँ व अइ दुप्पेच्छइँ ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥ ४ ॥ २ ॥
तहिँ तेहएँ रणेँ वट्टन्तेँ घोरेँ । वहु - पहरण - ओहेँ पडन्ते थोरेँ ॥३॥
णिसियर - धएण कोन्ताउहेण । हक्कारिउ पिहुमइ हयमुहेण ॥४॥

भी बढ़ना शुरू कर, और गदाके आघातसे उस विद्याको चूर-चूर कर दिया। पेटके भीतर घुसकर, और बलपूर्वक फैलकर तथा फाड़कर वह वैसे ही बाहर निकल आया जैसे विंध्याचल धरतीको ताड़ित और विदीर्ण कर निकल आता है ॥१-६॥

[४] इस प्रकार आसाली (आशालिका) विद्याके समरांगणमें धराशायी होनेपर, हनुमानकी सेनामें कल-कल ध्वनि होने लगी। तूर्य बजाकर विजय घोषित कर दी गई। अब हनुमानने लीला पूर्वक लंकामें प्रवेश किया। उसे इस तरह प्रवेश करते हुए देखकर वज्रायुध दौड़ा, और 'मारो मारो' कहता हुआ बोला कि "हे महानुभाव, आसाली विद्याका नाशकर कहाँ जा रहे हो, मर, प्रहार कर, प्रहार कर।" इन वचनोंको सुनकर हनुमान मुड़कर इस तरह दौड़ा मानो सिंहके सम्मुख सिंह ही दौड़ा हो। हाथोंमें गदा लेकर वे दोनों योधा आपसमें भिड़ गये। वे दोनों ही शत्रुयुद्ध का भार वहन करनेमें समर्थ थे। सेनासे सेना टकरा गई। गज गजोंके निकट पहुँचने लगे। अश्वोंपर अश्व और रथोंपर रथ छोड़ दिये गये। ध्वजपर ध्वज और रथश्रेष्ठपर रथश्रेष्ठ। इस प्रकार देवासुर-संग्रामकी तरह उनमें भयंकर संग्राम होने लगा। रथ, तुरग, योधा, गज और वाहनोंसे सहित हनुमान और विद्याधरों की सेनाएँ कल-कल ध्वनि करती हुई इस प्रकार भिड़ गई मानो लक्ष्मण और खरदूषणकी सेनाएँ ही लड़ पड़ी हों ॥१-९॥

[५] अमर्षसे भरी हुईं दोनों ही एक दूसरे पर कुपित हो रही थीं। युद्धप्रांगणमें दोनोंके लिए यशका लोभ हो रहा था। दोनों हाथोंमें हथियार लेकर आक्रमण कर रही थीं। दुर्जनके मुख की तरह दोनों ही दुर्दर्शनीय थीं। बहु शस्त्रास्त्रोंसे क्षुब्ध उस वैसे घोर युद्धके होनेपर निशाचरकी ध्वजावाले वज्रायुधके अनुचर

'मरु थक्कु थक्क भिडु मइँ समाणु । अवरोप्परु वुज्झहुँ वल-सपमाणु ॥५॥
तं णिसुणेँवि पिहुमइ वलिउ केम । मयगलहों मत्त - मायङ्गु जेम ॥६॥
ते भिडिय परोप्परु घाय देन्त । रणेँ रामण - रामहुँ णामु लेन्त ॥७॥
विज्जाहर - करणेँहिँ वावरन्त । जिह विज्जु-पुञ्ज णहयलेँ भमन्त ॥८॥

घत्ता

आयामेँवि भिउडि-भयङ्करेँण हउ हयमुहु हणुवहों किङ्करेँण ।
गय-घाएँहिँ पाडिउ धरणियलेँ किउ कलयलु देवेँहिँ गयणयलेँ ॥९॥

[६]

जं गय-घाएँहिँ पाडिउ हयमुहु ।
कुइउ खणद्धेँण मणेँ वज्जाउहु ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१॥
णिट्ठुर-पहरेँहिँ हणुवहों केरउ ।
भग्गु असेसु वि वलु विवरेरउ ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥२॥
भज्जन्तएँ साहणेँ णिरवसेसेँ । हणुवन्तु थक्कु पर तहिँ पएसेँ ॥३॥
पञ्चमुह-लील रणेँ दक्खवन्तु । 'मं भज्जहों' णिय-वलु सिक्खवन्तु ॥४॥
उत्थरहुँ लग्गु णिरु णिट्ठुरेहिँ । असि-कणय-कोन्त-गय-मोग्गरेहिँ ॥५॥
वज्जाउहो वि दणु-दारणेहिँ । वरिसिउ णाणा-विह-पहरणेहिँ ॥६॥
तहिँ अवसरेँ गञ्जोल्लिय-भुएण । आयामेँवि पवणञ्जय-सुएण ॥७॥
पम्मुक्कु चक्कु रणेँ दुण्णिवारु । दुद्दरिसणु भीसणु णिसिय-धारु ॥८॥

घत्ता

तें चक्कें रणउहेँ अतुल-वलु उच्छिण्णेँवि पाडिउ सिर-कमलु ।
धाइउ कवन्धु अमरिसेँ चडिउ दस-पयइँ गम्पि महियलेँ पडिउ ॥९॥

अश्वमुखने अपने हाथमें भाला ले लिया, और हनुमानके मन्त्री पृथुमतिसे कहा, "मर मर, ठहर ठहर, मेरे साथ युद्ध कर, आओ जरा एक दूसरेकी सेनाका प्रमाण समझ-बूझ लें।" यह सुनकर पृथुमति इस प्रकार मुड़ा मानो मदगजको देखकर मदगज ही मुड़ा हो। आघात करते हुए, तथा राम और रावण नाम लेकर वे दोनों युद्धमें रत हो गये। विद्याधरोंके आयुधोंसे वे इस प्रकार प्रहार कर रहे थे मानो आकाशतलमें विद्युत्समूह ही घूम रहा हो। इतनेमें हनुमानके अनुचर पृथुमतिने समर्थ होकर, भौंहें टेढ़ी करके अश्वमुखको आहत कर दिया। गदाके प्रहारसे वह धरतीपर लोटपोट हो गया। [यह देखकर] देवता आकाशमें कल-कल शब्द करने लगे ॥१-६॥

[६] इस प्रकार गदाके आघातसे अश्वमुखका पतन होनेपर वज्रायुद्ध आधे ही पलमें क्रुद्ध हो उठा। अपने निष्ठुर प्रहारोंसे वह हनुमानकी सेनाको भग्नप्राय करने लगा। सभी सेनाके प्रणष्ट होनेपर भी हनुमान अकेला ही वहाँ डटा रहा। सिंह-लीलाका प्रदर्शन करता हुआ वह मानो अपनी सेनाको यह पाठ पढ़ा रहा था कि भागो मत। वह कठोर असिकर्णिक, भाला, गदा और मुद्गरोंको लेकर, वेगपूर्वक उछलने लगा। असुरसंहारक कितने आयुधोंको लेकर वज्रायुध भी बरस पड़ा। तब पुलकित-बाहु हनुमानने समर्थ होकर अपना दुर्निवार, तीक्ष्ण, दुर्दर्शनीय और भीषण चक्र मारा। उस चक्रसे उच्छिन्न होकर वज्रायुधका सिर-कमल युद्ध स्थलमें गिर पड़ा। फिर भी उसका धड़, अमर्षसे भरकर दौड़ा किंतु वह दस पग चलकर ही धरतीपर गिर पड़ा ॥ १-६ ॥

[७]

जं हणुवन्तेंण हउ वज्जाउहो ।

सयलु वि साहणु भग्गु परम्मुहो ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१॥

गउ विहडप्फडु जहिँ परमेसरि ।

अच्छइ लीलएँ लङ्कासुन्दरी ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥२॥

'किं अज्ज वि ण मुणहि एव वत्त । आसाल-विज्ज आहवेँ समत्त ॥३॥

अब्भिट्टु तुहारउ जणणु जो वि । रणेँ चक्क-पहारें णिहउ सो वि' ॥४॥

तं णिसुणेँवि अमर-मणोहरीएँ । धाहाविउ लङ्कासुन्दरीएँ ॥५॥

'हा मइँ मुएवि कहिँ गयउ ताय । हा कलुणु रुअन्तिहेँ देहि वाय ॥६॥

हा ताय सयल-भुवणेक्क-वीर । पर-वल - पवल - गलत्थण-सरीर ॥७॥

हा ताय समरेँ भड-थड-णिसुम्भ । सप्पुरिस-रयण अहिमाण-खम्भ' ॥८॥

घत्ता

अइराएँ स-हत्थें लुहिउ मुहु 'हलें काइँ गहिल्लिएँ रुअहि तुहुँ ।

लइ धणुहरु रहवरें चडहि तुहुँ वलु वुज्झहुँ जुज्झहुँ तेण सहुँ' ॥८॥

[८]

तं णिसुणेप्पिणु कुइय किसोयरि ।

चडिय महारहे लङ्कासुन्दरि ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१॥

धणुहर-हत्थिय वाणुग्गाविरि ।

सहुँ सुर-चावेंण णं पाउस-सिरि ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥२॥

धुरेँ अइर परिट्ठिय रहु पयट्टु । पर-वल-विणासु अखलिय-मरट्टु ॥३॥

तहिँ चडेंवि पधाइय रणेँ पचण्ड । मायङ्गहोँ करिणि व उद्ध-सोण्ड ॥४॥

सूरहोँ सण्णद्ध व काल-रत्ति । सद्दहोँ थक्क व पढमा विहत्ति ॥५॥

हक्कारिउ रणेँ हणुवन्तु तीएँ । पञ्चाणणु जिह पञ्चाणणीएँ ॥६॥

मुह-कुहर-विणिग्गय-कडुअ-वाय । 'वलु वलु दहवयणहोँ कुद्ध-पाय ॥७॥

[७] जब हनुमानने वज्रायुधका काम तमाम कर दिया तो उसकी समूची सेना नष्ट होकर विमुख हो गई। अभिमानहीन वह वहाँ पहुँची जहाँ परमेश्वरी लंकासुंदरी लीलापूर्वक विद्यमान थी। उसने कहा, "तुम यह बात आज भी न समझ पा रही हो कि युद्धमें आसाली विद्या समाप्त हो चुकी है, जो तुम्हारे पिता वज्रा-युध थे वह भी चक्रके प्रहारसे मारे गये।" यह सुनते ही लंका-सुंदरी विलाप करती हुई दौड़ी। "हे तात, तुम कहाँ चले गये। रोती हुई मुझसे बात करो। सकल भुवनोंमें अद्वितीय वीर हे तात! शत्रु-सेनाका संहारक शरीरवाले हे तात, युद्धमें भट समूहके संहारक हे तात, सत्पुरुषरत्न, अभिमानस्तंभ, हे तात, तुम कहाँ हो।" तब उसकी (लंकासुंदरीकी) सहेली अचिराने अपने हाथसे उसका मुँह पोंछकर कहा कि हला, इस प्रकार व्याकुल होकर क्यों रो रही हो। तुम भी धनुष ले रथश्रेष्ठपर आरूढ़ हो सेनाको समझा-बुझाकर युद्ध करो॥ १–९॥

[८] यह सुनकर लंका सुन्दरी क्रोधसे भर उठी। वह महा-रथमें जा बैठी। और धनुष हाथमें लेकर तीर बरसाती हुई वह ऐसी जान पड़ती थी मानो पावस लक्ष्मी इन्द्रधनुषको लिये हुए हो। अचिरा सहेली रथकी धुरापर बैठी थी। अस्खलितमान और शत्रुसेनानाशक, उसका रथ चल पड़ा। उसपर बैठकर वह भी प्रचंड होकर, युद्धमें ऐसे दौड़ी, मानो सूँड़ उठाकर हथिनी ही गजपर दौड़ी हो, या कालरात्रि ही सूर्यपर संनद्ध हुई हो, या मानो शब्दपर प्रथमा विभक्ति ही आरूढ़ हुई हो, उसने युद्धमें हनुमानको ललकारा वैसे ही जैसे सिंहनी सिंहको ललकारती है। उसके मुखरूपी कुहरसे कड़वी बातें निकलने लगीं, "रावणके क्रुद्ध पाप मुड़-मुड़, जो तुमने आसाली विद्या और मेरे पिताका

जं हय आसालिय णिहउ ताउ । तं जुज्झु अज्जु खय-कालु आउ' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेँ वि भड-कडमद्दणेँण णिब्भच्छिय पवणहोँ णन्दणेँण ।
'ओसरु मं अग्गएँ थाहि महु कहेँ कहि मि जुज्झु कण्णाएँ सहुँ' ॥९॥

[९]

हणुवहोँ वयणेँ हिं पवर-धणुद्धरि ।
हसिय स-विब्भमु लङ्कासुन्दरि ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१॥
हउँ परियाणमि तुहुँ बहु-जाणउ ।
एणालावेँण णवरि अयाणउ ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥२॥

'एउ काइँ चविउ पइँ दुव्वियड्ढु । किं जलण-तिडिक्कएँ तरु ण दड्ढु ॥३॥
किं ण मरइ णरु विस-दुम-लयाएँ । किं विञ्झु ण खण्डिउ णम्मयाएँ ॥४॥
किं गिरि ण फुट्टु वज्जासणीएँ । किं ण णिहउ करि पञ्चाणणीएँ ॥५॥
रयणीएँ पच्छाएँ वि गयण-मग्गु । किं सूरहोँ सूरत्तणु ण भग्गु ॥६॥
जइ एत्तिउ मणेँ अहिमाणु तुज्झु । तो किं आसालिहेँ दिण्णु जुज्झु' ॥७॥
गलगज्जेँवि लङ्कासुन्दरीएँ । सर-पञ्जरु मुक्कु णिसायरीएँ ॥८॥

घत्ता

वज्जाउह-तणयएँ पेसिएँण पिच्छुज्जल-पुङ्ख-विहूसिएँण ।
सर-जालेँ छाइउ गयणु किह जणवउ मिच्छत्त-वलेण जिह ॥९॥

[१०]

तो वि ण भिज्जइ मारुइ वाणेँ हिं ।
परम जिणागमु जिह अण्णाणेँ हिं ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१॥
पढम-सिलीमुह तेण वि मेल्लिय ।
रइहेँ अणङ्गें दूअ व घल्लिय ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥२॥

णाराएँ हिं हणुवहोँ केरएहिँ । संचल्लेँ हिँ दुव्विवरेरएहिँ ॥३॥
सर-जालु विहअँवि लइउ तेहिँ । कावेरि-सलिलु जिह णरवरेँहिँ ॥४॥

वध किया है, उससे निश्चय ही आज तुम्हारा क्षयकाल आ गया है" । यह सुनकर भट-संहारक हनुमानने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा,"भाग, मेरे सामने मत ठहर । बता, कहीं क्या कन्याके साथ भी लड़ा जाता है ?" ॥ १-६ ॥

[६] हनुमानके वचन सुनकर, प्रवर धनुष धारण करनेवाली वह लंकासुन्दरी, विभ्रम पूर्वक हँसने लगी, और बोली, "मैं जानती हूँ कि तुम बहुत जानकार हो । परंतु इस प्रकारके प्रलापसे तुम मूर्ख ही प्रतीत होते हो, दुर्विदग्ध, तुम यह क्या कहते हो । क्या (आगकी) चिनगारी पेड़को नहीं जला देती । क्या विषद्रुम लतासे आदमी नहीं मरता । क्या नर्वदा नदीके द्वारा विंध्याचल खंडित नहीं होता । क्या वज्राशनिसे पहाड़ नहीं टूटता, क्या सिंहनी गजको नहीं मार देती । क्या रात गगनमार्गको नहीं ढक देती, क्या वह सूर्यका सूर्यत्वको भग्न नहीं कर देती । यदि तुम्हारे मनमें इतना अभिमान है तो तुमने आसालीके साथ युद्ध क्यों किया ।" इस प्रकार गरजकर निशाचरी लंकासुन्दरीने तीरसमूह छोड़ दिया । वज्रायुधकी लड़की लंका सुन्दरीके द्वारा प्रेषित, पंखकी तरह उजले पुंखोंसे विभूषित तीरोंके जालसे आकाश इस तरह छा गया जिस तरह मिथ्यात्वके बलसे लोगोंका मन आछन्न हो उठता है ॥१-६॥

[१०] लेकिन हनुमान तब भी बाणोंसे छिन्न-भिन्न नहीं हुआ, वैसे ही जैसे परमागम अज्ञानियोंसे छिन्न नहीं होता । तदनन्तर उसने भी पहला तीर मारा मानो कामदेवने ही रातके लिए अपना दूत भेजा हो । हनुमानके दुर्निवार और चलते हुए बाणोंने लंकासुन्दरीके तीर समूहको उसी प्रकार छिन्न-भिन्न करके ले लिया जिस प्रकार लोग कावेरीके जलको भग्न करके ले लेते

अण्णेक्कें वाणें छिण्णु छत्तु । णं खुडिउ मरालें सहसवत्तु ॥५॥
णं सूरहों जेमन्तहों विसालु । वियलिउ कराउ कलहोय-थालु ॥६॥
तं णिएँ वि छत्तु महियलें पडन्तु । मेल्लिउ खुरुप्पु थरथरहरन्तु ॥७॥
संथवें वि ण सक्किउ सुन्दरेण । तवसित्तणु णाइँ कुमुणिवरेण ॥८॥

घत्ता

तें तिक्ख-खुरुप्पें दुज्जएँण पडिवक्ख-मडप्फर-भञ्जएँण ।
गुणु चिण्णु विणासिउ चाउ किह मिच्छत्तु जिणिन्दागमेंण जिह ॥९॥

[११]

धणुहरें छिण्णए कुविउ पहञ्जणि ।
एन्ति पडीविय मुक्क सरासणि ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१॥
लङ्कासुन्दरि मग्गण-जालेंण ।
छाइय मेइणि जिह दुक्कालेंण ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥२॥
तं हणुयहों केरउ वाण-जालु । छायन्तु असेसु दियन्तरालु ॥३॥
वीसहिँ सरेंहिँ परिछिण्णु सयलु । णं परम-जिणिन्दें मोह-पडलु ॥४॥
अण्णेक्कें वाणें कवउ छिण्णु । उरु रक्खिउ कह वि ण हणुउ भिण्णु ।५
छिज्जन्तें कवएँ हरिसिय-मणेण । किउ कलयलु णहें सुरवर-जणेण ॥६॥
दिणयरेंण पहञ्जणु वुत्तु एम । 'महिलाएँ जि जिउ हणुवन्तु केम' ॥७॥
तं वयणु सुणेंवि पुलइय-भुएण । सव्वउरि पदोच्छिउ मरु-सुएण ॥८॥

घत्ता

'इउ काइँ वुत्तु पइँ दिवसयर जिण-धवलु मुएप्पिणु एक्कु पर ।
जगें जो जो गरुयउ गज्जियउ भणु महिलएँ को ण परज्जियउ' ॥९॥

[१२]

जाम पडुत्तरु देइ पहञ्जणु ।
ताम विसज्जिउ उक्का-पहरणु ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१

हैं। एक और तीरसे उसका छत्र छिन्न-भिन्न हो गया मानो हंसने कमलको ही छिन्न-भिन्न कर दिया हो। या मानो वह भोजन करते हुए सूरवीरका खंडित कराल सुवर्णथाल ही हो। उस छत्रको धरतीपर गिरता हुआ देखकर लंकासुन्दरीने थर्राता हुआ अपना खुरपा फेंका। किंतु हनुमान उसे उसी प्रकार नहीं झेल सका जैसे कुमुनि तपस्या नहीं झेल पाते। शत्रुपक्षके मानका भंजन करनेवाले दुर्जेय उस तीखे खुरपेसे हनुमानके धनुषकी डोरी कट गई। उसकी कमान भी वैसे ही टूट गई जैसे जिनेन्द्रके आगमसे मिथ्यात्व हट जाता है ॥१-६॥

[११] धनुष टूटनेपर हनुमान सहसा खिन्न हो उठा। उलट-कर उसने [दूसरा] धनुष ले लिया और तीरोंके जालसे उसने लंकासुंदरीको उसी प्रकार ढक दिया जिस प्रकार दुष्काल धरती को आच्छन्न कर लेता है। किन्तु लंकासुन्दरीने अपने तीरोंसे दिशाओंके अन्तराल ढँक लेनेवाले हनुमानके तीर-समूहको ऐसे काट दिया मानो परमजिनेन्द्रने मोहपटलको ही नष्ट कर दिया हो। एक और तीरसे उसने हनुमानका कवचभेदन कर दिया। किसी प्रकार वक्षःस्थल बच गया, और हनुमान आहत नहीं हुआ। कवचके छिन्नभिन्न हो जानेपर देवसमूहमें कलकल ध्वनि होने लगी। दिनकरने हनुमानसे कहा कि अरे तुम महिलाके द्वारा किस प्रकार जीत लिये गये। यह वचन सुनकर पुलकितबाहु हनुमानने सूर्यकी भर्त्सना करते हुए कहा—"अरे दिनकर, तुम यह क्या कह रहे हो। एक जिनवरको छोड़कर दूसरा कौन है जो गरजा हो और साथ ही महिलासे पराजित न हुआ हो" ॥१-६॥

[१२] जबतक हनुमान कुछ और उत्तर दे, तबतक लंका-सुन्दरीने उल्का अस्त्र छोड़ा। किन्तु हनुमानने एक ही तीरमें उसके

तिह हणुवन्तेंण एक्कें वाणेंण ।

किउ सय-सक्करु दुरिउ व णाणेंण ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥२

पुणु मुक्क गयासणि णिसियरीएँ । णं उवहिहें गङ्ग वसुन्धरीएँ ॥३॥

स खण्ड-खण्डु किय तिहिँ सरेहिँ । णं दुम्मइ संवर-णिज्जरेहिँ ॥४॥

एत्थन्तरेँ विप्फुरियाहरीएँ । पम्मुक्कु चक्कु विज्जाहरीएँ ॥५॥

विद्धंसिउ तं पि सिलीमुहेहिँ । णं कुकइ-कइत्तणु वर-वुहेहिँ ॥६॥

सिल मुक्क पडीवी ताएँ तासु । णं कु-महिल गय पर-णरहोँ पासु ॥७॥

वञ्चिय पवणञ्जय-णन्दणेण । णं असइ सु-पुरिसें दिढ-मणेण ॥८॥

घत्ता

सर मुक्क गयासणि चक्कु सिल अण्णु वि जं किं पि मुअइ महिल ।
तं सयलु वि जाइ णिरत्थु किह घरेँ किविणहोँ तक्कुव-विन्दु जिह ॥९॥

[१२]

जिह जिह मारुइ समरेँ ण भज्जइ ।

तिह तिह कण्ण णिरारिउ रज्जइ ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१॥

वम्मह - वाणेंहिँ विद्ध उरत्थले ।

कह वि तुलग्गहिँ पडिय ण महियले ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥२॥

'भो साहु साहु भुवणेक्कवीर । जयलच्छि - वच्छ - लञ्छिय-सरीर ॥३॥

भो साहु साहु अक्खलिय-मरट्ट । भड-भञ्जण पर - वल - मइयवट्ट ॥४॥

भो साहु साहु पच्चक्ख-मयण । सोहग्ग - रासि सप्पुरिस- रयण ॥५॥

भो साहु साहु कइकेय-तिलय । कन्दप्प - दप्प-माहप्प - णिलय ॥६॥

भो साहु साहु तणु-तेय-पिण्ड । दिढ-वियड-वच्छ भुव-दण्ड-चण्ड ॥७॥

भो साहु साहु रिउ-गन्धहत्थि । उवमिज्जइ जइ उवमाणु अत्थि ॥८॥

सौ टुकड़े कर दिये। इसपर उस निशाचरीने गदा मारा मानो धरतीने समुद्रमें गंगा ही प्रक्षिप्त की हो। हनुमानने अपने वाणोंसे उसी प्रकार उसे खण्ड-खण्ड कर दिया जिस प्रकार संवर और निर्जरा दुर्मतिको नष्ट कर देती हैं। तब वह निशाचरी तमतमा उठी और उसने चक्र फेंका, परंतु हनुमानने उसको भी अपने तीरोंसे उसी प्रकार नष्ट कर दिया जिस प्रकार मनीषी आलोचक कुकवित्वको खण्डित कर देते हैं। इसपर निशाचरीने हनुमानके ऊपर शिला फेंकी, किन्तु वह भी पवनपुत्रके हाथमें उसी प्रकार आ गई जिस प्रकार खोटी स्त्री पर-पुरुषके आलिंगनमें आ जाती है। इस प्रकार लंका-सुन्दरी पवनपुत्रसे उसी प्रकार वंचित हुई जिस प्रकार असती स्त्रीको दृढ़ मन पुरुषसे वञ्चित होना पड़ता है। इस प्रकार तीर, गदा, अशनि, शिला जो कुछ भी उस महिलाने छोड़ा, वह सब हनुमानके ऊपर उसी प्रकार असफल गया जिस प्रकार कृपक के घरसे याचक असफल लौट आते हैं ॥१–९॥

[१३] जैसे-जैसे हनुमान युद्धमें अजेय होता जा रहा था वैसे वैसे वह कन्या व्याकुल होने लगी। कामके वाणोंसे वह अपने उरमें पीड़ित हो उठी। किसी तरह वह, अपनी इच्छासे धरतीपर नहीं गिरी। वह अपने मनमें सोचने लगी कि हे भुवनैक-वीर हनुमान! साधु साधु! तुम्हारा शरीर और वक्ष विजयलक्ष्मी से अंकित है। शत्रुसंहारक और शत्रुसेनाका ध्वंस करनेवाले, अस्खलित मान, साधु साधु! सौभाग्यकी राशि, सत्पुरुषरत्न, साक्षात् कामदेव, साधु साधु! कामके दर्प और बड़प्पनके निकेतन कपिकेतु तिलक साधु साधु! दृढ़ विशाल वक्षःस्थल, प्रचंडबाहु-दंड, तनुतेजपिंड, साधु साधु! यदि कोई उपमा न हो तब तुम्हारी

घत्ता

पइँ णाह पराजिय हउँ समरेँ वरेँ एवहिँ पाणिग्गहणु करेँ'।
णिय-णामु लिहेप्पिणु मुक्क सरु णं दूउ विसज्जिउ पियहोँ घरु ॥६॥

[१४]

जाव पहञ्जणि वायइ अक्खरु।
ताम णिरारिउ हियएँ सुहङ्करु ॥ तेन तेन तेन चित्तं ॥४॥१॥
तेण वि गरुअउ णेहु करेप्पिणु।
वाणु विसज्जिउ णामु लिहेप्पिणु ॥ तेन तेन तेन चित्तं ॥४॥२॥
सरु जोएँवि पवर-धणुद्धरीएँ। परिओसें लङ्कासुन्दरीएँ ॥३॥
अवगूढु पवणि थिरथोर-वाहु। परिहूअउ विज्जाहर - विवाहु ॥४॥
रेहइ सुन्दरि सहुँ सुन्दरेण। वर-करिणि णाइँ सहुँ कुञ्जरेण ॥५॥
णं रत्त सञ्झ सहुँ दिणयरेण। णं सुरसरि सहुँ रयणायरेण ॥६॥
णं सीहिणि सहुँ पञ्चाणणेण। जियपउम णाइँ सहुँ लक्खणेण ॥७॥
अह खणेँ खणेँ वण्णिज्जन्ति काइँ। णं पुणु वि पुणु वि ताइँ जेँ ताइँ ॥८॥

घत्ता

एत्थन्तरे हणुवें तुरिउ वलु णिम्मोहेँवि थम्भेँवि किउ अचलु।
सुरवहु-जण -मण-संतावणहोँ मं को वि कहेसइ रावणहोँ ॥९॥

[१५]

थम्भेँवि पर-वलु धीरेँवि णिय-वलु।
उच्चारेपिणु जिणवर - मङ्गलु ॥ तेन तेन तेन चित्तं ॥४॥१॥
पइठु समीरणि सुट्ठु रमाउले।
लङ्कासुन्दरि- केरएँ राउले ॥ तेन तेन तेन चित्तं ॥४॥२॥
रयणिहिँ माणेप्पिणु सुरय-सोक्खु। संचल्लु विहाणएँ दुक्खु दुक्खु ॥३॥
आउच्छिय सुन्दरि सुन्दरेण। वणमाल णाइँ लच्छीहरेण ॥४॥

उपमा दी जाय। हे नाथ, युद्धमें मैं तुमसे पराजित हुई। अच्छा हो यदि आप मुझसे पाणिग्रहण कर लें। अपने मनमें यह विचार कर तीरपर अपना नाम अंकित कर इस प्रकार छोड़ा मानो प्रिय के पास अपना दूत भेजा हो ॥१-६॥

[१४] जब हनुमानने अक्षर पढ़े तो शुभंकर वह हृदयमें निराकुल हो उठा। उसने भी भारी स्नेह जतानेके लिए अपना नाम लिखकर बाण भेजा। बाण देखते ही प्रवर धनुष ग्रहण करनेवाली लंकासुन्दरीने परितोषके साथ प्रवर स्थूलबाहु हनुमानका आलिङ्गन कर लिया। उन दोनोंका वहीं पर विवाह हो गया। सुन्दरके साथ सुन्दरी ऐसे सोह रही थी मानो सुन्दर गज के साथ हथिनी ही हो। मानो दिनकरके साथ संध्या हो, या मानो रत्नाकरके साथ गंगा हो, या मानो सिंहके साथ सिंहनी हो, या मानो लक्ष्मणके साथ जितपद्मा हो। अब क्षण-क्षण कितना और वर्णन किया जाय, बार बार यही कहना पड़ता है कि उनके समान वे ही थे। इसी बीचमें हनुमानने समस्त सेनाको स्तम्भित और मोहित कर अचल बना दिया, इस आशंकासे कि कहीं कोई सुरवर जनोंके मनको सतानेवाले रावणसे जाकर कह न दे ॥१-६॥

[१५] इस तरह शत्रुसेनाको मोहित कर और अपनी सेनाको धीरज देकर और जिनवर मंगलका उच्चारणकर हनुमानने उस लंकासुन्दरीके भवनमें प्रवेश किया। और उसने उसके राजकुलमें रातभर रतिसुखका आनन्द उठाया। प्रातःकाल होते ही वह बड़ी कठिनाईसे वहाँसे चला, उस सुन्दरने सुन्दरीसे प्रस्थानके समय उसी तरह पूछा जिस तरह लक्ष्मणने वनमालासे

'लइ जामि कन्तें रावणहों पासु। सहुँ वलेंण करेवी सन्धि तासु ॥५॥
किं भणइ विहीसणु भाणकण्णु। घणवाहणु मउ मारीचि अण्णु ॥६॥
किं इन्दइ किं अक्खयकुमारु। किं पञ्चामुह रणें दुण्णिवारु ॥७॥
एत्तियहँ मज्झें का वुद्धि कासु। को वलहों भिच्चु को रावणासु ॥८॥

घत्ता

पुणु पुणु वि भणेव्वउ दहवयणु लहु अप्पि परायउ तिय-रयणु।
अप्पणउ करेप्पिणु दासरहि स इँ भुञ्जहि णोसावण्ण महि' ॥९॥

●

[४९. एक्कूणपण्णासमो सन्धि]

परिणेप्पिणु लङ्कासुन्दरि समरें महाभय-भीसणहों।
सो मारुइ रामाएसेंण घरु पइसरइ विहीसणहों ॥

[१]

सुरवहु - णयणाणन्दयरु।
(स-स - ग-ग - ग-म-नि-नि-नि-स-स-नि-धा)
समर-सएँहिं णिव्वूढ-भरु।
(म-म-गा-म-गा-म-म-धा-स-नी स-धा-स-नी-स-धा) ॥
पवर - सरीरु पलम्व-भुउ।
(स-स-स-स-ग-ग-म-म-नि-नि-स-नि-धा)
लङ्क पईसइ पवण-सुउ।
(म-म-गा-म-गा-म-धा-स-नी धा-स-नी-स-धा) ॥१॥
वञ्चेंवि भवणइँ रावण-भिच्चहुँ। इन्दइ - भाणुकण्ण - मारिच्चहुँ ॥२॥
जण- मण - णयणाणन्द - जणेरउ। घरु पइसरइ विहीसण - केरउ ॥३॥
तेण वि अब्भुत्थाणु करेप्पिणु। सरहसु गाढालिङ्गणु देप्पिणु ॥४॥
मारुइ वइसारिउ उच्चासणें। णं सु-परिट्ठउ जिणु जिण-सासणें ॥५॥
कइकसि - णन्दणेण परिपुच्छिउ। 'मित्तेत्तडउ कालु कहिँ अच्छिउ ॥६॥

पूछा था। उसने कहा, "प्रिये, मैं रावणके पास जाता हूँ, रामसे उसकी सन्धि करवा दूँगा। विभीषण, भानुकर्ण, घनवाहन, मय, मारीच और दूसरे लोग क्या कहते हैं; इन्द्रजीत अक्षयकुमार और रणमें दुर्निवार पंचमुख क्या कहते हैं। इतनोंमें किसकी क्या बुद्धि है, कौन रामका अनुचर है, और कौन रावणका। बार बार मैं रावणसे यही कहूँगा कि तुम शीघ्र दूसरेके स्त्रीरत्नको वापिस कर दो। रामके लिए सीता देवी अर्पित कर अपनी धरतीका निर्द्वन्द रूपसे उपभोग करो ॥१-९॥

●

उनचासवीं सन्धि

इस लंका सुन्दरीसे विवाह कर, रामके आदेशानुसार हनुमानने महाभयभीषण विभीषणके घर प्रवेश किया।

[१] सुरवधुओंके लिए आनन्ददायक शतशत युद्ध-भार उठानेमें समर्थ, प्रबल-शरीर प्रलम्ब बाहु हनुमानने लंकानगरीमें प्रवेश किया। वह इन्द्रजीत, भानुकर्ण और मारीच आदि, रावणके अनुचरोंके भवनोंको छोड़कर, सीधा जन-मन और जन-नेत्रोंके लिए आनन्ददायक विभीषणके घर जा पहुँचा। उसने भी उठकर हनुमानका खूब आलिंगन किया। फिर उसने उसे ऊँचे आसन पर बैठा दिया मानो जिन ही जिनशासन पर प्रतिष्ठित हुए हों। (इसके बाद) कैकशनंदन विभीषणने पूछा, "मित्र, इतने समय तक कहाँ थे आप। क्या

खेमु कुसलु किं णिय-कुल-दीवहुँ । णल - णीलङ्गय - सुग्गीवहुँ ॥७॥
कुन्दिन्दहुँ माहिन्द - महिन्दहुँ । जम्बव - गवय- गवक्ख-णरिन्दहुँ ॥८॥
अञ्जण - पवणञ्जयहुँ सु - खेउ' । पुणु वि पुणु वि जं पुच्छिउ एउ ॥९॥

घत्ता

विहसेवि वुत्तु हणुवन्तेँण 'खेमु कुसलु सव्वहोँ जणहोँ ।
पर कुद्धेहिँ लक्खण-रामेँहिँ अकुसलु एक्कु दसाणणहोँ ॥१०॥

[२]

पुणु वि पुणु वि कण्टइय-भुउ । भणइ पडीवउ पवण - सुउ ।
'एउ विहीसण थाउ मणेँ । दुज्जय हरि- वल होन्ति रणेँ ॥
सुमण- दुअइ सुमरन्तिया
सहुँ वलेँण सहरिस णच्चिया ॥१॥
अच्छइ रामचन्दु आरूढउ । णं पञ्चाणणु चित्तेँ दुट्ठउ ॥२॥
'अच्छइ अज्जु कल्लेँ संचल्लमि । पलय - समुद्दु जेम उत्थल्लमि ॥३॥
अच्छइ अज्जु कल्लेँ आसङ्घमि । गोपउ जिह रयणायरु लङ्घमि ॥४॥
अच्छइ अज्जु कल्लेँ वलु वुज्झमि । वइरिहिँ समउ रणङ्गणेँ जुज्झमि ॥५॥
अच्छइ अज्जु कल्लेँ अब्भिट्टमि । दहमुह-वल - समुद्दु ओहट्टमि ॥६॥
अच्छइ अज्जु कल्लेँ पुरेँ पइसमि । रावण-सिरि-सीहासणेँ वइसमि ॥७॥
अच्छइ अज्जु कल्लेँ रिउ - केरउ । वाणेँहिँ करमि सेण्णु विवरेरउ ॥८॥
अच्छइ अज्जु कल्लेँ णीसेसइँ । लेमि छत्त-धय- चिन्ध- सहासइँ ॥९॥

घत्ता

तेँ कज्जेँ आउ गवेसउ हउँ सुग्गीवहोँ पेसणेँण ।
मं लङ्काहिव-कप्पद्दुमो डज्झउ राम-हुवासणेँण ॥१०॥

[३]

अण्णु विहीसण एउ भणेँ जम्बव - केरउ वयणु सुणेँ ।
"पइँ होन्तेण वि चल-मणहो वुद्धि ण हूअ दसाणणहोँ ॥
सुमण-दुअइ सुमरन्तिया ॥१॥

आपके कुल और द्वीपमें योगक्षेम नहीं है ? नल, नील, माहेन्द्र, महेन्द्र, जाम्बवन्त, गवय, गवाक्षादि राजा अंजना और पवनञ्जय ये सब क्षेमसे तो हैं ?" तब हनुमानने हँसकर विभीषणसे कहा कि सब लोग कुशल क्षेमसे हैं। किन्तु राम लक्ष्मणके क्रुद्ध होनेपर केवल रावणकी कुशलता नहीं है" ॥१-१०॥

[२] पुलकितबाहु हनुमानने बार बार दुहराकर यही बात कही कि विभीषण तुम तो अपने मनमें इस बातको अच्छी तरह तौल लो कि रामके कुपित होने पर उनकी सेना अजेय है। और तब सुमन द्विपदी छन्दको याद करके सेना सहित हनुमान नाच उठा। फिर उसने कहा कि यदि रामचन्द्र थोड़ा भी रुष्ट हैं तो मानो सिंह ही कुपित हो उठा है। वह (अभी) रहें, मैं ही आजकलमें प्रस्थान कर रहा हूँ। मैं प्रलय-समुद्रकी तरह उछल पड़ूँगा। आजकल ही में मैं समर्थ हो उठूँगा, और गोखुरकी भाँति समुद्रको लाँघ जाऊँगा। वह रहें, मैं ही आजकलमें सारी सेनाको समझ लूँगा, और बैरीसे जूझ जाऊँगा। वह रहें, मैं ही आजकलमें भिड़ जाऊँगा और शत्रु-सेना रूपी समुद्रको मथ डालूँगा। आजकलमें ही मैं नगरमें प्रवेश करूँगा और रावणके लक्ष्मी-सिंहासनपर बैठूँगा। वह रहें, मैं ही आजकलमें ही तीरोंसे शत्रुकी सेनाको विमुख कर दूँगा। वह रहें, आजकलमें, निशेष, सैकड़ों छत्र ध्वज और चिह्नोंको ले लूँगा। इसी कारण मैं सुग्रीवके आदेशसे खोज करनेके लिए आया हूँ। कि कहीं रामरूपी आगसे रावणरूपी कल्पद्रुम दग्ध न हो जाय ॥१-१०॥

[३] और भी विभीषण ! जाम्बवन्तका भी यह वचन सुनो और विचार करो। उसने कहा है—"तुम्हारे होते हुए भी चंचल

पइँ होन्तेण वि णारि पराइय । वाहें हरिणि व रुद्ध वराइय ॥२॥
पइँ होन्तेण वि रावणु मूढउ । अच्छइ माण - गइन्दारूढउ ॥३॥
पइँ होन्तेण वि घोर - रउद्दहों । गम्मु सज्जिउ संसार - समुद्दहों ॥४॥
पइँ होन्तेण वि धम्मु ण जाणिउ । रयणायर - वंसहों खउ आणिउ ॥५॥
पइँ होन्तेण वि णिय-कुलु मइलिउ । वउ चारित्तु सीलु णउ पालिउ ॥६॥
पइँ होन्तेण वि लङ्क विणासिय । सम्पय रिद्धि विद्धि विद्धंसिय ॥७॥
पइँ होन्तेण वि लग्गुम्माएँहिँ । चउविहेहिँ उद्दद्ध - कसाएहिँ ॥८॥
पइँ होन्तेण वि ण किउ णिवारिउ । एउ कम्मु लज्जणउ णिरारिउ ॥९॥

घत्ता

जस-हाणि खाणि दुह-अयसहुँ इह- पर-लोयहों जम्पणउ ।
अप्पिज्जउ गेहिणि रामहों किं लज्जावहों अप्पणउ ॥१०॥

[४]

अण्णु परज्जिय- पर- वलहों सुणि सन्देसउ तहों णलहों ।
"अइरावय-कर-करयलेँहिँ कवण केलि सहुँ हरि-वलेँहिँ ॥
सुमण - दुअइ सुमरन्तिया ॥१॥
सम्बुकुमारु जेहिँ विणिवाइउ । तिसिरउ जेहिँ रणङ्गणेँ घाइउ ॥२॥
जेहिँ विरोलिउ पहरण - जलयरु । खर- दूसण - साहण-रयणायरु ॥३॥
रहवर - णक्क - ग्गाह - भयङ्करु । पवर - तुरङ्ग - तरङ्ग - णिरन्तरु ॥४॥
वर- गय- भड- थड- वेला-भीसणु । धय- कल्लोल- वोल - संदरिसणु ॥५॥
तेहउ रिउ - समुद्दु रणेँ घोट्टिउ । साहसगइ कप्पयरु पलोट्टिउ ॥६॥
कोडि- सिल वि संचालिय जेहिँ । किह किज्जइ विग्गहु सहुँ तेहिँ ॥७॥

मन रावणको बुद्धि नहीं आई। तुम्हारे होते हुए परस्त्रीको उसने वैसे ही अवरुद्ध कर लिया जैसे व्याधा बेचारी हरिणीको रुद्ध कर लेता है, तुम्हारे रहते हुए भी रावण मूर्ख ही बना रहा, और मान रूपी गजपर बैठा हुआ है, तुम्हारे होते हुए भी उसने केवल रौद्र नरक और घोर संसार-समुद्रका साज सजा। तुम्हारे होते भी धर्म नहीं जाना और राक्षसवंशका नाश निकट ला दिया। तुम्हारे होते हुए भी उसने अपना कुल मैला किया। व्रत, चारित्र्य और शीलका पालन नहीं किया। तुम्हारे होते हुए भी उसने लंकाका विनाश किया और संपदा ऋद्धि-वृद्धि भी ध्वस्त कर दी। तुम्हारे होते हुए भी वह उन्मादक चार प्रकारकी उद्धत कषायोंमें फँस गया। तुमने होते हुए भी इसका निवारण नहीं किया। यह कर्म अत्यंत लज्जाजनक है, इसमें यशकी हानि है, दुःख और अपयशकी खान है। इस लोक और परलोकमें निन्दा है इसलिए रामकी पत्नी सौंप दो। अपनेको क्यों लज्जित करते हो? ॥१-१०॥

[४] और भी, परबलको जीतनेवाले उस नलका भी संदेश सुन लो। (उसने कहा है) ऐरावतकी सूँडकी तरह प्रचंड यशवाले राम लक्ष्मणके साथ यह कैसी क्रीडा? जिसने शम्बुककुमारका अन्त कर दिया, जिसने रण-प्रांगणमें त्रिशिरका घात किया, जिसने शस्त्रोंके जल-जंतुओंसे भरे खरदूषणके उस सेनासमुद्रको विलोडित कर डाला, जो रथवरोंके मगर और ग्राहोंको भयंकर, बड़े-बड़े अश्वोंकी तरंगोंसे भरा, उत्तम हाथियों और ध्वजारूपी कल्लोल-समूहसे व्याप्त था, उस ऐसे समुद्रको जिसने घोंट डाला, जिसने सहस्रगतिकी खोपड़ी लोट-पोट कर दी, जिन्होंने कोटिशिलाको भी उठा लिया, उनके साथ विग्रह कैसा? तबतक तुम

घत्ता

अप्पिज्जउ सीय पयत्तेंण आयड्ढिय-कोवण्ड-कर ।
जाम ण पावन्ति रणङ्गणें दुज्जय दुद्धर राम-सर" ॥८॥

[५]

अण्णु विहीसण गुण-घणउ सन्देसउ णीलहों तणउ ।
गम्पि दसाणणु एम भणु "विरुआरउ पर-तिय-गमणु ॥१॥
जो पर-दार रमइ णरु मूढउ । अच्छइ णरय-महण्णवें छूढउ ॥२॥
पर-दारेण ति-अक्खु विणट्ठउ । जइयहुँ चिरु दारु-वणें पइट्ठउ ॥३॥
परदारहों फलेण कमलासणु । तक्खणेण थिउ सो चउराणणु ॥४॥
परदारहों फलेण सुर-सुन्दरु । सहस-णयणु किउ णवर पुरन्दरु ॥५॥
परदारहों फलेण णिल्लञ्छणु । किउ स-कलङ्कु णवर मयलञ्छणु ॥६॥
परदारहों फलेण वइसाणरु । वर-वाहिएँ उद्धद्धु णिरन्तरु ॥७॥
परदारहों फलेण कुल-दीवहों । जीविउ हिउ मायासुग्गीवहों ॥८॥
अण्णु वि करि जिह जो उम्मेट्ठउ । भणु परदारें को ण वि णट्ठउ ॥९॥

घत्ता

अप्पाहिउ लक्खण-रामें हिँ णिय-परिहव-पड-धोवएँ हिँ ।
पेक्खेसहि रावणु पडियउ अण्णें हि दिवसें हि थोवएँ हिँ" ॥१०॥

[६]

तं णिसुणें वि डोल्लिय-मणेंण मारुइ वुत्तु विहीसणेंण ।
'ण गवेसइ जं चविउ पइँ सयवारउ सिक्खविउ मइँ ॥१॥
तो वि महारउ ण किउ णिवारिउ । पज्जलियउ मयणग्गि णिरारिउ ॥२॥
ण गणइ जिण-भासिय-गुण-वयणइँ । ण गणइ इन्दणील-मणि-रयणइँ ॥३॥
ण गणइ घरु परियणु णासन्तउ । ण गणइ पट्टणु पलयहों जन्तउ ॥४॥
ण गणइ रिद्धि विद्धि सिय सम्पय । ण गणइ गलगज्जन्त महागय ॥५॥

प्रयत्नसे सीता उन्हें अर्पित कर दो, कि जबतक उन्होंने धनुष नहीं चढ़ाया और जब तक तुमसे रामके दुर्धर अजेय वीर नहीं लड़े ॥१–८॥

[५] और भी विभीषण ! नीलका भी यह गुणघन संदेश है कि जाकर उस रावणसे यह कहो कि परस्त्री-गमन बहुत बुरा है, जो मूर्ख परस्त्रीका रमण करता है वह नरकरूपी महासमुद्रमें पड़ता है। परस्त्रीसे शिवजी नष्ट हो गये, उन्हें स्त्रीरूप धारण करना पड़ा ?? परस्त्रीके फलसे ब्रह्माके तत्काल चार मुख हो गये, सुर-सुन्दर इन्द्रके परस्त्रीसे हजार आँखें हो गईं। परस्त्रीके कारण ही लांछन रहित चन्द्रमाको सकलंक होना पड़ा। परस्त्रीके फलसे बेचारी आगको निरंतर जलना पड़ रहा है। परस्त्रीके फलसे ही कुलदीपक मायासुग्रीव (सहस्रगति) को अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ा। और भी जो महावतसे हीन मदगजकी तरह है, बताओ ऐसा कौन परस्त्रीसे नष्ट नहीं हुआ। तुम थोड़े ही दिनोंमें देखोगे कि अपने पराभवरूपी पटको धोनेवाले राम-लक्ष्मणसे आहत होकर रावण पड़ा है।

[६] यह सुनकर विभीषणका मन डोल उठा। उसने हनुमान को बताया कि रावण कुछ समझता ही नहीं। जो कुछ आप कह रहे हैं, उसकी मैंने उसे सौ बार शिक्षा दी। तो भी महासक्त वह इस बातका निवारण नहीं करना चाहता। कामाग्निसे वह अत्यन्त जल रहा है। वह जिनभाषित गुण-वचनोंको भी कुछ नहीं गिनता। इन्द्रनील मणि-रत्नोंको भी वह कुछ नहीं समझता। नष्ट होते हुए घर और परिजनको भी वह कुछ नहीं गिनता। वह नहीं देख पा रहा है कि उसकी (लंका) नगरी प्रलयमें जा रही है। वह ऋद्धि-वृद्धि श्रीसंपदाको भी कुछ नहीं समझता।

ण गणइ हिँ लिहिलन्त हय चञ्चल । ण गणइ रहवर कणय-समुज्जल ॥६॥
ण गणइ सालङ्कारु स-णेउरु । मणहरु पिण्डवासु अन्तेउरु ॥७॥
ण गणइ जल-कीलउ उज्जाणइँ । जाणइँ जम्पाणइँ स-विमाणइँ ॥८॥
सीयहेँ वयणु एक्कु पर मण्णइ । भणमि पडीवउ जइ आयण्णइ ॥९॥

घत्ता

जइ एम वि ण किउ णिवारिउ तो आयामिय-आहवहों ।
रणेँ हणुव तुज्झु पेक्खन्तहों होमि सहेज्जउ राहवहों' ॥१०॥

[७]

तं णिसुणेप्पिणु पवण-सुउ स-रहसु पुलय-विसट्ट-भुउ ।
पडिणियत्तु विवरम्मुहउ गउ उज्जाणहों सम्मुहउ ॥१॥
पट्टणु णिरवसेसु परिसेसेँवि । अवलोयणियहेँ बलेँण गवेसेँवि ॥२॥
रवि-अत्थवणेँ सुहड-चूडामणि । पवरुज्जाणु पयट्टिउ पावणि ॥३॥
जं सुरवरतरूहिँ संछण्णउ । मल्लिय-कङ्केल्लीहिँ रवण्णउ ॥४॥
लवलीलय - लवङ्ग - णारङ्गेँहिँ । चम्पय-वउल - तिलय-पुण्णागेँहिँ ॥५॥
तरल - तमाल - ताल-तालूरेँहिँ । मालइ - माहुलिङ्ग - मालूरेँहिँ ॥६॥
भुअ-पउमक्ख - दक्ख-खज्जूरेँहिँ । कुङ्कुम - देवदारु - कप्पूरेँहिँ ॥७॥
वर - करमर - करीर-करवन्देँहिँ । एला-कक्कोलेहिँ सुमन्देँहिँ ॥८॥
चन्दण-वन्दणहिँ साहारेँहिँ । एव तरूहिँ अणेय-पयारेँहिँ ॥९॥

घत्ता

तहोँ वणहों मज्झेँ हणुवन्तेँण सीय णिहालिय दुम्मणिय ।
णं गयण-मग्गेँ उम्मिल्लिय चन्द-लेह बीयहेँ तणिय ॥१०॥

[८]

सहिय-सहासेँहिँ परियरिय णं वण-देवय अवयरिय ।
तिल-मित्तु णऽवलक्खणु जहेँ णिव्वण्णिज्जइ काइँ तहेँ ॥१॥

वह गरजते हुए मदगजोंको कुछ नहीं समझता और न सुवर्ण समुज्ज्वल सुन्दर रथको। सालंकार सनूपुर शरीर अपने अन्तःपुर को भी कुछ नहीं गिनता। उद्यान-जल-क्रीड़ाको कुछ नहीं गिनता और न यान जम्पाण और विमानोंको ही कुछ समझता है। केवल एक सीतादेवीके मुखकमलको सब कुछ मानता है। यदि मैं कुछ कहता भी हूँ तो उसे वह विपरीत लेता है। यह सब होने पर भी वह अपने आपको इस कर्मसे विरत नहीं करता तो देखना हनुमान तुम्हारे सम्मुख ही मैं युद्ध प्रारंभ होते ही रामका सहायक बन जाऊँगा ॥१-१०॥

[७] यह सुनकर पवनपुत्र हर्षसे भर उठा। उसकी बाहुओंमें पुलक हो रहा था। वहाँसे लौटकर विशालमुख हनुमान फिर उद्यानकी ओर गया। अवलोकिनी विद्यासे समस्त नगरकी खोज समाप्त कर, सूर्यास्त होते होते उसने विशाल नन्दन वनमें प्रवेश किया। वह वन सुन्दर कल्पवृक्षोंसे आच्छन्न और मल्लिका तथा कंकेली वृक्षोंसे सुन्दर था। लवलीलता, लवंग, नारंग, चंपा, बकुल, तिलक, पुन्नाग, तरल, तमाल, ताल, ताल्लूर, मालती, मातुलिंग, माल्लूर, भूर्ज, पद्माक्ष, दाख, खजूर, बुंद, देवदारु, कपूर, वट, करमर, करीर, करवंद, एला, कक्कोल, सुमन्द, चन्दन, वंदन और साहार ऐसे ही अनेक वृक्षोंसे वह सहित था। उस वनके मध्यमें हनुमानको उन्मन सीतादेवी ऐसी दीख पड़ीं मानो आकाश-पथमें दोजकी चन्द्रलेख ही उदित हुई हो ॥१-१०॥

[८] हजारों सखियोंसे घिरी हुई सीता ऐसी लगती थी मानो वनदेवी ही अवतरित हुई हो। (भला) जिसमें तिल बराबर भी खोट न हो फिर उसका वर्णन किस प्रकार किया जाय।

वर-पाय-तलेँहिँ पउणारएहिँ । सिङ्खल-णहेहिँ दिहि-गारएँहिँ ॥२॥
उच्चङ्गुलिएँहिँ वेउल्लिएहिँ । वट्टुलिएँहिँ गुप्फेहिँ गोल्लिएहिँ ॥३॥
वर-पोट्टरिएँहिँ मायन्दिएहिँ । सिरि-पव्वय-तणिएँहिँ मण्डिएँहिँ ॥४॥
ऊरुअ-जुएण णिप्पालएण । कडिमण्डलेण करहाडएण ॥५॥
वर-सोणिएँ कञ्चो-केरियाएँ । तणु-णाहिएण गम्भीरियाएँ ॥६॥
सुललिय - पुट्टिएँ सिङ्गारियाएँ । पिण्डत्थणियएँ एलउरियाएँ ॥७॥
वच्छयलें मज्झिमएसएण । भुअ-सिहरेँहिँ पच्छिम-देसएण ॥८॥
वारमई - केरेँहिँ वाहुलेहिँ । सिन्धव - मणिवन्धहिँ वट्टुलेहिँ ॥९॥
माणुग्गीवएँ कच्छायणेण । उट्टउडें गोग्गडियहेँ तणेण ॥१०॥
दसणावलियएँ कण्णाडियएँ । जीहएँ कारोहण - वाढियएँ ॥११॥
णासउडेँहिँ तुङ्ग-विसय-तणेहिँ । गम्भीरएहिँ वर - लोयणेहिँ ॥१२॥
भउहा - जुएण उज्जेणएण । भालेण वि चित्ताऊडएण ॥१३॥
कासिएँहिँ कवोलेँहिँ पुज्जएहिँ । कण्णेहि मि कण्णाउज्जएहिँ ॥१४॥
काओलिहिँ केस-विसेसएण । तिणएण वि दाहिणएसएण ॥१५॥

घत्ता

अह किं वहुणा वित्थरेँण अ-णिविण्णेँण सुन्दर-मइएण ।
एक्केक्कउ वत्थु लएप्पिणु णावइ घडिय पयावइएण ॥१६॥

[९]

राम-विओएं दुम्मणिय अंसु-जलोल्लिय-लोयणिय ।
मोक्कल-केस कवोल-भुअ दिट्ठ विसण्ठुल जणय-सुअ ॥१॥

सृष्टिके एकसे एक उत्तम उपादानोंसे उनकी रचना हुई थी। सीता देवीके चरणतल, पउनारीकी स्त्रियोंके चरणतलोंसे। नख, भाग्यशाली सिंघलनियोंके नखोंसे। अँगुलियाँ वेउल्लकी स्त्रियोंकी ऊँची पूरी अँगुलियोंसे। एड़ी गोल्लक स्त्रियोंकी गोल एड़ियोंसे। स्तनका अग्रभाग, माकन्दिकाओंके उत्कृष्ट स्तनाग्रसे। मंडन श्रीपर्वतकी कन्याओंके मंडनसे। उरू, नेपाली महिलाओंके उरूयुगलसे। कटि, करहाटकी स्त्रियोंके कटिमंडलसे। श्रोणि, कांचीकी महिलाओंकी श्रोणिसे। नाभि, गंभीर देशकी स्त्रियोंकी गंभीर नाभिसे। पुट्ठे, शृंगारिकाओंके सुन्दर पुट्ठोंसे। भुजशिखर, पश्चिम देशीय स्त्रियोंके भुजशिखरसे। बाहु, द्वारवतीकी स्त्रियोंके सुन्दर बाहुओंसे। मणिबन्ध, सिंधुदेशकी स्त्रियोंके सुन्दर मणिबंधोंसे। ग्रीवा, कच्छमहिलाओंकी उन्नत ग्रीवासे। ठुड्डी, गोग्गड महिलाओंकी सुन्दर ठुड्डीसे। दाँत, कर्नाटक देशकी स्त्रियोंके सुन्दर दाँतोंसे। जीभ, कारोहव देशकी सुन्दर स्त्रियोंकी जीभसे। नाक और नेत्र तुङ्गदेशीय स्त्रीकी नासिका और नेत्रोंसे। भौंहें, उज्जैनकी स्त्रीकी भौंहोंसे। भाल चित्तौड़की महिलाओंके भालसे। कपोल, काशी देशकी आदरणीय स्त्रियोंके कपोलोंसे। कान कन्नौजकी स्त्रियोंके सुन्दर कानोंसे। केश, काओली महिलाओंके केशसे। विनय, दक्षिण देशकी महिलाओंकी विनयसे निर्मित हुई थी। अर्थात् सीतादेवीके अंग-प्रत्यंग अपने अपने निर्दिष्ट उपमाओंसे मिलते-जुलते थे। अथवा बहुत विस्तारसे क्या, सीतादेवीका रूपसौन्दर्य ऐसा था कि मानो सुन्दर बुद्धि विधाताने एक एक वस्तु लेकर उसे गढ़ा हो ॥१-१६॥

[६] (हनुमानने देखा कि) रामके वियोगसे दुर्मन सीता देवीकी आँखें भरी हुई थीं। उनके केश मुक्त और हाथ गालोंपर

जाणइ-वयण-कमलु अलहन्तिउ । सुहु ण देन्ति फुल्लन्धुय-पन्तिउ ॥२॥
हणइ तो वि ण करन्ति णिवारिउ । कर-कमलहिँ लग्गन्ति णिरारिउ ॥३॥
एव सिलीमुह - सासिज्जन्ती । अण्णु विओअ - सोय - संतत्ती ॥४॥
वणेँ अच्छन्ति दिट्ठ परमेसरि । सेस-सरीहिँ मज्झेँ णं सुर-सरि ॥५॥
हरिसिउ अञ्जणेउ एत्थन्तरेँ । धण्णउ एक्कु रामु भुवणन्तरेँ ॥६॥
जो तिय एह आसि माणन्तउ । रावणु सइँ जेँ मरइ अलहन्तउ ॥७॥
णिरलङ्कार वि होन्ती सोहइ । जइ मण्डिय तो तिहुअणु मोहइ ॥८॥
सीयहेँ तणउ रूउ वण्णेप्पिणु । अप्पउ णहेँ पच्छण्णु करेप्पिणु ॥९॥

घत्ता

जो पेसिउ राहवचन्देंण सो घत्तिउ अङ्गुत्थलउ ।
उच्छङ्गे पडिउ वइदेहिहेँ णावइ हरिसहोँ पोट्टलउ ॥१०॥

[१०]

पेक्खेँवि रामङ्गुत्थलउ सरहसु हसिउ सुकोमलउ ।
दिहि परिवड्ढिय सहि-जणहोँ तियडएँ कहिउ दसाणणहोँ ॥१॥
'जीविउ सहलु तुहारउ अज्जु । अज्जु णवर णिकण्टउ रज्जु ॥२॥
जोअइ अज्जु देव दह वयणइँ । लद्धइँ अज्जु चउद्दह रयणइँ ॥३॥
उब्भहि अज्जु छत्त-धय-दण्डइँ । भुञ्जहि अज्जु पिहिमि छक्खण्डइँ ॥४॥
अज्जु मत्त-गय-घडउ पसाहहि । अज्जु तुरङ्ग तुरङ्गम वाहहि ॥५॥
पुज्जउ अज्जु पइज्ज तुहारी । एत्तिय-कालहोँ हसिय भडारी ॥६॥
लहु देवावहि णिव्वुइ-गारउ । वज्जउ मङ्गलु तूरु तुहारउ ॥७॥

थे। वह एकदम कांतिहीन हो रही थीं। सीताका अविकसित मुखकमल भ्रमरमालाको सुख नहीं दे रहा था। वह उसे मारती पर वह हटती ही नहीं थी, उल्टे सीतादेवीके करकमलसे लग जाती थी। (इस प्रकार) हनुमानने देखा कि एक तो वह भ्रमरों से सताई जा रही हैं और दूसरे वियोगदुखसे संतप्त वनमें बैठी हुई ऐसी लग रही हैं मानो समस्त नदियोंके बीचमें गंगा नदी हो। (उन्हें देखकर) हनुमान सहसा हर्षित हो उठा। (उसने अपने मनमें सोचा) कि एक रामका ही जीवन इस विश्वमें धन्य है कि जिसको माननेवाली ऐसी सुन्दर स्त्री है कि जिसपर रावण मर रहा है और जो स्वयं अलङ्कारहीन होकर भी अत्यन्त शोभित है। यदि इसे अलंकृत कर दिया जाय तो यह त्रिभुवनको मोह ले सकती है ! इस प्रकार सीताके रूपका वर्णन कर, अपने-आपको आकाशमें अन्तर्निहित कर, हनुमानने वह अंगूठी नीचे गिरा दी जो राघवने भेजी थी। हर्षकी पोटलीकी भाँति वह जानकी की गोदमें आ गिरी ॥१-१०॥

[१०] रामकी अंगूठी देखकर सीतादेवी हर्षाभिभूत होकर कोमल-कोमल हँसने लगीं। (यह देखकर) उनकी सहेलियोंका भाग्य बढ़ने लगा। (बस) त्रिजटाने तुरन्त जाकर रावणसे कहा "आज तुम्हारा जीवन सफल है, आज तुम्हारा राज्य निष्कंटक हो गया। आज तुम्हारे दस मुख सार्थक हैं। आज तुमने, हे देव, चौदह रत्न प्राप्त कर लिये। आज आप अपने छत्र और ध्वज-दण्ड ऊँचा कर दें। आज छहों खण्ड भूमिका भोग कीजिये। आज मत्त गजघटाका प्रसाधन किया जाय। आज ऊँचे अश्वोंपर सवारी कीजिए। देव, आज आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। क्योंकि भट्टारिका सीता देवी आज हँस रही हैं। शीघ्र ही अपना सुखद मांगलिक

एत्तिउ वुज्झमि णीसंदेहें । जइ आलिङ्गणु देइ सणेहें ॥८॥
तं णिसुणेवि दसाणणु हरिसिउ । सव्वङ्गिउ रोमञ्च पदरिसिउ ॥९॥

घत्ता

जो चप्पेंवि चप्पेंवि भरियउ सयल-भुवण-संतावणहों ।
सो हरिसु धरन्त-धरन्हों अङ्गें ण माइउ रावणहों ॥१०॥

[११]

जोइउ मन्दोयरिहें मुहु 'कन्तें पडीवी जाहि तुहुँ ।
अब्भत्थहि धयरट्ठ-गइ महु आलिङ्गणु देइ जइ ॥१॥
तं णिसुणेवि अणागय - जाणी । संचल्लिय मन्दोयरि राणी ॥२॥
ताएँ समाणु स-दोरु स-णेउरु । संचल्लिउ सयलु वि अन्तेउरु ॥३॥
जं पप्फुल्लिय-पङ्कय-वयणउ । जं कुवलय - दल-दीहर-णयणउ ॥४॥
जं सुरकरि-कर-मन्थर-गमणउ । जं पर-णरवर- मण-जूरवणउ ॥५॥
जं सुन्दरु सोहग्गुग्घवियउ । जं पीणत्थण - भारोणमियउ ॥६॥
जं मणहरु तणु-मज्झ-सरीरउ । जं उरयड - णियम्ब - गम्भीरउ ॥७॥
जं पय-णेउरु-घण-झङ्कारउ । जं रङ्खोलिर-मोत्तिय-हारउ ॥८॥
जं कञ्ची-कलाव-पब्भारउ । जं विब्भम-भूभङ्ग-वियारउ ॥९॥

घत्ता

तं तेहउ रावण-केरउ अन्तेउरु संचल्लियउ ।
णं स-भमरु माणस-सरवरें कमलिणि-वणु पप्फुल्लियउ ॥१०॥

[१२]

उण्णय-पीण-पओहरिहिँ रावण-णयण-सुहङ्करिहिँ ।
लक्खिय सीयाएवि किह सरियहिँ सायर-सोह जिह ॥१॥
णिम्मियलञ्छण ससि-जोण्हा इव । तित्ति-विरहिय अमिय-तण्हा इव ॥२॥
णिव्वियार जिणवर-पडिमा इव । रइ-विहि विण्णाणिय-घडिया इव ॥३॥
अभयङ्कर छज्जीव-दया इव । अहिणव-कोमल-वण्ण लया इव ॥४॥

तूर्य बजवाइए। मैं तो निश्चय ही यह समझती हूँ कि वह आज आपको स्नेहपूर्वक आलिङ्गन देंगी।" यह सुनकर रावण हर्षित हो उठा। उसको अङ्ग-अङ्गमें पुलक हो आया। हर्ष अङ्ग-प्रत्यङ्गमें कूट-कूटकर इतना भर गया कि त्रिभुवनसन्तापकारी रावणके धारण करनेपर भी वह समा नहीं पा रहा था ॥१-१०॥

[११] तब उसने देवी मन्दोदरीका मुख देखकर उससे कहा "तुम जाओ। शीलनिष्ठ उसकी अभ्यर्थना करना जिससे वह मुझे आलिङ्गन दे।" यह सुनकर अनागतको न जाननेवाली मन्दोदरी चली। उसके साथ सडोर और सनूपुर समस्त अन्तःपुर भी था। उस अन्तःपुरकी स्त्रियोंके मुखकमल खिले हुए थे। उनके नेत्र कुवलयदलकी भाँति आयत थे। उनकी चाल ऐरावतकी तरह मदमाती और मन्थर थी, जो पर-पुरुषोंको सतानेवाली थी। सौभाग्यसे भरी हुई वे पीन स्तनोंके भारसे झुकी जा रही थीं। उनका सुन्दर शरीर मध्यमें कृश हो रहा था। उरस्थल और नितम्ब गम्भीर थे। पैर नूपुरोंसे झंकृत थे। झलझलाते हुए मोतियोंके हार पहने थीं। करधनीके भारसे लदी हुई जो विभ्रम, भ्रूभङ्ग और विकारोंसे युक्त थीं। इस प्रकार रावणका अन्तःपुर चला। (वह ऐसा लगता था) मानो मानसरोवरमें भ्रमरसहित कमलिनी वन ही खिला हो ॥१-१०॥

[१२] रावणके नेत्रोंको शुभ लगनेवाली उन्नत और पीन-पयोधरोंवाली उन स्त्रियोंके बीचमें सीता देवी इस प्रकार दिखाई दीं मानो नदियोंके बीचमें समुद्रकी शोभा दृष्टिगत हुई हो। सीता देवी, चन्द्रज्योत्स्नाकी तरह अकलङ्क, अमृतकी तृष्णाकी तरह तृप्ति रहित, जिनप्रतिमाकी तरह निर्विकार, रतिविधिकी तरह विज्ञान-कौशलसे निर्मित, छहों जीवनिकायोंकी जीव-दयाकी भाँति

स-पओहर पाउस-सोहा इव । अविचल सव्वंसह वसुहा इव ॥५॥
कन्ति-समुज्जल तडि-माला इव । सव्व-सलोण उवहि-वेला इव ॥६॥
णिम्मल कित्ति व रामहों केरी । तिहुअणु भमेंवि परिट्ठिय सेरी ॥७॥

घत्ता

अट्ठारह जुवइ-सहासइँ सीयहेँ पासु समल्लियइँ ।
णं सरवरेँ सियहेँ णिसण्णइँ सयवत्तइँ पप्फुल्लियइँ ॥८॥

[१३]

गम्पिणु पासेँ वईसरेँवि कवडें चाडु-सयइँ करेँवि ।
राहव-घरिणि किसोयरिएँ संबोहिय मन्दोयरिएँ ॥१॥
'हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ किं मूढी । अच्छहि दुक्ख-महण्णवेँ छूढी ॥२॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ करि वुत्तउ । लइ चूडउ कण्ठउ कडिसुत्तउ ॥३॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ जइ जाणहि । लइ वत्थइँ तम्बोलु समाणहि ॥४॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ सुणु वयणइँ । अङ्गु पसाहहि अञ्जहि णयणइँ ॥५॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ लइ दप्पणु । चूडि णिवद्धहि जोअहि अप्पणु ॥६॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ अविओलेँहिँ । चडु गयवरेँहिँ गिल्ल-गिल्लोलेँहिँ ॥७॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ उत्तुङ्गेँहिँ । चडु चडुलेँहिँ हिंसन्त-तुरङ्गेँहिँ ॥८॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ महि भुञ्जहि । माणुस-जम्महोँ फलु अणुहुञ्जहि ॥९॥

घत्ता

पिउ इच्छहि पट्टु पडिच्छहि जइ सब्भावें हसिउ पइँ ।
तो लइ महएवि-पसाहणु अब्भत्थिय एत्तडउ मइँ ॥१०॥

[१४]

तं णिसुणेवि विदेह-सुअ पभणइ पुलय-विसट्ट-भुअ ।
'सच्चउ इच्छमि दहवयणु जइ जिण-सासणेँ करइ मणु ॥१॥
इच्छमि जइ महु मुहु ण णिहालइ । इच्छमि अणुवयाइँ जइ पालइ ॥२॥
इच्छमि जइ महु मासु ण भक्खइ । इच्छमि णियय-सीलु जइ रक्खइ ॥३॥
इच्छमि जइ भीयउ मम्भीसइ । इच्छमि जइ पर-दव्वु ण हिंसइ ॥४॥

अभय प्रदान करनेवाली, लताकी तरह, अभिनव कोमल रंगवाली, विद्युत्‌की तरह कान्तिसे समुज्ज्वल, समुद्रवेलाकी भाँति सब ओर लावण्यसे भरपूर, रामकी कीर्तिकी तरह निर्मल और त्रिलोकमें स्थित शोभाकी तरह सुन्दर थीं। अठारह हजार युवतियाँ आकर सीता देवीसे इस तरह मिलीं मानो सौन्दर्यके सरोवरमें कमल ही खिल गये हों ॥ १-८ ॥

[१३] मन्दोदरी जाकर सीता देवीके निकट बैठ गई। सैकड़ों प्रकारसे चाटुता करके उसने सीतादेवीको सम्बोधित करते हुए कहा—"हला हला सीता ! तुम मूर्ख क्यों बनती हो। अब तुम दुःखके महासमुद्रसे मुक्त हो चुकीं। हला-हला, सीता-सीता ! तुम मेरा कहना मानो। यह चूड़ामणि, कंठा और कटिसूत्र ले लो। हला-हला सीता-सीता ! यदि जानती होओ तो इन चीजोंका मान-सम्मान करो। हला-हला सीता-सीता ! हमारी बात सुनो। अंगोंको सजा लो। आँखें आँज लो। हला-हला सीता-सीता, दर्पण ले लो। चूड़ियाँ पहन लो, अपनेको दर्पणमें देखो। हला-हला सीता-सीता, धरतीका भोग करो और अपने मनुजजीवनको सफल बनाओ। प्रियको खूब चाहो, महादेवीके पट्टकी कामना करो। जो तुम आज यदि सद्भावसे हँसी हो तो लो महादेवीपर प्रसाद करो ! मेरी इतनी ही अभ्यर्थना है ॥ १-१० ॥

[१४] यह सुनकर विदेहसुता जानकीको बाहुओंमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने कहा कि मैं चाहती हूँ कि रावण जिनशासन में अपना मन लगाये, मैं चाहती हूँ कि वह मुझे न देखे, मैं चाहती हूँ कि वह अणुव्रतोंका पालन करे। मैं चाहती हूँ कि वह मधु और मांसका भक्षण न करे। मैं चाहती हूँ कि वह अपने शीलकी रक्षा करे। मैं चाहती हूँ कि वह भयभीतको अभयका

इच्छमि पर-कलत्तु जइ वज्जइ। इच्छमि जइ अणुदिणु जिणु अच्चइ ॥५॥
इच्छमि जइ कसाय परिसेसइ। इच्छमि जइ परमत्थु गवेसइ ॥६॥
इच्छमि जइ पडिमाउ समारइ। इच्छमि जइ पुजउ णीसारइ ॥७॥
इच्छमि अभय-दाणु जइ देसइ। इच्छमि जइ तव-चरणु लएसइ ॥८॥
इच्छमि जइ ति-कालु जिणु वन्दइ। इच्छमि जइ मणु गरहइ णिन्दइ ॥९॥

घत्ता

अप्पु मि इच्छमि मन्दोयरि आयामिय-पवराहवहों।
सिरसा चलणें हिं णिवडेप्पिणु जइ मइँ अप्पइ राहवहों ॥१०॥

[१५]

जइ पुणु णयणाणन्दणहों ण समप्पिय रहु-णन्दणहों।
तो हउँ इच्छमि एउ हलें पुरि खिप्पन्ती उवहि-जलें ॥१॥
इच्छमि णन्दणवणु भज्जन्तउ। इच्छमि पट्टणु पलयहों जन्तउ ॥२॥
इच्छमि णिसियर-वलु अत्थन्तउ। इच्छमि घरु पायालहों जन्तउ ॥३॥
इच्छमि दहमुह-तरु छिज्जन्तउ। तिलु तिलु राम-सरें हिं भिज्जन्तउ ॥४॥
इच्छमि दस वि सिरइँ णिवडन्तइँ। सरें हंसाइयइँ व सयवत्तइँ ॥५॥
इच्छमि अन्तेउरु रोवन्तउ। केस - विसन्थुलु धाहावन्तउ ॥६॥
इच्छमि छिज्जन्तइँ धय-चिन्धइँ। इच्छमि णच्चन्ताइँ कवन्धइँ ॥७॥
इच्छमि धूमन्धारिजन्तइँ। चउ-दिसु सुहड-चियाइँ वलन्तइँ ॥८॥
जं जं इच्छमि तं तं सव्वउ। णं [तो] करमि अज्जु हलें पव्वउ ॥९॥

घत्ता

जो आइउ राहव-केरउ एहु अच्छइ अङ्गुत्थलउ।
महु सहल-मणोरह-गारउ तुम्हहँ दुक्खहँ पोट्टलउ ॥१०॥

दान दे। मैं चाहती हूँ कि वह परस्त्रीके सेवनसे बचे। मैं चाहती हूँ कि वह प्रतिदिन जिनदेवकी अर्चा करे। मैं चाहती हूँ कि वह कषायोंको समाप्त कर दे। मैं चाहती हूँ कि वह अपने परमार्थकी खोज करे। मैं चाहती हूँ कि वह प्रतिमाओंका आदर करे। मैं चाहती हूँ कि वह जिनकी पूजा निकलवाए। मैं चाहती हूँ कि वह अभयदान दे। मैं चाहती हूँ कि वह तपश्चरण करे। मैं चाहतो हूँ कि वह तीन बार (दिनमें) जिनदेवकी वंदना करे। मैं चाहतो हूँ कि वह अपने मनकी निन्दा करे। हे मन्दोदरी, मैं यह भी चाहती हूँ कि विशाल युद्धोंमें समर्थ, रामके चरणोंमें गिरकर वह (रावण) मुझे (सीता) उन्हें सौंप दे ॥१-१०॥

[१५] किसी कारणवश यदि वह मुझे रघुनन्दन रामको नहीं सौंपना चाहता, तो हला मैं यही चाहती हूँ कि वह मुझे समुद्र में फेंक दे। मैं चाहती हूँ कि यह नन्दन वन नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। मैं चाहती हूँ कि यह लंका नगरी आगमें भस्मसात् हो जाय। मैं चाहती हूँ कि निशाचर सेनाका अन्त हो। मैं चाहती हूँ कि यह भवन पातालमें धँस जाय। चाहती हूँ कि दशानन रूपी यह वृक्ष नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। चाहती हूँ कि रामके तीर उसे तिल-तिल काट डालें। चाहतो हूँ कि रावणके दसों सिर वैसे ही कट कर गिर जायँ जैसे हंसोंसे कुतरे कमल सरोवरमें गिर पड़ते हैं। चाहती हूँ कि उसका अंतःपुर क्रन्दन करे, उसकी केशराशि बिखरी हो और डाढ़ मार कर रोये। चाहती हूँ कि उसका ध्वज-चिह्न छिन्न-भिन्न हो जाय। चाहती हूँ कि धड़ नाच उठें और चाहती हूँ कि चारों ओर सुभटोंकी धुआँधार चिताएँ जल उठें। हला, जो जो मैं कहती हूँ वह सब सच है। मैं तो विश्वास करती हूँ। देखो यह रामकी अंगूठी आई है। यह मेरे सब मनोरथोंको पूरी करनेवाली है, और तुम्हारे लिए दुखकी पोटली है ॥१-१०॥

[१६]

तं णिसुणेवि विरुद्ध - मण सुरवर-करि-कुम्भयल-थण ।
लक्खण-राम-पसंसणेंण पजलिय - कोव - हुआसणेंण ॥१॥
'मरु कहिँ तणउ रामु कहिँ लक्खणु । अज्जु पावें तउ कुद्धु दसाणणु ॥२॥
सम्भरु सम्भरु इट्ठा - देवउ । मंसु विहञ्जेंवि भूअहँ देवउ ॥३॥
लीह लुहमि तुह तणयहोँ णामहोँ । जिह ण होहि रामणहोँ ण रामहोँ ॥४॥
एउ भणेप्पिणु रिउ - पडिकूलें । धाइय मन्दोअरि सहुँ सूलें ॥५॥
जालामालिणी विसहुँ .जालें । कङ्काली कराल - करवालें ॥६॥
विज्जुप्पह विज्जुज्जल - वयणी । दसणावलि रत्तुप्पल - णयणी ॥७॥
हयमुहि हिलिहिलन्ति उद्धाइय । गयमुहि गुलुगुलन्ति संपाइय ॥८॥
तं वलु णिऍवि तियहुँ भीसाणहुँ । कालु कियन्तु वि मुच्चइ पाणहुँ ॥९॥

घत्ता

तेहऍ वि कालें पडिवण्णऍ विणु रामें विणु लक्खणेंण ।
वइदेहिहेँ चित्तु ण कम्पिउ दिढ-वलेण सीलहोँ तणेंण ॥१०॥

[१७]

तं उवसग्गु भयावणउ अण्णु वि सीय-दिढत्तणउ ।
पेक्खेंवि पुलय-विसट्ट-भुउ अग्गु पसंसहुँ पवण-सुउ॥१॥
'धीरु जें धीरउ होइ णियाणेँ वि । ढुक्कन्तऍ जीविय - अवसाणेँ वि ॥२॥
तियहे होइ जं सीयहे साहसु । तं तेहउ पुरिसहोँ वि ण ढुक्कसु ॥३॥
एहऍ विहुर - कालें वट्टन्तऍ । सामिहेँ तणऍ कलत्तें मरन्तऍ ॥४॥
जइ मइँ अप्पउ णाहिँ पगासिउ । तो अहिमाणु मरट्टु विणासिउ ॥५॥
एम भणेप्पिणु लउडि - विहत्थउ । अहिणव- पिञ्जर- वत्थ- णियत्थउ ॥६॥
णं कणियारि - णिवहु पप्फुल्लिउ । णं कलहोय - पुञ्जु संचल्लिउ ॥७॥

[१६] यह सुनकर ऐरावतके कुंभस्थलकी तरह पीन स्तनोंवाली मंदोदरीका मन विरुद्ध हो उठा। राम और लक्ष्मण की प्रशंसासे उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। वह बोली, "मर-मर, कहाँ राम और कहाँ लक्ष्मण, तू आज ही रावणको क्रुद्ध पायेगी। अपने इष्टदेवका स्मरण कर ले। तेरा मांस काटकर भूतोंको दे दिया जायगा। तुम्हारे नाम तककी रेखा पोंछ दी जायगी। जिससे तू न तो रावणकी होगी और न रामकी।" यह कहकर मन्दोदरी शत्रु-विरोधी शूल लेकर दौड़ी। ज्वालमालिनी विषकी ज्वाला और कंकाली कराल करवाल लेकर दौड़ी। बिजलीकी तरह उज्ज्वल तरंगकी विद्युत्प्रभा रक्तकमलकी तरह नेत्रवाली दशनावली और अश्वमुखी हिनहिना कर उठी। गजमुखी गरजती हुई आई। उन भीषण स्त्रियोंकी उस भयङ्कर सेनाको देखकर काल और कृतान्तने भी अपने प्राण छोड़ दिये। परन्तु उस घोर संकट काल में, राम और लक्ष्मणके बिना भी दृढ़ शीलके बलसे सीताका हृदय जरा भी नहीं काँपा॥ १–१०॥

[१७] तब उस भयङ्कर उपसर्ग और सीता देवीकी दृढ़ताको देखकर हनुमानकी भुजाएँ पुलकित हो उठीं। वह उनकी प्रशंसा करने लगा कि "संकटमें जीवनका अन्त आ पहुँचनेपर भी इस धीराने धीरज रक्खा। स्त्री होकर भी सीता देवीमें जितना साहस है, उतना पुरुषोंमें भी नहीं होता। इस अत्यन्त विधुर समयमें भी जब कि स्वामी रामकी पत्नी मर रही है, यदि मैं अपने आपको प्रकट नहीं करूँ तो मेरा अहङ्कार और अभिमान नष्ट हो जायगा", यह सोचकर हनुमानने अपने हाथमें गदा ले लिया और पीत वस्त्र पहनकर वह चल पड़ा। वह ऐसा लग रहा था मानो पुष्पित कनेर-पुष्पोंका समूह हो या स्वर्ण-पुंज हो। (इस प्रकार)

घत्ता

मन्दोयरि-सीयाएविहिँ कलहेँ पवड्ढिएँ भुवण-सिरि ।
णं उत्तर-दाहिण-भूमिहिँ मज्झेँ परिट्ठिउ विज्झइरि ॥८॥

[१८]

'ओसरु ओसरु दिढ-मइहेँ पासहोँ सीय - महासइहेँ ।
हउँ आयामिय-पर- वलेँहिँ दूउ विसज्जिउ हरि-वलेँहिँ ॥१॥
हउँ सो राम - दूउ संपाइउ । अङ्गुत्थलउ लएप्पिणु आइउ ॥२॥
पहरहोँ मइँ समाणु जइ सक्कहोँ । सीया - एविहेँ पासु म ढुक्कहोँ ॥३॥
तं णिसुणेवि वयणु णिसिगोअरि । चविय विरुद्ध कुद्ध मन्दोअरि ॥४॥
'चङ्गउ पुरिस-विसेसु गवेसिउ । साणु लएवि सीहु परिसेसिउ ॥५॥
खरु संगहेँवि तुरङ्गमु वञ्चिउ । जिणु परिहरेँवि कु-देवउ अञ्चिउ ॥६॥
छालउ धरेँवि गइन्दु विमुक्कउ । वड्डन्तरेँण मित्त तुहुँ चुक्कउ ॥७॥
एक्कु वि उवयारु ण सम्भरियउ । रावणु मुएँवि रामु जं वरियउ ॥८॥
जसु णामेण जि हासउ दिज्जइ । तासु केम दूअत्तणु किज्जइ ॥९॥

घत्ता

जो सयल-कालु पुज्जेव्वउ कडय-मउड - कडिसुत्तएँहिँ ।
सो एवहिँ तुहुँ वन्धेव्वउ चोरु व मिलेँवि वहुत्तएँहिँ ॥१०॥

[१९]

तं णिसुणेँवि हणुवन्तु किह झत्ति पलित्तु दवग्गि जिह ।
'जं पइँ रामहोँ णिन्द कय किह सय-खण्डु ण जीह गय ॥१॥
जो धगधगधगन्तु वइसाणरु । रक्खस - वण - तिण-रुक्ख-भयङ्करु ॥२॥
अण्णु वि जसु सहाउ भड-भञ्जणु । झडझडन्ति (?) सोमित्ति-पहञ्जणु ॥३॥

मन्दोदरी और सीता देवीमें कलह बढ़नेपर, भुवन-सौन्दर्य हनुमान उनके बीचमें जाकर इसी प्रकार खड़ा हो गया जिस प्रकार उत्तर और दक्षिण भूमियोंके मध्यमें विन्ध्याचल पर्वत खड़ा है ॥१-८॥

[१८] हनुमानने (गरजकर) कहा, "मन्दोदरी, तू दृढबुद्धि महासती देवीके पाससे दूर हट, मैं, शत्रुसेनाके लिए समर्थ राम और लक्ष्मणका भेजा दूत हूँ। मैं वही रामका दूत हूँ और हाथकी अँगूठी लेकर आया हूँ। बन सके तो मुझपर प्रहार करो पर सीता देवीके पाससे दूर हट।" यह सुनते ही निशाचरी मन्दोदरी एकदम क्रुद्ध हो उठी। वह बोली, "खूब अच्छा विशेष पुरुष तुमने खोजा हनुमान? कुत्ता लेकर (वास्तवमें) तुमने सिंह छोड़ दिया, गधेको ग्रहणकर उत्तम अश्वका त्याग कर दिया। जिनवरको छोड़कर कुदेवकी पूजा की। बकरा लेकर गजवर छोड़ दिया। मित्र, तुमने बहुत बड़ी भूल की है। तुम्हें हमारा एक भी उपकार याद नहीं रहा जो इस प्रकार रावणको छोड़कर रामसे मिल गये (मित्रता कर ली)। (उस रामके साथ) कि जिसका नाम सुनकर भी लोग मजाक उड़ाते हैं, उसका दूतपन कैसा। जो तुम कटक मुकुट और कटिसूत्रोंसे सदैव सम्मानित होते रहे, वही तुम्हें इस समय चोरोंकी तरह राजपुत्र मिलकर बाँध लेंगे।" ॥१-१०॥

[१६] यह सुनकर हनुमान दावानलकी तरह (सहसा) प्रदीप्त हो उठा। उसने कहा, "तुमने जो रामकी निंदा की, सो तुम्हारी जीभके सौ-सौ टुकड़े क्यों नहीं हो गये। निशाचररूपी वन-तृण और वृक्षोंके लिए जो अत्यन्त भयङ्कर और धक-धक करता हुआ दावानल है, और झटझटाता हुआ लक्ष्मण रूपी पवन

तेहिँ विरुद्धएहिँ को छुट्टइ। जाहँ णिणाएं अम्वरु फुट्टइ ॥४॥
कण्हहोँ किण्ण परक्कमु वुज्झिउ। खर-दूसणँहिं समउ जें जुज्झिउ ॥५॥
चालिय कोडिसिल वि अविओलें। लच्छि व गएँण गिल्ल-गिल्लोलें ॥६॥
साहसगइ वि वियारिउ रामें। को जगेँ अण्णु तेण आयामें ॥७॥
अहवइ रावणो वि जस-लुद्धउ। णवर चारु-सीलेण न लद्धउ ॥८॥
चोरहोँ परयारियहोँ अज्जोएवि(?)। तासु सहाउ होइ किं कोइ वि ॥९॥

घत्ता

अण्णु वि णव-कोमल-वाहँहि जसु दिज्जइ आलिङ्गणउ।
मन्दोवरि तहोँ णिय-कन्तहोँ किह किज्जइ दूअत्तणउ' ॥१०॥

[२०]

जं पोमाइउ दासरहि णिन्दिउ रावण-वल-उवहि।
तं मन्दोअरि कुइय मणेँ विज्जु पगज्जिय जिह गयणेँ ॥१॥
'अरेँ अरेँ हणुव हणुव वल-गावहुँ। दिट्ठु होज्जहि एयहुँ आलावहुँ ॥२॥
जइ ण विहाणएँ पइँ वन्धावमि। तो णिय-गोत्तेँ कलङ्कउ लावमि ॥३॥
अण्णु मि घरिणि ण होमि णिसिन्दहोँ। णउ पणिवाउ करेमि जिणिन्दहोँ ॥४॥
एम भणेवि तुरिउ संचल्लिय। वेल समुद्दहोँ जिह उत्थल्लिय ॥५॥
परिवारिय लङ्काहिव-पत्तिहिँ। पढम विहत्ति व सेस-विहत्तिहिँ ॥६॥
णेउर - हार - दोर - पालम्वेँहिँ। सुरधणु - तारायण-पडिविम्वेँहिँ ॥७॥
पक्खलन्ति णिवडन्ति किसोयरि। गय णिय-णिलउ पत्त मन्दोयरि ॥८॥

जिसका सहायक है। जिसके निनादसे आकाश भी फट उठता है, भला उस रामके विरुद्ध कौन बच सकता है। लक्ष्मणकी जिस समय खरदूषणसे लड़ाई हुई थी क्या उस समय उसका पराक्रम समझमें नहीं आया। जिन्होंने अविचल कोटिशिलाको उसी प्रकार विचलित कर दिया जिस प्रकार मदझरता गज लक्ष्मी को। रामने सहस्रगतिको हरा दिया है। दूसरा कौन उसके सम्मुख विश्वमें समर्थ है। यद्यपि रावण भी यशका लोभी है परन्तु उसने सुन्दर शील प्राप्त नहीं किया। फिर दूसरोंकी स्त्रियोंको उड़ानेवाले रावणकी शरणमें जाकर कौन उसका सहायक बनना चाहेगा। और भी तुम जिस रावणको नव कोमल बाष्पसे पूरित आलिंगन देती हो उस अपने पतिका यह दूतीपन कैसा ?" ॥१-१०॥

[२०] इस प्रकार जब हनुमानने रामकी प्रशंसा और रावण रूपी समुद्रकी निन्दा की तो निशाचरी मन्दोदरी उसी प्रकार कुपित हो उठी मानो आकाशमें बिजली ही चमकी हो। वह चिल्लाकर बोली, "अरे-अरे, बलसे गर्विष्ठ इसे मारो मारो," अपने शब्दोंपर दृढ़ रह, यदि कल ही तुझे न बँधवा दिया तो अपने गोत्रको कलंक लगाऊँ और रावणकी पत्नी न कहलाऊँ, तथा जिनेन्द्र देवको नमन न करूँ।" यह कहकर मन्दोदरी फुदककर ऐसे चली मानो समुद्रकी बेला ही उछल पड़ी हो। जिस प्रकार प्रथमा विभक्ति शेष विभक्तियोंसे घिरी रहती है, उसी तरह वह रावणकी दूसरी पत्नियोंसे घिरी हुई थी। इन्द्रधनुष और तारागणके अनुरूप नूपुर और हार डोरसे स्खलित होती गिरती पड़ती वह अपने भवनमें पहुँच गई ॥१-८॥

घत्ता

हणुऍण वि रहसुच्छलिलऍण दुद्दम-दणु-दप्पुब्भुऍहिं ।
णं जिणवर-पडिम सुरिन्दें ण पणमिय सीय स यं भु ऍहिं ॥९॥

●

[५० पण्णासमो संधि]

गय मन्दोयरि णिय-घरहों हणुवन्तु वि सीयहे सम्मुहउ ।
अग्गऍ थिउ अहिसेय-करु णं सुरवर-लच्छिहें मत्त-गउ ॥

[१]

माल्लूर-पवर-पीवर-थणाएँ कुवलय-दल-दीहर-लोयणाएँ ।
पप्फुल्लिय-वर-कमलाणणाएँ हणुवन्तु पपुच्छिउ दिढ-मणाएँ ॥१॥

(पद्धडिया-दुवई)

'कहें कहें वच्छ वच्छ वहु-णामहों । कुसल-वत्त किं अकुसल रामहों ॥२॥
कहें कहें वच्छ वच्छ कमलेक्खणु । किं विणिहउ किं जीवइ लक्खणु' ॥३॥
तं णिसुणेंवि सिरसा पणमन्तें । अक्खिय कुसल-वत्त हणुवन्तें ॥४॥
'माएँ माएँ करें धीरउ णिय-मणु । जीवइ रामचन्दु स-जणद्दणु ॥५॥
णवरि परिट्ठिउ णीह-विसेसउ । तवसि व सव्व-सङ्ग-परिसेसउ ॥६॥
चन्दु व वहुल-पक्ख-खय-खीणउ । णिवइ व रज्ज-विहोय-विहीणउ ॥७॥
रुक्खु व पत्त-रिद्धि-परिचत्तउ । सुकइ व दुक्कर कइ चिन्तन्तउ ॥८॥
तरणि व णिय-किरणेंहिं परिवज्जिउ । जलणु व तोय-तुसार-परज्जिउ ॥९॥

घत्ता

इन्दु व चवण-कालें लहसिउ दसमिहें आगमणें जेम जलहि ।
खाम-खामु परिक्षीण-तणु तिह तुम्ह विओएं दासरहि ॥१०॥

इधर हनुमानने भी, हर्षसे उछलते हुए दुर्दम दानवोंका दमन करने वाली भुजाओंसे सीतादेवीको उसी प्रकार प्रणाम किया जिस प्रकार देवेन्द्र जिन-प्रतिमाको नमन करता है ॥९॥

●

पचासवीं संधि

मन्दोदरीके चले जानेपर हनुमान सीतादेवीके सम्मुख ऐसे बैठ गया मानो अभिषेक करनेवाला महागज ही देवलक्ष्मीके सम्मुख बैठ गया हो ।

[१] तदनन्तर विकसित मुख कमलवाली आँखें, कुवलयदलके समान नेत्र और बेलफलकी तरह पीन स्तनवाली दृढमना सीतादेवीने हनुमानसे पूछा, "हे वत्स, कहो-कहो अनेक नामवाले रामकी कुशलवार्ता है या अकुशल। हे वत्स! बताओ बताओ, कमल-नयन लक्ष्मण जीवित हैं या मारे गये।" यह सुनकर हनुमानने सिरसे प्रणाम करते हुए रामकी कुशल-वार्ता कहना आरम्भ किया। "हे माँ, धीरज अपने मनमें रखिए। लक्ष्मणसहित राम जीवित हैं परन्तु वे रेखाकी तरह ही अवशिष्ट हैं। तपस्वीकी भाँति उनके अङ्ग-अङ्ग सूख गये हैं। कृष्णपक्षके चन्द्रकी तरह वह अत्यन्त क्षीण हो चुके हैं, निवृत्ति (मार्गियों) के समान राज्योपभोगसे रहित हैं। वृक्षकी तरह पत्तों (प्राप्ति और पत्र) की ऋद्धिसे परित्यक्त हैं। दुष्कर-कथाका विचार करते हुए कविकी तरह अत्यन्त चिन्ताशील हैं। सूर्यकी तरह अपनी ही किरणोंसे वर्जित हैं। आगकी भाँति तोय और तुषारसे (आँसू और प्रस्वेदसे) वर्जित हैं। तुम्हारे वियोगमें राम क्षयकालके इन्दुकी तरह ह्रासोन्मुख हो रहे हैं। या दसमीके इन्दुकी भाँति अत्यन्त दुर्बल और अशक्त शरीर हैं ॥१-१०॥

[२]

अण्णु वि मयरहरावत्त-धरु सिर-सिहर-चडाविय-उभय-करु ।
णिय जणणि वि एव ण अणुसरइ सोमित्ति जेम पइँ संभरइ ॥१॥

(पद्धडिया-दुवई)

सुमरइ णिय-णन्दणु माया इव सुमरइ सिहि पाउस-छाया इव ॥२॥
सुमरइ जणु पहु-मजाया इव ॥३॥
सुमरइ भिच्चु सु-सामि-दया इव । सुमरइ करहु करीर-लया इव ॥४॥
सुमरइ मत्त-हत्थि वणराइ व । सुमरइ मुणिवरु गइ-पवरा इव ॥५॥
सुमरइ णिद्धणु धण-सम्पत्ति व । सुमरइ सुरवरु जम्मुप्पत्ति व ॥६॥
सुमरइ भविउ जिणेसर-भत्ति व । सुमरइ वइयाकरणु विहत्ति व ॥७॥
सुमरइ ससि संपुण्ण पहा इव । सुमरइ वुहयणु सुकइ-कहा इव ॥८॥
तिह पइँ सुमरइ देवि जणद्दणु । रामहों पासिउ सो दूमिय-मणु ॥९॥

घत्ता

एक्कु तुहारउ परम-दुहु अण्णेक्कु वि रहु-तणयहों तणउ ।
एक्कु रत्ति अण्णेक्कु दिणु सोमित्तिहेँ सोक्खु कहिं तणउ' ॥१०॥

[३]

तो गुण-सलिल-महाणइहेँ रोमञ्चु पवड्ढिउ जाणइहेँ ।
कञ्चुउ फुट्टेंवि सय-खण्डु गउ णं खलु अलहन्तु विसिट्ठ-मउ ॥१॥

(पद्धडिया-दुवई)

पढमु सरीरु ताहेँ रोमञ्चिउ । पच्छएँ णवर विसाएँ खञ्चिउ ॥२॥
'दुक्करु राम-दूउ एहु आइउ । मञ्छुडु अण्णु को वि संपाइउ ॥३॥
अत्थि अणेय एत्थु विज्जाहर । जे णाणाविह - रूव-भयङ्कर ॥४॥
सव्वहँ मइँ सब्भाव णिरिक्खिय । चन्दणहि वि चिरु णाहिँ परिक्खिय ॥५॥
णं वण-देवय थाणहों चुक्की । "मइँ परिणहों" पभणन्ति पढुक्की ॥६॥

[२] आपके वियोगमें लक्ष्मण भी अपने दोनों हाथ सिरपर रखकर जितनी याद आपकी करता है, उतनी अपनी माँकी भी नहीं करता। वह आपको उसी तरह याद करता है जिस प्रकार बच्चा अपनी माँकी याद करता है। मयूर जिस तरह पावस छायाकी याद करता है, जिस प्रकार सेवक अपनी प्रभुकी मर्यादा की याद करता है, जिस प्रकार अच्छा किङ्कर अपने स्वामीकी दयाकी याद करता है, जिस प्रकार करभ करीरलताकी याद करता है, जिस प्रकार मदगज वनराजीकी याद करता है, जिस प्रकार मुनि उत्तम गतिकी याद करता है, जिस प्रकार इन्द्र जिनजन्मकी याद करता है, जिस प्रकार भव्य जीव जिन-भक्तिको याद करता है, जिस प्रकार वैयाकरण विभक्तिको याद करता है, जिस प्रकार चन्द्रमा सम्पूर्ण महाप्रभाकी याद करता है, वैसे हे देवी, लक्ष्मण आपको याद करते रहते हैं। रामकी अपेक्षा कुमार लक्ष्मण को एक तुम्हारा ही परम दुःख है। दूसरा दुख है रामका। चाहे रात हो या दिन लक्ष्मणको सुख कहाँ? ॥१-१०॥

[३] तब (यह सुनकर) गुणगणके जलसे भरी हुई सीता-देवी रूपी महानदीको रोमाञ्च हो गया। उनकी चोली फटकर सौ टुकड़े हो गई, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार विशिष्ट मतको न पाकर खल सौ-सौ खंड हो जाता है। पहले तो उनका शरीर पुलकित हुआ। किन्तु बादमें वह विषादसे भर उठीं। वह सोचने लगी कि यह दुष्कर रामका दूत आया है, या शायद कोई दूसरा ही आया हो। यहाँ तो बहुतसे विद्याधर हैं जो नाना रूपोंमें भयङ्कर हैं, मैं तो सभीमें सद्भाव देख लेती हूँ। जैसे मैं बहुत समय तक चन्द्रनखाको नहीं पहचान सकी थी। किन्तु वह (चन्द्रनखा) किसी स्थानभ्रष्ट देवीकी तरह आई और कहने लगी कि मुझसे

णवर णियाणें हूअ विज्जाहरि । किलिकिलन्ति थिय अम्हहँ उप्परि ॥७॥
लक्खण-खग्गु णिएवि पणट्ठी । हरिणि व वाह-सिलीमुह-तट्ठी ॥८॥
अण्णेक्कएँ किउ णाउ भयङ्करु । हउ मि छलिय विच्छोइउ हलहरु ॥९॥

घत्ता

कहिँ लक्खणु कहिँ दासरहि आयहों दूअत्तणु कहिँ तणउ ।
माया-रूवें पिउ करेंवि मणु जोअइ को वि महु त्तणउ ॥१०॥

[४]

आढवमि खेड्डु वरि एण सहुँ पेक्खहुँ कवणुत्तरु देइ महु ।
माणवेंण होवि आसङ्कियउ किउ लवण-महोवहि लङ्घियउ' ॥१॥
पच्चारिउ णिय-मणें चिन्तन्तिएँ । 'जइ तुहुँ राम-दूउ विणु भन्तिएँ ॥२॥
तो किह कमिउ वच्छ पइँ सायरु । जो सो णक्क-ग्गाह - भयङ्करु ॥३॥
कच्छव - मच्छ - दच्छ - पुच्छाहउ । सुंसुमार-करि -मयर-सणाहउ ॥४॥
जोयण-सयइँ सत्त जल वित्थरु । णिच्च णिगोउ जेम अइ दुत्तरु ॥५॥
एक्कु महोवहि दुप्पइसारो । अण्णु वि आसाली-पायारो ॥६॥
सो सव्वहुँ दुलङ्घु संसारु व । अवुहहुँ विसमउ पच्चाहारु व ॥७॥
तहों पडिवलु परिवड्ढिए-हरिसउ । वज्जाउहु वज्जाउह - सरिसउ ॥८॥
अण्णु महाहवें विप्फुरिताहरि । केम परज्जिय लङ्कासुन्दरि ॥९॥

घत्ता

आयइँ सव्वइँ परिहरेंवि तुहुँ लङ्का-णयरि पइट्ठु किह ।
अट्ठ वि कम्मइँ णिद्दलेंवि वर-सिद्धि-महापुरि सिद्धु जिह' ॥१०॥

[५]

तं णिसुणेंवि वयणु महग्घविउ विसहेप्पिणु अंजणेउ चविउ ।
'परमेसरि अज्ज वि भन्ति तउ जावेंहिँ वज्जाउहु समरें हउ ॥१॥

विवाह कर लो। पर वास्तवमें वह विद्याधरी थी बादमें वह किलकारी मारकर हमारे ऊपर ही दौड़ी। परन्तु (कुमार लक्ष्मणकी) तलवार सूर्यहास देखकर वह वैसे ही एकदम त्रस्त हो उठी मानो व्याधाके तीरोंसे आहत कुरंगी ही हो। एक और विद्याधरने सिंहनाद किया, और इस प्रकार मेरा अपहरणकर मुझे रामसे अलग कर दिया। फिर लक्ष्मण कहाँ राम कहाँ, और कहाँ यह दूतकार्य! जान पड़ता है, कोई छलसे मेरा प्रियकर मेरा मन थाहना चाहता है। ॥१-१०॥

[४] अच्छा, मैं तबतक इससे कुछ कौतुक करती हूँ। देखूँ, यह क्या उत्तर देता है। (अपने मनमें यह सोचकर) सीतादेवी ने पूछा—"अरे मनुष्य होकर भी तुम इतने समर्थ हो? आखिर तुमने लवण-समुद्र कैसे पार किया। यदि तुम निःसन्देह रामके दूत हो तो तुमने समुद्र कैसे पार किया। हे वत्स! वह (समुद्र) मगर और ग्राहोंसे भयङ्कर है, कच्छप, मच्छ और दक्षसे युक्त है। शिशुमार, हाथी और मगरोंसे भरा हुआ है, सात सौ योजनके विस्तारवाला जो नित्यनिगोदकी भाँति दुस्तर है। एक तो उसमें प्रवेश करना वैसे ही कठिन है, और फिर उसपर आसाली विद्या का परकोटा है। सचमुच ही, वह सब संसारकी तरह, या अपंडितके लिए विषम प्रत्याहारकी तरह अलंघ्य है। इतनेपर भी उसका रक्षक, इन्द्रके समान, हर्षोत्फुल्ल वज्रायुध है। और तुमने युद्धमें कम्पिताधरा लंकासुन्दरीको किस प्रकार पराजित किया। इन सबसे बचकर, तुम किस प्रकार लंका नगरीमें प्रविष्ट हो गये, जिस प्रकार सिद्ध सिद्धपुरीमें प्रवेश करते हैं ॥१-१०॥

[५] इन बहुमूल्य बातोंको सुनकर हनुमानने हँसकर कहा, "हे परमेश्वरी! क्या आज भी आपको सन्देह है, मैंने युद्धमें वज्रा-

जावेहिँ वसिकिय लङ्कासुन्दरि । लइय सा वि कुञ्जरेँण व कुञ्जरि ॥२॥
णिहयासालि महोवहि लङ्घिउ । एवहिँ रावणो वि आसङ्किउ ॥३॥
एव वि जइ ण देवि पत्तिज्जहि । तो राहव-सङ्केउ सुणेज्जहि ॥४॥
जइयहुँ वण-वासहोँ णीसरियइँ । दसउर - कुव्वर-पुर पइसरियइँ ॥५॥
णम्मय विन्झु तावि अहिणाणइँ । अरुणगाम - रामउरि - पयाणइँ ॥६॥
जयउर - णन्दावत्त - णिवाणइँ । खेमञ्जलि - वंसत्थल - थाणइँ ॥७॥
गुत्त - सुगुत्त - जडाइ - णिवेसइँ । खग्गु सम्बु चन्दणहि पएसइँ ॥८॥
खर - दूसण - सङ्गाम - पवञ्चइँ । तिसिरय-रण - चरियाइँ दइवइँ ॥९॥

घत्ता

एयइँ चिन्धइँ पायडइँ अवराइ मि कियइँ जाइँ छलइँ ।
काइँ ण पइँ अणुहूआइँ अवलोयणि सीहणाय-फलइँ ॥१०॥

[६]

सुणि जिह जडाइ संघारियउ रणेँ रयणकेसि वित्थारियउ ।
सहसगइ सरेहिँ वियारियउ सुग्गीउ रज्जेँ वइसारियउ' ॥१॥
तं णिसुणेवि सीय परिओसिय । 'साहु साहु भो' एम पघोसिय ॥२॥
'सुहड-सरीर-वीर-वल-मद्दहोँ । सच्चउ भिच्चु होहि वलहद्दहोँ' ॥३॥
पुणु पुणु एम पसंस करन्तिएँ । परिहिए अङ्गुत्थलउ तुरन्तिएँ ॥४॥
रेहइ करयल-कमलाइद्धउ । णं महुअरु मयरन्द-पइद्धउ ॥५॥
ताव चउत्थउ पहरु समाहउ । लङ्कहिँ दिण्णु णाइँ जम-पडहउ ॥६॥

युधको मार गिराया है। लंकासुन्दरी भी मेरे वशमें है, उसी प्रकार जिस प्रकार हथिनी हाथीके वशमें हो जाती है। आसाली (आसालिका) विद्याको भी मैंने नष्ट कर दिया है। और इस समय मैं रावणका सामना करनेमें समर्थ हूँ। इतने पर भी आपको विश्वास न हो रहा हो तो मैं राघवके दूसरे-दूसरे संकेतोंको बताता हूँ आप सुनिए। जब राम वनवासके लिए निकले तो वे दशपुर और नलकूबरके नगरमें प्रविष्ट हुए। नर्वदा विंध्याचल (होते हुए) और ताप्ती नदीमें स्नान करके उन्होंने सबेरे रामपुरी नगरीके लिए प्रस्थान किया। जयपुर और नंदावर्त नगरको उन्होंने नष्ट किया। क्षेमञ्जलि और वंशस्थल स्थानोंका अवलोकन किया। फिर गुप्त-सुगुप्त और जटायुका संनिवेश, सूर्यहास खड्ग, शम्बूक कुमार और चंद्रनखाका प्रवेश, खर-दूषणके संग्रामकी प्रवंचना, त्रिशिराका रण-चरित्र, तथा दूसरे-दूसरे दैत्योंके भी। ये तो उनकी पहचान की स्वाभाविक बातें हैं। निशाचरोंने और भी दूसरे-दूसरे छल किये हैं। क्या आपको अवलोकिनी विद्या, और सिंहनादके फलोंका पता नहीं है ॥१-१०॥

[६] सुनिए, जिस प्रकार जटायुका संहार हुआ और विद्याधर रत्नकेशी पराजित हुआ। सहस्रगति तीरोंसे छिन्न-भिन्न हो गया। सुग्रीव राजगद्दीपर बैठाया गया"। यह सुनकर सीता देवी को संतोष और विश्वास हो गया। उन्होंने कहा, "साधु-साधु, निश्चय ही तुम सुभट शरीर वीर रामके अनुचर हो।" बार-बार इस प्रकार हनुमानकी प्रशंसा करके सीता देवीने उस अंगूठीको अपनी उँगलीमें पहन लिया। करकमलमें लिपटी हुई वह ऐसी जान पड़ रही थी मानो मधुकर ही परागमें प्रविष्ट हो गया हो। इतनेमें चौथे पहरका इस प्रकार अन्त हो गया कि मानो

णाइँ पघोसइ 'अहोँ अहोँ लोयहोँ। धम्मु करहोँ धण-रिद्धि म जोयहोँ ॥७॥
सच्चु चवहोँ पर-दव्वु म हिंसहोँ। जें चुक्कहोँ तहोँ वइवस-महिसहोँ ॥८॥
पर-तिय मज्जु मंहु महु वज्जहोँ। जें चुक्कहोँ संसार-पवज्जहोँ ॥९॥

घत्ता

मं जाणेज्जहोँ पहरु गउ जमरायहोँ केरउ आण-करु।
तिक्खेँहिँ णाडि-कुढारऍहिँ दिवेँदिवेँ छिन्देवउ आउ-तरु' ॥१०॥

[७]

णं पुणु वि पघोसइ घडिय-सरु 'हउँ तुम्हहुँ गुरु उवएस-करु।
जग्गहोँ जग्गहोँ केत्तिउ सुअहोँ मच्छरु अहिमाणु माणु मुअहोँ ॥१॥
किण्ण णियच्छहोँ आउ गलन्तउ। णाडि-पमाणेँहिँ परिमिज्जन्तउ ॥२॥
अट्ठारह-सय-सङ्ख-पगासेँहिँ। सिद्धेँहिँ सडसिएँहिँ ऊसासेँहिँ ॥३॥
णाडि-पमाणु पगासिउ एहउ। तिहिँ णाडिहिँ मुहुत्तु तं केहउ ॥४॥
सत्त-सयाहिऍहिँ ति-सहासेँहिँ। अण्णु वि तेहत्तरि-ऊसासेँहिँ ॥५॥
एक्कु मुहुत्त-पमाणु णिबद्धउ। दु-मुहुत्तेँहिँ पहरद्धु पसिद्धउ ॥६॥
पहरद्धु वि सत्तद्ध-सहासेँहिँ। अण्णु वि छायालेँहिँ ऊसासेँहिँ ॥७॥
बिहिँ अद्धेँहिँ दिणद्धहोँ अद्धउ। वाणवइ-ऊसासेँहिँ वद्धउ ॥८॥
अण्णु वि पण्णारहहिँ सहासेँहिँ। पहरु पगासिउ सोक्ख-णिवासेँहिँ ॥९॥

घत्ता

णाडिहेँ णाडिहेँ कुम्भु गउ चउसट्ठिहिँ कुम्भेँहिँ रत्ति-दिणु'।
एत्तिउ छिज्जइ आउ-बलु तें कज्जें थुव्वइ परम-जिणु' ॥१०॥

लंकामें यमका डंका पिट गया हो, मानो वह यह घोषणा कर रहा था कि अरे लोगों धर्मका अनुष्ठान करो, दूसरोंकी ऋद्धिका विचार मत करो, सत्य बोलो, दूसरेके धनका अपहरण मत करो। यदि तुम यम-महिषसे बचना चाहते हो तो मद्य, मांस और मधुसे बचते रहो। यदि तुम संसारकी प्रवंचनासे छूटना चाहते हो तो यह मत समझो कि यमराजका आज्ञाकारी एक प्रहर चला गया, अपितु तीखी नाड़ी रूपी कुठारोंसे दिन-प्रतिदिन आयु रूपी वृक्ष छिन्न हो रहा है ॥१-१०॥

[७] मानो घटिका बार-बार अपने स्वरमें यही कहती है कि मैं तुम्हें उपदेश कर रही हूँ। जागो-जागो कितना सोते हो। मत्सर, अभिमान और मानको छोड़ो। अपनी गलती हुई आयुको नहीं देख रहे हो। आयु इन नाड़ियोंके प्रमाणमें परिमित कर दी गई है। एक हजार आठसौ छियासी उच्छ्वासोंके बराबर एक नाड़ी होती है। नाड़ीका यही प्रमाण है, फिर दो नाड़ियाँ एक मुहूर्त जितने प्रमाण होती हैं। तीन हजार सात सौ अठहत्तर उच्छ्वासोंका प्रमाण होता है। एक मुहूर्तका परिमाण बता दिया। दो मुहूर्तोंका आधा प्रहर प्रसिद्ध है। वह भी सात हजार पाँचसौ छ्यालीस उच्छ्वासोंके बराबर होता है। दो आधे प्रहरोंसे दिनके आधेके आधा भाग होता है। सुखनिवास रूप वह पंद्रह हजार बानवे उच्छ्वासोंके बराबर होता है। इस प्रकार हमने एक प्रहर प्रकट किया। और इसी तरह नाड़ी-नाड़ीसे घड़ी बनती है। और चौसठ घड़ियोंसे एक दिनरात बनता है। आयुकी शक्ति इसी तरह क्षीण होती रहती है अतः हमें जिनदेवकी स्तुति करते रहना चाहिए ॥१-१०॥

[८]

णिसि-पहरेँ चउत्थएँ ताडियएँ णं जग कवाडेँ उग्घाडियएँ ।
तहिँ तेहएँ कालेँ पगासियउ तियडएँ सिविणउ विण्णासियउ ॥१॥
'हलेँ हलेँ लवलिएँ लइएँ लवङ्गिएँ । सुमणेँ सुबुद्धिएँ तारेँ तरङ्गिएँ ॥२॥
हलेँ कक्कोलिएँ कुवलय-लोयणेँ । हलेँ गन्धारि गोरि गोरोयणेँ ॥३॥
हलेँ विज्जुप्पहेँ जालामालिणि । हलेँ हयमुहि गयणुहि कङ्कालिणि ॥४॥
सिविणउ अज्जु माएँ मइँ दिट्ठउ । एक्कु जोहु उज्जाणेँ पइट्ठउ ॥५॥
तरु तरु सव्वु तेण आकरिसिउ । वज्जेँ जिह वण-भङ्गु पदरिसिउ ॥६॥
सो वि णिबद्धउ इन्दइ-राएँ । पाव-पिण्डु णं गरुअ-कसाएँ ॥७॥
पट्टणेँ पइसारिउ वेढेप्पिणु । गउ दससिर-सिरेँ पाउ वेप्पिणु ॥८॥
पुणु थोवन्तरेँ हरिसिय-गत्तेँ । किउ घर-भङ्गु णाइँ दु-कलत्तेँ ॥९॥

घत्ता

तावऽण्णेक्कं णरवरेण सुरवहुअ-सुहासय-चोरणिय ।
उप्पाडेप्पिणु उवहि-जलेँ आवट्टिय लङ्क स-तोरणिय ॥१०॥

[९]

तं वयणु सुणेंवि तियडहेँ तणउ तहिँ एक्कहेँ मणेँ वद्धावणउ ।
'हलेँ चङ्गउ सिविणउ दिट्ठु पइँ रावणहोँ कहेवउ गम्पि मइँ ॥१॥
एउ जं दिट्ठु मणोहरु उववणु । तं वइदेहिहेँ केरउ जोव्वणु ॥२॥
णिद्दरमलिउ जेण सो रावणु । जो णिवद्धु सो सत्तु भयावणु ॥३॥
जो दहगीवहोँ उवरि पधाइउ । सो णिम्मलु जसु कहिमि ण माइउ ॥४॥
जं पुहई - जयघरु विद्धंसिउ । तं पर-वलु दहमुहेँण विणासिउ ॥५॥
जं परिचित्त लङ्क रयणायरेँ । सा मिहिलिय पइसारिय सिरिहरेँ ॥६॥

[८] रातका चौथा प्रहर ताड़ित होनेपर (ऐसा लगा) मानो जगके किवाड़ खुल गये हों। तब, इसी प्रभातबेलामें त्रिजटाने रातमें देखा हुआ अपना सपना बताया। उसने कहा कि हला हला, सखि लवली, लता, लवंगी, सुमना, सुबुद्धि, तारा, तरंगी हला, कक्कोली, कुवलयलोचना, गन्धारी, गौरी, गोरोचना, विद्युत्प्रभा, ज्वालामालिनी, हला अश्वमुखी, राजमुखी, कंकालिनी, आज मैंने एक सपना देखा है कि एक योधा अपने उद्यानमें घुस आया है और उसने (उसके) एक-एक पेड़को नष्ट कर दिया है। वज्रकी भाँति उसने वन-विनाशका प्रदर्शन किया है। तब इन्द्रजीतने उसे उसी प्रकार पकड़कर बाँध लिया जिस प्रकार गुरुतर कषायें पापपिण्ड जीवको बाँध लेती हैं। उसे घेरकर नगरमें प्रविष्ट किया। परन्तु वह दशाननके मस्तकपर पैर रखकर चला गया। थोड़ी ही देरके बाद हर्षितशरीर उसने कुकलत्र की तरह घरका नाश कर डाला। इतनेमें एक और नरश्रेष्ठने सुरवधुओंकी शोभाका अपहरण करनेवाली लङ्कानगरीको तोरणसहित उखाड़कर समुद्रमें फेंक दिया॥१-१०॥

[९] त्रिजटाके वचन सुनकर एक (सखी) के मनमें बधाई की बात उठी और उसने कहा, "हला सखी ! तुमने बहुत बढ़िया सपना देखा है, मैं जाकर रावणको बताऊँगी। यह जो तुमने सुन्दर उद्यान देखा है वह सीताका यौवन है और जिसने उसका दलन किया है वह रावण है, जो बाँधा गया वह भयानक शत्रु है, और जो रावणके ऊपर दौड़ा वह ऐसा निर्मल यश है कि जो कहीं भी नहीं समा सका। और जो पृथ्वीका जयघर ध्वस्त हुआ वह रावणने ही शत्रु-सेनाका संहार किया। और जो लङ्कानगरीको समुद्रमें प्रक्षिप्त किया गया, वह सीताको ही श्रीगृहमें प्रवेश कराया

तं णिसुणेँवि अण्णोक्क पवोल्लिय । गग्गर - वयणी अंसु- जलोल्लिय ॥७॥
'अवसेँ सिविणउ होइ असुन्दरु । जहिँ पडिवक्खहोँ पक्खिउ सुन्दरु ॥८॥
मुणिवर-भासिउ ढुक्कु पमाणहोँ । जिह लङ्कहेँ विणासु उज्जाणहोँ ॥९॥

घत्ता

एहु सिविणउ सीयहेँ सहलु जसु रामहोँ वि जउ जणद्दणहोँ ।
सहुँ परिवारेँ सहुँ वलेँण खय - कालु पढुक्कु दसाणणहोँ' ॥१०॥

[१०]

तहिँ अवसरेँ पीण - पओहरिएँ अरुणुग्गमेँ लङ्कासुन्दरिएँ ।
इर - अइरउ विण्णि मि पेसियउ हणुवन्तहोँ पासु गवेसियउ ॥१॥
जहिँ उज्जाणेँ परिट्ठिउ पावणि । सयलु- णरिन्द- विन्द-चूडामणि ॥२॥
तहिँ संपत्तउ विण्णि वि जुवइउ । णं सिव-सासणेँ तवसिरि-सुगइउ ॥३॥
णं खम-दयउ जिणागमेँ दिट्ठउ । जयकारेप्पिणु पासेँ णिविट्ठउ ॥४॥
तेण वि ताहिँ समउ पिउ जम्पेँवि । कण्ठउ कञ्ची-दामु समप्पेँवि ॥५॥
पुणु विण्णत्त हलीस-मणोहरि । 'भोअणु तुम्ह केम परमेसरि' ॥६॥
अक्खइ सीय समीरण-पुत्तहोँ । 'वासर एक्कवीस मइँ भुत्तहोँ ॥७॥
जाम ण पत्त वत्त भत्तारहोँ । ताम णिवित्ति मज्झु आहारहोँ ॥८॥
अज्जु णवर परिपुण्ण मणोरह । तं जँ भोज्जु जं सुअ रामहोँ कह' ॥९॥

घत्ता

तं णिसुणेँवि पवणहोँ सुएँण अवलोइउ मुहु अइरहेँ तणउ ।
'गम्पिणु अक्खु विहीसणहोँ वुच्चइ सीयहेँ करि पारणउ ॥१०॥

गया है।" यह सब सुनकर एक और दूसरी सखी अपनी आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद स्वरमें बोली, "अवश्य ही यह सपना असुन्दर होगा। इसमें प्रतिपक्षका पक्ष ही सुन्दर होगा। मुनिवरका कहा सच होना चाहता है। उद्यानके विनाशकी तरह लंकाका विनाश होगा। यह सपना सीतादेवीके लिए सफल है क्योंकि उनके राम और लक्ष्मणकी इसमें विजय निश्चित है। अब रावणका, अपने परिवार और सेनासहित क्षयकाल ही आ पहुँचा है ॥१-१०॥

[१०] ठीक इसी अवसरपर पीनपयोधरोंवाली लंका-सुन्दरीने हनुमानका पता लगानेके लिए इरा और अचिराको भेजा। समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ हनुमान जिस उद्यानमें घुसा हुआ था वे दोनों भी इस प्रकार वहाँ पहुँची मानो शिवस्थानमें सुगति और तपश्री पहुँच गई हों, या मानो जिनागममें क्षमा-दया देखी गई हों। हनुमानने उन दोनोंके साथ प्रिय आलापकर उन्हें कण्ठा और काँचीदाम दिया। और फिर उसने रामकी पत्नी सीतादेवीसे पूछा, "हे परमेश्वरी! आपका भोजन किस प्रकार होगा।" यह सुनकर सीतादेवीने हनुमानको बताया कि मुझे भोजन किये हुए इक्कीस दिन व्यतीत हो गये। मेरी भोजनसे तब तकके लिये निवृत्ति है कि जब तक मुझे अपने पतिके समाचार नहीं मिलते। किन्तु आज मेरा मनोरथ पूर्ण है। और अब तो यही (एकमात्र) भोजन है कि रामकी कथा सुनाओ।" यह सुनकर हनुमान अचिराका मुख देखने लगे, उन्होंने कहा—कि विभीषणसे जाकर कहना कि वह सीतादेवीके लिए भोजन करनेकी सुविधा दें ॥१-१०॥

[११]

इउँ तुहु मि जाहि परमेसरिहेँ तं मन्दिरु लङ्कासुन्दरिहेँ ।
लहु भोयणु आणहि मणहरउ जं स-रसु स-णेहउ जिह सुरउ' ॥१॥
तं णिसुणेवि वे वि संचल्लिउ । णं सुरसरि-जउणउ उत्थल्लिउ ॥२॥
रद्धु भत्तु लहु लेविणु आयउ । णं सरसइ-लच्छिउ विक्खायउ ॥३॥
वड्डिउ भोयणु भोयण-सेज्जएँ । अच्छएँ पच्छएँ लण्हएँ पेज्जएँ ॥४॥
सक्कर-खण्डेंहिं पायस-पयसेँहिं । लड्डुव-लावण-गुड-इक्खुरसेँहिं ॥५॥
मण्डा - सोयवत्ति - घियऊरेँहिं । मुग्ग - सूअ - णाणाविह - कूरेँहिं ॥६॥
सालणएँहिं वहु-विविह-विचित्तेँहिं । माइणि-मायन्देहिँ विचित्तेँहिँ ॥७॥
अल्लय - पिप्पलि - मिरियालएँहिँ । लावण-माल्रेँहिँ कोमलएँहिँ ॥८॥
चिब्भिडिया - कचोर - वासुत्तेँहिँ । पेउअ - पप्पडेहिँ सु-पहुत्तेँहिँ ॥९॥
केलय - णालिकेर - जम्बीरेँहिँ । करमर - करवन्देहिँ करीरेँहिँ ॥१०॥
तिम्मणेहिँ णाणाविह-वण्णेँहिँ । साडिव-भज्जिय - खट्टावण्णेँहिँ ॥११॥
अण्णु मि खण्डसोल्ल-गुडसोल्लेहिँ । वडवाइङ्गणेहिँ कारेल्लेहिँ ॥१२॥
विञ्जणेहिँ स-महिय-दहि-खीरेँहिँ । सिहरिणि-धूमवत्ति- सोवीरेँहिँ ॥१३॥

घत्ता

अच्छउ एउ (?) मुहरसिउ अवियण्हउ उल्हावणउ किह ।
जहिँ जेँ लइज्जइ तहिँ जेँ तहिँ गुलियारउ जिणवर-वयणु जिह ॥१४॥

[१२]

तं तेहउ भुञ्जेँवि भोयणउ पुणु करेँवि वयण-पक्खालणउ ।
समलहेँवि अङ्गु वर-चन्दणेँण विण्णत्त देवि मरु-णन्दणेँण ॥१॥
'चडु महु तणएँ खन्धेँ परमेसरि । णेमि तेत्थु जहिँ राहव-केसरि ॥२॥
मिलहों वे वि पूरन्तु मणोरह । फिट्टउ जणवएँ रामायण-कह' ॥३॥
तं णिसुणेवि देवि गञ्जोल्लिय । साहुक्कारु करन्ति पवोल्लिय ॥४॥
'सुन्दर णिय-घरु गय-गुण-वहुअहेँ (?) एह ण णित्ति होइ कुल-वहुअहेँ ॥५॥

[११] इरा तू भी शीघ्र परमेश्वरी लंकासुंदरीके पास जा। लंकासुन्दरीका जहाँ घर है, वहाँसे सुन्दर भोजन ले आ ऐसा कि जो सुरतिके समान सरस और सस्नेह, और सुन्दर हो। यह सुनकर वे दोनों इस प्रकार चलीं मानो गंगा और यमुना ही उछल पड़ी हों। रंधा हुआ भात लेकर, वे आईं। वे विख्यात सरस्वती और लक्ष्मीके समान जान पड़ती थीं। उन्होंने भोजनकी थालीमें सुन्दर सूक्ष्म पेयके साथ भोजन परसा। शक्कर, खीर, दूध, लड्डू, नमक, गुड़, इक्षुरस, मिठाई, भंडा ? सोयवत्ती ? घेवर, मूंगकी दाल, तरह-तरहके कूर विविध और विचित्र शालन, विचित्र माइंद और भाइण फल, चिरमटा, कचोर, वासुत्त, पेउअ, पापड़, केला, नारियल, जम्बीर, करमर, करौंदा, करीर, तरह-तरहकी कढ़ी, खटमिट्ठी साउव भाजी तथा और भी खांड़ और गुड़का सोरबा वडवाइण, कारेल्ल, मही, दही और खीरसे सहित व्यञ्जन तथा बघारे हुए कांजीर और सौवीर उस भोजनमें थे। इस प्रकार, वह उल्लसित और मुँहमें मीठा लगने वाला भोजन था। जो भी जहां उसे खाता, वह जिनवरके वचनोंकी भांति मधुरतम मालूम होता था ॥१-१४॥

[१२] उस वैसे भोजनको कर सीता देवीने अपने मुखका प्रक्षालन किया। और उत्तम चन्दनके अवलेपके बाद हनुमानने सीतादेवीसे कहा, "माँ, मेरे कन्धेपर चढ़ जाओ। मैं वहाँ ले जाऊँगा जहाँ श्री राघव सिंह हैं। वहां मिलनेसे दोनोंके मनोरथ पूरे हो जायँगे, और जनपदमें रामायणकी कथा भी फैल जायगी।" यह सुनकर सीतादेवी पुलकित हो उठीं। साधुवाद देकर उन्होंने हनुमानसे कहा, "गतगुण वहूके लिए इस तरह अपने घर जाना चाहे ठीक हो परन्तु कुलवधूके लिए यह नीति

गम्मइ वच्छ जइ वि णिय-कुलहरु । विणु भत्तारें गमणु असुन्दरु ॥६॥
जणवउ होइ दुगुञ्छण-सीलउ । खल-सहाउ णिय-चित्तें मइलउ ॥७॥
जहिँ जँ अजुत्तु तहिँ जँ आसङ्कइ । मणु रञ्जँवि सक्को वि ण सक्कइ ॥८॥
णिहएँ दसाणणेँ जय-जय-सद्दें । मइँ जाणवउ सहुँ बलहद्दें ॥९॥

घत्ता

जाहि वच्छ अच्छामि हउँ णिम्मल-दसरह-वंसुब्भवहोँ ।
लइ चूडामणि महु तणउ अहिणाणु समप्पहि राहवहोँ ॥१०॥

[१२]

अण्णु वि आलिङ्गँवि गुण-घणउ सन्देसउ अक्खु महु त्तणउ ।
बल तुज्झु विओएं जणय-सुय थिय णेह-विसेस ण कह वि मुअ ॥१॥
झीण मयङ्क-लेह गह-गहिय व । झीण सुरिन्द-रिद्धि तव-रहिय व ॥२॥
झीण कुदेस-मज्झेँ वासाणि व । झीणाऽबुह-मुहेँ सुकइ-सुवाणि व ॥३॥
झीण दिवायर-दंसणें रत्ति व । झीण कु-जणवएँ जिणवर-भत्ति व ॥४॥
झीण दुभिक्खेँ अत्थ-संपत्ति व । झीण वुढत्तणेँण बल-सत्ति व ॥५॥
झीण चरित्त-विहूणहोँ कित्ति व । झीण कु-कुलहरेँ कुलवहु-णित्ति व ६॥
अण्णु वि दसरह-वंस-पगासहोँ । वच्छत्थलेँ जय-लच्छि-णिवासहोँ ॥७॥
रणेँ दुव्वार-वइरि - विणिवारहोँ । तहोँ सन्देसउ णेहि कुमारहोँ ॥८॥
वुच्चइ "पइँ होन्तेण पि लक्खण । अच्छइ सीय रुयन्ति अलक्खण ॥९॥

घत्ता

णउ देवेँहिँ णउ दाणवेँहिँ णउ रामेँ वइरि-वियारएँण ।
पर मारेव्वउ दहवयणु स इँ भु अ-जुअलेण तुहारएँण" ॥१०॥

●

ठीक नहीं। हे वत्स अपने कुलघर भी जाना हो तो भी पतिके बिना जाना ठीक नहीं। फिर जनपदके लोग निन्दाशील होते हैं उनका स्वभाव दुष्ट और मन मलिन होता है। जहाँ जो बात अयुक्त होती है वे वहीं आशंका करने लगते हैं। उनके मनका रंजन इन्द्र भी नहीं कर सकता। इसलिए निशाचर दशाननका वध होनेपर 'जय जय शब्द' पूर्वक श्रीरामके साथ अपने जनपद जाऊँगी। हे वत्स! तुम जाओ मैं यही हूँ। लो यह मेरा चूड़ामणि। निर्मल दशरथकुल उत्पन्न श्री रामको पहचान (प्रतीक) रूप में यह अर्पित कर देना ॥१-१०॥

[१३] और भी गुणधन उनका आलिङ्गनकर मेरा यह संदेश कह देना, "हे राम, तुम्हारे वियोगमें सीता देवी रेखभर रह गई हैं। किसी प्रकार वह मरी भर नहीं, यही बहुत है। वह (मैं) राहुग्रस्त चन्द्रलेखाकी तरह क्षीण हो गई। तपसे हीन इन्द्रकी ऋद्धिकी तरह क्षीण है। कुदेशमें निरासकी तरह वह क्षीण है। मूर्खके मुँहमें कविकी सुवाणीकी तरह क्षीण है। सूर्यदर्शन होनेपर निशाकी तरह क्षीण है। कुजनपदमें जिन-भक्तिकी तरह क्षीण है। दुर्भिक्षमें अर्थसम्पदाकी भाँति क्षीण है। वह चरित्रहीनकी कीर्तिकी तरह क्षीण है। खोटे घरमें कुलवधूकी तरह क्षीण है। युद्धमें दुर्वार वैरियोंको पराजित करने वाले कुमार लक्ष्मणसे भी मेरा यह सन्देश कह देना कि लक्ष्मण, तुम्हारे रहते हुए भी सीता देवी रो रही है, न तो देवोंसे, न दानवोंसे, और न वैरीविदारक रामसे रावणका बध होगा। केवल तुम्हारे भुजयुगलसे रावणका बध होगा ॥१-१०॥

•

[५१ एकवण्णासमो संधि]

तं चूडामणि लेवि गउ लच्छि-णिवासहों अखलिय-माणहों ।
णं सुर-करि कमलिणि-वणहों मारुइ वलिउ समुहु उज्जाणहों ॥

[१]

दुवई

विहुणेंवि वाहु-दण्ड परिचिन्तइ रिउ-जयलच्छि-महणो ।
'ताम ण जामि अज्जु जाम ण रोसाविउ मइँ दसाणणो ॥१॥

वणु भञ्जमि रसमसकसमसन्तु । महिवीढ-गाढु विरसोरसन्तु ॥२॥
णायउल - विउल -चुम्भल - वलन्तु । रुक्खुक्खय-खर-खोणिएँ खलन्तु ॥३॥
णीसेस - दियन्तर - परिमलन्तु । कङ्केल्लि - वेल्लि-लवली- ललन्तु ॥४॥
तुङ्गङ्ग - भिङ्ग - गुमुगुमुगुमन्तु । तरु-लग्ग-भग्ग- दुमुदुमुदुमन्तु ॥५॥
एला - कक्कोलय - कडयडन्तु । वड-विडव-ताड-तडतडतडन्तु ॥६॥
करमर - करीर - करकरयरन्तु । आसत्थागत्थिय - थरहरन्तु ॥७॥
महुइ-मइ सय-खण्ड जन्तु । सत्तच्छय-कुसुमामोय दिन्तु ॥८॥

घत्ता

उम्मूलन्तु असेस तरु एक्कु मुहुत्तु एत्थु परिसक्कमि ।
जोव्वणु जेम विलासिणिहेँ वणु दरमलमि अज्जु जिह सक्कमि' ॥९॥

[२]

दुवई

पुणरवि वारवार परिअञ्चेंवि णियय-मणेण सुन्दरो ।
णन्दण-वणे पइट्ठु णं माणस-सरवरेँ अमर-कुञ्जरो ॥१॥

णवरि उववणालए तेत्थु णिउञ्झाइयासोग-णारङ्ग-पुण्णाग-णागा लवङ्गा
पियङ्गू-विडङ्गा समुत्तुङ्ग सत्तच्छया ॥२॥

करमर-करवन्द-रत्तन्दणा दाडिमी-देवदारू-हलिद्दी-भुआ दक्ख-रुद्दक्ख-पउ-
मक्ख-अइमुत्तया ॥३॥

तरु तरल-तमाल-तालेल-कक्कोल-साला विसालञ्जणा वञ्जुला णिम्ब-सिन्दीउ
सिन्दूर-मन्दार-कुन्देद सज्जज्जुणा ॥४॥

इक्यावनवीं सन्धि

लक्ष्मी-निकेतन, अस्खलितमान हनुमान, सीतादेवीसे वह चूड़ामणि लेकर उस उद्यानसे वैसे ही चले जैसे कमल-वनसे ऐरावत हाथी जाता है। शत्रुकी विजय-लक्ष्मीका मर्दन करनेवाला वह अपने दोनों बाहु ठोककर सोचने लगा।

[१] आज मैं तब तक नहीं जाऊँगा कि जब तक रावणको रोष उत्पन्न न कर दूँ। मैं अभी—रसमसाते-कसमसाते वनको भग्न कर दूँगा, अनिष्ट ध्वनि करके धरतीपीठको भग्न कर दूँगा, बड़ी-बड़ी चोटियोंवाले पर्वतों और वृक्षों सहित धरतीको खोद डालूँगा। समस्त दिशान्तरोंको रौंद डालूँगा, कङ्केली और लवली-लताको मैं छिन्न-भिन्न कर दूँगा। वट-विटप और ताड़को भी तड़तड़ा दूँगा। करमर करीरको करकरा दूँगा। अश्वत्थ और अगस्त वृक्षोंको थर्रा दूँगा। बलपूर्वक सौ-सौ टुकड़े करके सप्तपर्णी वृक्षके फलोंकी बहारको लुटा दूँगा। एक मुहूर्तके लिए मैं ज़रा यहाँपर घूम-फिर लूँ और सभी वृक्षोंको समूल उखाड़ फेकूँ। जैसे भी सम्भव होगा, आज इस वनको विलासिनीके यौवनकी तरह, अवश्य दलित करके रहूँगा ॥१-६॥

[२] अपने मनमें बार-बार यह विचार करके सुन्दर हनुमान उस उपवनमें घुस गया। मानो ऐरावत महागज ही मान-सरोवरमें घुसा हो। उपवनालयमें निध्यात, अशोक, नारंग, पुंनाग, नाग, लवंग, प्रियंगु, विडंग, समुत्तुङ्गसप्तच्छद, करमर, करवन्द, रक्तचन्दन, दाड़िम, देवदारु, हल्दी, भूर्ज, दाख, रुद्राक्ष, पद्माक्ष, अतिमुक्त, तरलतमाल, तालेल, कक्कोल, शाल, विशालांजन, वंजुल, निम्ब, सिंदीक, सिंदूर, मन्दार, कुंदेंवु, सर्ज, अर्जुन, सुरतरु, कदली,

सुरतरु-कयली-कयम्बम्ब-जम्बीर-जम्बुम्बरा लिम्ब-कोसम्ब-कज्जूर-कप्पूर-तारूर-
 मालूर-आसत्थ-णग्गोहया ॥५॥
तिलय-वउल-चम्पया णागवेल्ली-वया पिप्पली पुप्फली पाडली केयई
 माहवी मल्लिया माहुलिङ्गी-तरू ॥६॥
स-फणस-लवली-सिरीखण्ड-मन्दागरू-सिल्हया पुत्तजीवा सिरीसेत्थियारि-
 ट्ठया कोज्जया जूहिया णालिकेरव्वई ॥७॥
हरिडइ-हरिया-लकच्चालल्लावञ्जया पिक्क-वन्दुक्क-कोरण्ट-वाणिक्ख-वेणू-तिस-
 ञ्झा-मिरी-अल्लया ढउअ-चिञ्चा-महू ॥८॥
कणइर-कणियारि-सेल्लु-करीरा करञ्जामली-कङ्गुणी-कञ्चणा एवमाइत्ति अण्णे
 वि जे पायवा केण ते वुज्झिया ॥९॥

घत्ता

आयहुँ पवर-महद्दुमहुँ पहिलउ पारियाउ आयामिउ ।
णं धरणिहेँ जेमणउ करु उप्पाडेप्पिणु णहयलेँ भामिउ ॥१०॥

[२]

दुवई

सुरतरु परिविवेवि उम्मूलिउ पुणु णग्गोह-तरुवरो ।
आयामेँवि भुएहिँ दहवयणेँ जिह कइलास-गिरिवरो ॥१॥

कड्ढिउ वर पायवु थररन्तु । णं वइरि रसायलेँ पइसरन्तु ॥२॥
णं णन्दण-वणहोँ रसन्तु जीउ । णं धरणिहेँ वाहा-दण्डु वीउ ॥३॥
णं दहवयणहोँ अहिमाण-खम्भु । णं पुहइ-पसूयणे पवर-गब्भु ॥४॥
तुट्टन्त सयल-घण-मूल-जालु । पारोह-ललन्तु विसाल-डालु ॥५॥
आरत्त - पत्त - परिघोलमाणु । ढण्ढर - वर - परियन्दिज्जमाणु ॥६॥
कलयण्ठि - कलावाराव - मुहलु । णिम्मउरु वि सप्पुरिसो व्व सुहलु ॥७॥

घत्ता

सो सोहइ णग्गोह-तरु मारुय-सुय-भुयलट्ठिहिँ लइयउ ।
णावइ गङ्गहेँ जउणहेँ वि मज्झेँ पयागु परिट्ठिउ तइयउ ॥८॥

कदम्ब, जम्बीर, जम्बुम्बर, लिम्ब, कोशम्भ, खजूर, कयूर, तारूर, मालूर, अश्वत्थ, न्यग्रोध, तिलक, वकुल, चम्पक, नागचेल्ली, वया, पिप्पली, पुप्फली, पाटली, केतकी, माधवी, सफनस, लवली, श्रीखण्ड, मन्दागुरु, सिल्लिका, पुत्रजीव, सीरीष, इत्थिक, अरिष्ट, कोज्जय, जूही, नारिकेल, वई, हरड, हरिताल, कञ्चाल, लावञ्जय, पिक्क, बन्धूक, कोरन्ट, वाणिक्ष, वेणु, तिसञ्झा, मिरी, अल्लका, ढौक, चिञ्चा, मधू, कनेर, कणियारी, सेल्लू, करीर, करञ्ज, अमली, कंगुनी, कंचना इत्यादि तथा और भी बहुतसे वृक्ष थे जिन्हें कौन समझ गिना सकता है। उन सब बड़े-बड़े वृक्षोंमें सबसे पहले पारिजात वृक्ष था। उसने उसको, धरतीके यौवनकी तरह, उखाड़कर आकाशमें घुमा दिया ॥१-१०॥

[२] पारिजातको फेंककर उसने उस वृक्षको उखाड़ा, और अपने बाहुओंसे उसे वैसे ही झुका दिया जैसे रावणने कैलाश पर्वतको झुका दिया था। थर्राते हुए उस वट वृक्ष को उसने इस प्रकार (धरतीसे) खींचा मानो पातालमें कोई शत्रु प्रवेश कर रहा हो या मानो वह, नंदनवनकी मुखर जिह्वा हो, या मानो धरतीका दूसरा बाहुदंड हो, मानो रावण का अभिमानस्तंभ हो या मानो प्रसूतवती धरती का विशाल गर्भ हो। (आघातसे) उस महावृक्षकी जड़ोंका समूचा घनीभूत जाल छिन्न-भिन्न हो गया। प्रारोह टूट-फूट गये। विशाल शाखाएँ भग्न हो उठीं। लाल-लाल पत्तियाँ बिखर गईं। ढँढर (राक्षस) और पक्षी कलरव करने लगे। कोयलोंके आलापसे वह गूँज उठा। झुका हुआ वह वट वृक्ष सज्जनकी भाँति सुखद प्रतीत हो रहा था। हनुमानकी भुजलताओंसे गृहीत वह वटवृक्ष ऐसा मालूम हो रहा था मानो गंगा और यमुनाके बीचमें यह तीसरा प्रयाग ही हो ॥१-८॥

[४]

दुवई

वड-पायवु घिवेवि उम्मूलिउ पुणु कङ्केलि-तरुवरो ।
उभय-करेहिँ लेवि णं वाहुवलिन्दें भरह-णरवरो ॥१॥
आरत्त - पत्त - पल्लव-ललन्तु । कामिणि-करकमलहुँ अणुहरन्तु ॥२॥
उब्भिण्ण-कुसुम - गोच्छुच्छलन्तु । णं महिहेँ वसिण-चक्खिक्क देन्तु ॥३॥
चञ्चरिय - चारु - चुम्विज्जमाणु । वहुविह - विहङ्ग - सेविज्जमाणु ॥४॥
कङ्केल्लि-वच्छु इय-गुण-विचित्तु । णं दहमुह-माणु मलेवि घित्तु ॥५॥
पुणु लइउ णाय-चम्पउ करेण । णं दिस-पायवु दिस-कुञ्जरेण ॥६॥
उम्मूलिउ गयणहोँ अणुहरन्तु । अलि-जोइस - चक्क - परिब्भमन्तु ॥७॥
णव-पल्लव-गह-विक्खिण्ण-पयरु । उब्भिण्ण-कुसुम - णक्खत्त-णियरु ॥८॥
सो चम्पउ गयणङ्गण समग्गु । दहवयण-मडप्फरु णाइँ भग्गु ॥९॥

घत्ता

चम्पय-पायवु परिघिवँवि कड्ढिय वउल-तिलय महि ताडॅवि ।
गज्जइ मत्त-गइन्दु जिह वे आलाण-खम्भ उप्पाडॅवि ॥१०॥

[५]

दुवई

चम्पय-तिलय-वउल-वडपायव-सुरतरु भग्ग जावँहिँ ।
चउरुज्जाणपाल संपाइय गलगज्जन्त तावँहिँ ॥१॥
हक्कारँवि पर-वल-वल-गलत्थु । दाढावलि धाइउ लउडि-हत्थु ॥२॥
जो उत्तर-वारहोँ रक्खवालु । जो पसरिय-जस-भुवणन्तरालु ॥३॥
जो गिब्भगण्ड - गय - घड-घरट्टु । पडिवक्ख-खलणु अखलिय मरट्टु ॥४॥

[४] वटवृक्षको फेंककर, तब हनुमानने कंकेली वृक्ष उखाड़ लिया, और उसे अपने दोनों हाथोंमें इस प्रकार ले लिया मानो बाहुबलिने भरतको ही उठा लिया हो। लाल-लाल पल्लव और पत्तोंसे शोभित वह वृक्ष कामिनीके करकमलोंकी भाँति दिखाई दे रहा था, खिले हुए फूलोंके गुच्छोंसे वह ऐसा लग रहा था मानो धरतीको केशरका अवलेप किया जा रहा हो, वह अशोक वृक्ष तरह-तरहके पक्षियोंसे सेवित हो रहा था। ऐसे गुणोंसे सहित उस अशोक वृक्षको हनुमानने मानो रावणका मान दलन करनेके लिए ही उखाड़कर फेंक दिया। फिर उसने नाग चम्पक वृक्ष अपने हाथमें लिया, वैसे ही जैसे दिग्गजने दिशावृक्षको ले लिया हो। वह वृक्ष आकाशके अनुरूप प्रतीत हो रहा था। (आकाश की भाँति) वह भ्रमर रूपी ज्योतिषचक्रसे गतिशील था, और नये पल्लवोंके ग्रहसमूहसे व्याप्त था। खिले हुए सुमन ही उसका नक्षत्र मंडल था। गगनांगणमें व्याप्त उस वृक्षको रावणके अभिमान की भाँति भग्न कर दिया। इसी प्रकार चंपक वृक्षको फेंककर, वकुल और तिलक वृक्षोंको खींचकर उसने धरतीको ताडित किया। (उस समय) वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो मदोन्मत्त महागजने अपने दोनों आलानस्तंभोंको उखाड़ दिया हो ॥१-१०॥

[५] चम्पक, तिलक, वकुल, वटपादप और पारिजातको जब हनुमानने भग्न कर दिया तो चार उद्यानपाल गरजते हुए सहसा उसकी ओर दौड़े। सबसे पहले शत्रुसेनाके बलको चूर करनेवाला दंष्ट्रावलि हाथमें गदा लेकर दौड़ा। वह उत्तर द्वारका रक्षक था, और उसका यश भुवन भरमें प्रसिद्ध था। मदमाते गजोंको मसल देनेवाला और शत्रुपक्षमें हलचल उत्पन्न करनेवाला

सो हणुवहों भिडिउ पलम्ब-बाहु । णं गङ्गा-बाहहों जउण-बाहु ॥५॥
जो तेण पमेल्लिउ लउडि-दण्डु । सो भज्जेंवि गउ सय-खण्ड-खण्डु ॥६॥
सिरिसइलु वि पहसिउ पुलइयङ्गु । 'वण-भङ्गहों वीयउ सुहड-भङ्गु ॥७॥
दरिसावमि' एम चवन्तएण । उम्मूलिउ तालु तुरन्तएण ॥८॥
कु-जणु व सुर-भायणु थड्ढ-भाउ । दूर-हलउ अण्णु वि दुप्पणाउ ॥९॥

घत्ता

तेण णिसायरु आहयणें आयामेवि समाहउ तालें ।
पडिउ घुलेप्पिणु धरणियलें घाइउ देसु णाइँ दुक्कालें ॥१०॥

[६]

दुवई

जं हणुवेण णिहउ समरङ्गणें दाढावलि स-मच्छरो ।
धाइउ एक्कदन्तु गलगज्जेंवि णं गयवरहों गयवरो ॥१॥
जो पुव्व-वारें वण-रक्खवालु । संपाइउ णं खय-कालें कालु ॥२॥
दिढ-कढिण-देहु थिर-थोर-हत्थु । पर-वल-पओलि- भेल्लण- समत्थु ॥३॥
आयामेंवि सत्ति पमुक्क तेण । णं सरि सायरहों महीहरेण ॥४॥
सा सामीरणिहें परायणत्थ । असइ व सप्पुरिसहों अकियत्थ ॥५॥
हणुवेण वि रणउहें दुण्णिरिक्खु । उप्पाडिउ वर-साहारु रुक्खु ॥६॥
कामिणि-मुह-कुहरहों अणुहरन्तु । परिपक्क - फलाहरु कुसुम-दन्तु ॥७॥
णव - पल्लव - जीहा - लवलवन्तु । कलयण्ठि - कण्ठ - महुरुल्लवन्तु ॥८॥
यहकव्व - वियारु व दल-णिवेसु । पच्छण्ण - परिट्ठिय- रसविसेसु ॥९॥

वह स्वयं अस्खलितमान था। विशालबाहु वह आकर, हनुमानसे इस प्रकार भिड़ गया मानो गंगाके प्रवाहसे यमुनाका प्रवाह टकरा गया हो। परंतु उसने हनुमान पर जो गदा फेंकी, वह टूटकर सौ-सौ टुकड़े हो गयी। (यह देखकर) हनुमान पुलकपूर्वक हँस पड़ा और यह कहकर कि वनभंगके बाद अब सुभट-विनाश दिखाऊँगा, उसने तुरन्त तालवृक्षको उखाड़ लिया। वह वृक्ष कुजनकी तरह 'सुर-भाजन (मदिरा और देवत्वका पात्र) दृढ़भाव, दूरफल (दुष्टसे कोई फल नहीं मिलता और तालवृक्षका भी फल नहीं होता) और बड़े कष्टसे झुकाने योग्य था। ऐसे उस ताड़वृक्षसे हनुमानने उस राक्षसको भी युद्धमें आहत कर दिया। धरतीपर गिरकर वह वैसे ही बिखर गया जैसे दुष्कालसे ग्रस्त देश नष्ट-भ्रष्ट हो उठता है ॥१-१०॥

[६] जब हनुमानने मत्सरसे भरे दंष्ट्रावलिको इस प्रकार युद्धमें नष्ट कर दिया, तो एकदंत गरजकर उठा और उसपर ऐसे दौड़ा मानो गजवरके ऊपर गजवर ही दौड़ा हो। वह पूर्वद्वारका रक्षक था। (वह ऐसा आया) मानो क्षयकाल ही आया हो। उसकी देह दृढ़ और कठिन थी। वह शत्रुसेनाका प्राचीर तोड़नेमें समर्थ था। उसने अपनी शक्तिको नमितकर उसे हनुमानपर ऐसे छोड़ा मानो पर्वतने समुद्रमें नदी प्रक्षिप्त की हो। तब युद्ध-मुख और दुर्दर्शनीय हनुमानने उत्तम साहार वृक्ष उखाड़ लिया। वह वृक्ष कामिनीके मुखकुहरके समान था, खूब पके हुए फल ही उसके अधर थे, कुसुम दाँत थे, नवपल्लव ही लपलपाती जिह्वा थी, कोकिल कलरव ही उसकी मधुर तान थी। महाकविके काव्यकी तरह वह वृक्ष दलविशेष (शब्दरचना और पत्तियों) से युक्त तथा प्रच्छन्न रसविशेषसे पूर्ण था। हनुमानके करसे मुक्त उस

घत्ता

मारुइ-कर-पम्मुक्कएँ ण तेण पवर-कप्पद्दुम-घाएं ।
एक्कदन्तु घुम्मन्तु रणें पाडिउ रुक्खु जेम दुव्वाएं ॥१०॥

[७]

दुवई

ताम कयन्तवक्कु आहवेँ असक्कु सक्कक्क-सम-बलो ।
हत्थि व गिल्ल-गण्डु तियसहुँ पचण्डु कोदण्ड-करयलो ॥१॥

जो दाहिण - वारहों रक्खवालु । कोकन्तु पधाइउ मुह - करालु ॥२॥
'वणु भञ्जेँवि कहिँ हणुवन्त जाहि । लइ पहरणु अहिमुहु थाहि थाहि ॥३॥
जिह हउ दाढावलि उत्थरन्तु । अण्णु वि विणिवाइउ एक्कदन्तु ॥४॥
तिह पहरु पहरु भो पवणजाय । दहवयणहों केरा कुद्ध पाय' ॥५॥
पचारेँ वि पावणि धणुधरेण । विहिँ सरेँ हिँ विद्धु रणेँ दुद्धरेण ॥६॥
परिअञ्चेवि णिवडिय पुरउ तासु । णमि-विणमि व पढम-जिणेसरासु ॥७॥
एत्थन्तरेँ रणेँ णीसन्दणेण । आरुट्ठें पवणहों णन्दणेण ॥८॥
आयामेँवि उम्मूलिउ तमालु । णं दिणयरेण तम-तिमिर-जालु ॥९॥

घत्ता

उभय-करेँ हिँ भामेवि तरु पहउ कयन्तवक्कु दणु-दारें ।
विहलङ्घलु घुम्मन्त-तणु गिरि व पलोट्टिउ कुलिस-पहारें ॥१०॥

[८]

दुवई

णिहएँ कयन्तवक्कें अण्णेक्कु णिसायरु भय-विवज्जिओ ।
वर-करवाल-हत्थु कोक्कन्तु पधाइउ मेहगज्जिओ ॥१॥

सो पच्छिम-वारहों रक्खवालु । उब्भड-भिउडी - भङ्गुर - करालु ॥२॥
रत्तुप्पल - दल - संकास- णयणु । अट्ट - हास - मेल्लन्त - वयणु ॥३॥

साहारवृत्तके प्रबल आघातसे एकदंत चक्कर खाने लगा। दुर्वातसे आहत पेड़की नाईं वह धरतीपर गिर पड़ा ॥१-१०॥

[७] (इसके बाद) शुक्र और सूर्य की तरह शशिसम्पन्न युद्धमें भी अशक्य कृतान्तवक्त्र आया। वह मद झरते हाथी की तरह था। त्रिशिरकी तरह अपने हाथमें धनुष लिये हुए प्रचंड वह दक्षिण द्वारका रक्षक था। मुखसे कराल और गरजता हुआ वह आया और बोला—"हे हनुमान, वनको उजाड़कर तूँ कहाँ जा रहा है। सामने आ। उछलते हुए दंष्ट्रावलिको जिस तरह तुमने मारा है और एकदंतको मार गिराया है उसी प्रकार हे पवन-कुमार, ओ रावणके दुष्पाप, मेरे ऊपर प्रहार कर।" तब दुर्धर हनुमानने उत्तरमें, उसे दो ही तीरोंसे विद्ध कर दिया। वह उसीके आगे प्रदक्षिणा करता हुआ वैसे ही गिर पड़ा जैसे नमि और विनमि दोनों, आदि जिनऋषभके सम्मुख गिर पड़े थे। इतनेमें युद्धमें रथरहित हनुमानने आरुष्ट होकर तमाल वृक्षको इस प्रकार उखाड़ लिया मानो सूर्यने अंधकारके जालको उच्छिन्न कर दिया हो। निशाचरोंका संहार करनेवाले हनुमानने अपने दोनों हाथोंसे पेड़ घुमाया और कृतांतवक्त्रको आहत कर दिया। तब अपने घूमते हुए और विकलाङ्ग शरीरसे वह कृतान्तवक्र उसी प्रकार लोट-पोट होने लगा जिस प्रकार वज्रके प्रहारसे पर्वत चूर-चूर हो उठता है ॥१-१०॥

[८] कृतान्तवक्त्रके आहत होनेपर, दूसरा निशाचर मेघनाद, भयरहित होकर और हाथमें श्रेष्ठ कृपाण लेकर, गरजता हुआ दौड़ा। वह पश्चिम दिशा का द्वारपाल था। उभरी हुई और टेढ़ी भौंहों से वह अत्यन्त कराल था। उसकी आँख रक्तकमल की तरह थी। मुख से वह अट्टहास कर रहा था। वह नये जल-

णव - जलहर - लील-समुव्वहन्तुं । खग्गुज्जल-वर - विज्जुल - लवन्तु ॥४॥
भउहावलि- किय धणुहर- पवङ्क । हणुवहाँ अब्भिडिउ विमुक्क- सङ्क ॥५॥
एत्थन्तरेँ अणिलहाँ णन्दणेण । उप्पाडिउ चन्दणु दिढ - मणेण ॥६॥
सप्पुरिसु जेम बहु-खम-सरीरु । सप्पुरिसु जेम छेए वि धीरु ॥७॥
सप्पुरिसु जेम सीयल- सहाउ । सप्पुरिसु जेम सामण्ण - भाउ ॥८॥
सप्पुरिसु जेम जणवएँ महग्घु । सप्पुरिसु जेम सव्वहुँ सलग्घु ॥९॥

घत्ता

तेण पवर-चन्दण-दुमेँण आहउ मेहणाउ वच्छत्थलेँ ।
लउडि-पहारेँ घाइयउ पडिउ फणिन्दु णाइँ महि-मण्डलेँ ॥१०॥

[९]

दुवई

पवरुज्जाणवाल चत्तारि वि हय हणुवेण जावँहिँ ।
सेसारक्खिएहिँ दहवयणहाँ गम्पिणु कहिउ तावँहिँ ॥१॥

'भो भो भू-भूसण भुवण पाल । आरुट्ठ - दुट्ठ - णिट्ठवण - काल ॥२॥
पवरामर - डामर - रणेँ रउद्द । णरवर - चूडामणि जय - समुद्द ॥३॥
दणु-इन्द-विन्द्र- महण - सहाव । सग्गग्ग - मग्ग - णिग्गय - पयाव ॥४॥
कामिणि-जण-थण- चड्डण-वियड्ढ । लङ्कालङ्कार महागुणड्ढ ॥५॥
णिच्चिन्तउ अच्छहि काइँ देव । वणु भग्गु कु-मुणिवर-हियउ जेव ॥६॥
एक्केण णरेण विरुद्धएण । पहरन्तें अमरिस-कुद्धएण ॥७॥
उप्पाडेँ वि तरल-तमाल-ताल । चेयारि वि हय उज्जाण-पाल' ॥८॥
तहिँ अवसरेँ आयऽण्णेक्क वत्त । वज्जाउहु आसाली समत्त ॥९॥

घत्ता

तं णिसुणेप्पिणु दहवयणु कुविउ दवग्गि व सित्तु घिएण ।
'को जम-राएं सम्भरिउ उववणु भग्गु महारउ जेण' ॥१०॥

धरों के समान था। करवाल रूपी विद्युत उसके पास थी। टेढ़ी भौंहें इन्द्रधनुष की भाँति थीं। तब शंकामुक्त होकर वह हनुमान से आकर भिड़ गया। हनुमानने तब दृढमनसे चन्दनका वृक्ष उखाड़ा। वह वृक्ष, सत्पुरुष की भाँति क्षमाशील शरीर वाला था, छेदन होने पर भी वह (सत् पुरुषकी भाँति) धीरता रखता था। उसका स्वभाव सत्पुरुषकी तरह शीतल था। सत्पुरुषकी भाँति वह अपने जनपदमें आदरणीय हो रहा था। सत्पुरुषकी भाँति ही वह सब लोगोंसे प्रशंसनीय था। उस प्रवर वृक्षके आघातसे मेघनाद वक्षःस्थलमें आहत हो उठा। गदेसे आहत सर्प की तरह वह धरती पर लोट-पोट हो गया॥१-१०॥

[६] इस प्रकार जब हनुमानने चारों ही बड़े-बड़े उद्यान-पालोंको मार गिराया तो शेष रक्षकोंने दौड़कर सब वृत्तान्त रावणको सुनाया। (वे बोले) "अरे-अरे भूमिभूषण, भुवनपाल, आरुष्ट दुष्टोंके लिए काल, प्रबल भयंकर देवयुद्धमें अत्यन्त रौद्र, नरश्रेष्ठ, जयसागर दानवों और इन्द्रका दमन करनेवाले, स्वर्ग-पथमें प्रथितप्रताप, कामिनी-स्तन-मण्डलोंके मर्दनमें विदग्ध, लंकाके अलंकार, महान् गुणोंसे परिपूर्ण, हे देव ! आप निश्चित क्यों बैठे हैं। अमर्पसे कुपित और प्रहारशील एक मनुष्यने कुमुनिके हृदयकी भाँति समूचा उद्यान उजाड़ डाला। उसने ताल तमाल और ताल वृक्षोंको उखाड़कर चारों ही उद्यानपालोंको मार डाला है।" ठीक इसी समय रावणके निकट यह खबर भी पहुँची कि उसने आशाली विद्याको समाप्त कर दिया है। यह सुनकर रावण बहुत ही क्रुद्ध हुआ। मानो किसीने आगमें घी डाल दिया हो। उसने कहा, "किसने यमराजका स्मरण किया है, किसने मेरा उद्यान उजाड़ डाला है" ॥१-१०॥

[१०]

दुवई

तं णिसुणेवि वयणु मन्दोयरि पिसुणइ णिसियरिन्दहो ।
'किण्ण कयावि देव पइँ वुज्झिउ धीया-सुउ महिन्दहों ॥१॥
जसु तणिय जणणि पवणञ्जएण । वारह वरिसइँ परिचत्तएण ॥२॥
पच्छण्ण-गब्भ-सम्भूइ सुणेंवि । केउमइएँ दुच्चारित्तु मुणेंवि ॥३॥
कुलहरहों विसज्जिय ण गय तहि मि । वणवासें पसूइय गम्पि कहि मि ॥४॥
विज्जाहरें हिँ चउदिसु गविट्ठ । गिरि-कुहरब्भन्तरें णवर दिट्ठ ॥५॥
किउ हणुरुह-दीवन्तरें णिवासु । हणुवन्तु पगासिउ णामु तासु ॥६॥
परिणाविउ पइँ वि अणङ्गकुसुम । कङ्केल्लि-लय व उब्भिण्ण-कुसुम ॥७॥
इय उवयारहँ एक्कु वि ण णाउ । अण्णु वि वइरिहिँ पाइक्कु जाउ ॥८॥
जं आइउ अङ्गुत्थलउ लेवि । महु उट्ठिउ गलगज्जिउ करेवि' ॥९॥

घत्ता

एक्कु वि उववणें दरमलिएँ दहमुह-हुअवहु झत्ति पलित्तउ ।
अण्णु वि पुणु मन्दोयरिएँ लेवि पलाल-भारु णं घित्तउ ॥१०॥

[११]

दुवई

तं णिसुणेवि वयणु दहवयणें पवराणत्त किङ्करा ।
अक्क-मियङ्क-सक्क-वर-विक्कम पहरण-कर-भयङ्करा ॥१॥
तो णवर पणवेवि । आएसु मग्गेवि ॥२॥
पाइक्क सण्णद्ध । दिढ - परिकरावद्ध ॥३॥
सीह व्व संकुद्ध । रिउ-जय-सिरी - लुद्ध ॥४॥
पज्जलिय-मणि-मउड । विप्फुरिय - उट्ठउड ॥५॥
णिड्डुरिय-णयण-जुअ । कण्डइय - पवर -भुअ ॥६॥
भू-भङ्गुरा - भाल । उग्गिण्ण - करवाल ॥७॥

[१०] यह सुनकर, रानी मन्दोदरीने भी हनुमानकी चुगली करते हुए कहा, "हे देव, क्या आप किसी भी तरह यह नहीं समझ पाये। राजा महेन्द्रकी पुत्रीका पुत्र वही हनुमान है जिसकी मांको पवनञ्जयने बारह बरसके लिए छोड़ दिया था। सास केतुमतीने भी गुप्त गर्भकी बात सुनकर और दुश्चरित्र समझकर अपने कुलगृहसे उसे निकाल दिया था। वह अपने घर (मायके) भी नहीं गई और वनमें कहीं जाकर उसको जन्म दिया। तब विद्याधरोंने इसके लिए चारों ओर खोजा किन्तु यह पहाड़की गुफामें मिला, किसी दूसरी जगह नहीं। फिर हनुरुह द्वीपमें इसका लालन-पालन हुआ, इसीसे इसका नाम हनुमान पड़ गया। आपने भी अनंगकुसुमसे उसका उसी प्रकार विवाह किया है जिस प्रकार अशोकलतासे खिले हुए सुमनका सम्बन्ध होता है। परन्तु इसने (हनुमान ने) इन उपकारोंमेंसे एकको नहीं माना। प्रत्युत वह हमारे शत्रुओंका अनुचर बन बैठा है। जब यह सीता देवीके पास अंगूठी लेकर पहुँचा तो मेरे ऊपर भी गरज उठा।" एक तो उद्यानके विनाशसे दशाननकी क्रोधाग्नि प्रदीप्त हो रही थी, दूसरे मन्दोदरीने मानो यह सब कहकर उसमें सूखी घास और डाल दी ॥१–१०॥

[११] यह सुनकर (प्रचण्ड) रावण ने हाथियोंसे भयङ्कर और पराक्रमी अर्क, मृगाङ्क और शक्र आदि, बड़े-बड़े, अनुचरों को आज्ञा दी। प्रणामपूर्वक आज्ञा लेकर और दृढ परिकरसे आबद्ध होकर, वे (निशाचर) अपनी तैयारी करने लगे। सिंहकी तरह क्रुद्ध वे शत्रु-विजयके लालची थे। मणिमय मुकुट चमक रहे थे। और ऊँचे ऊँचे ओंठ फड़क रहे थे। उनके दोनों नेत्र भयानक थे और बाहुएँ पुलकित हो रही थीं। उनका भाल भ्रूभंगसे कुटिल

हत्थि व्व संखुहिय । सूर व्व वहु-उइय ॥८॥
जलहि व्व उत्थल्ल । सेल व्व संचल्ल ॥९॥
दणु-देह - दारणइँ । गहियाइँ पहरणइँ ॥१०॥
अण्णेण हुलि—हूलु । अण्णेण भस-सूलु ॥११॥
अन्णेण गय-दण्डु । अण्णेण कोवण्डु ॥१२॥
अण्णेण सर-जालु । अण्णेण करवालु ॥१३॥

घत्ता

एव दसाणण-किङ्करहुँ वलु सण्णहॅवि सयलु संचल्लिउ ।
पलय-कालें णं उवहि-जलु णिय-मज्जाय मुअन्तुत्थल्लिउ ॥१४॥

[१२]

दुवई

खोहिउ सायरो व्व लङ्का-णयरी जाया समाउला ।
रहवर-गयवरोह-जम्पाण-विमाण- तुरङ्ग - सङ्कुला ॥१॥
वलु कहि मि ण माइउ णीसरन्तु । संचल्लु पओलिय दरमलन्तु ॥२॥
धय - चवल - महद्धय - थरहरन्तु । पडु-पडह - सङ्ख-मद्दल - रसन्तु ॥३॥
विणु खेवेँ पहरण-वर-करेहिँ । वणु वेढिउ रावण-किङ्करेहिँ ॥४॥
णं तारा-मण्डलु णव-घणेहिँ । णं तिहुअणु तिहि मि पहञ्जणेहिँ ॥५॥
तिह वेढॅवि रहवर-गयवरेहिँ । पच्चारिउ मारुइ णरवरेहिँ ॥६॥
'पायारु पलोट्टिउ जिह विसालु । वज्जाउहु हउ रणेँ कोट्टवालु ॥७॥
वण-पाल व्रहिय वणु भग्गु जेम । खल खुद्द पिसुण मरु पहरु तेम' ॥८॥
तं णिसुणॅवि धाइउ पवण-जाउ । कम्पिल्ल-पवर - पायव - सहाउ ॥९॥

घत्ता

पढम-भिडन्तें मारुइण रिउ-साहणु वहु-भाय-समारिउ ।
णं सीहेण विरुद्धएँण मयगल-जूहु दिसहिँ ओसारिउ ॥१०॥

हो रहा था। उनकी कृपाणें उठी हुई थी। महागज की भाँति वे अत्यन्त क्षुब्ध थे। सूर्यकी तरह अनेक रूपमें वे प्रकट हो रहे थे। समुद्रकी तरह उछल रहे थे। और पर्वतोंकी भाँति चल-फिर रहे थे। दानवोंके शरीरको विदीर्ण करनेवाले, वे हथियार लिये हुए थे। किसीके पास हलि और हुलि अस्त्र थे। कोई झष और शूल लिये था। कोई गदा और दण्ड लिये था। कोई धनुष लिये था, कोई सरजाल और कोई एक करवाल लिये था। रावणके अनुचरों, की समस्त सेना, इस प्रकार सनद्ध होकर चल पड़ी, मानो समुद्रका जल ही प्रलयकालमें अपनी मर्यादा छोड़कर उछल पड़ा हो ॥१-१४॥

[१२] इस प्रकार लङ्कानगरी क्षुब्ध सागरकी तरह व्याकुल हो उठी। रथवर, गजवरसमूह जम्वाण विमान और घोड़ों से वह व्याप्त हो रही थी। निकलती हुई सेना कहीं भी नहीं समा पा रही थी। वह गलियोंको रौंदती हुई जा रही थी, ध्वज और चपल महाध्वज फहरा रहे थे। पटु, पटह, शङ्ख और मद्दल बज रहे थे। उत्तम शस्त्र अपने हाथोंमें लिये हुए, रावणके अनुचरोंने तुरन्त उस उपवनको ऐसे घेर लिया, मानो नये मेघोंने तारामंडलको घेर लिया हो या मानो तीन प्रकारके पवनोंने त्रिभुवनको घेर लिया हो। इस प्रकार रथवरों और गजवरोंसे उसे घेरकर नरवरोंने हनुमान को ललकारा—"जैसे तुमने विशाल परकोटा ध्वस्त किया, कोतवाल वज्रायुधको युद्धमें आहत किया, वनपालोंकी हत्या की और उद्यान उजाड़ा है, खल, क्षुद्र, पिशुन, उसी तरह अब मर और प्रहार झेल।" यह सुनकर हनुमान विशाल कांपिल्य वृक्ष लेकर दौड़ा। पहली ही भिड़ंतमें उसने शत्रुसेनाको अनेक भागोंमें विभक्त कर दिया। मानों विरुद्ध होकर सिंहने हाथीके झुण्डको कई दिशाओंमें तितर-बितर कर दिया हो ॥१-१०॥

[१३]

दुवई

जउ जउ पवणपुत्तु परिसक्कइ तउ तउ वलु ण थक्कई ।
कुद्धएँ णियय-कन्तें सुकलत्तु व णउ णासइ ण ढुक्कई ॥१॥
सु-कलत्तु जेम अड्डुड्डु जाइ । सु-कलत्तु जेम भिउडिहिँ ण थाइ ॥२॥
सु-कलत्तु जेम विवरिउ ण होइ । सु-कलत्तु जेम वयणु वि ण जोइ ॥३॥
सु-कलत्तु जेम दूरिउ मणेण । सु-कलत्तु जेम ढुक्कइ खणेण ॥४॥
सु-कलत्तु जेम ओसारु देइ । सुकलत्तु जेम करयलु धुणेइ ॥५॥
सु-कलत्तु जेम लिहक्कन्तु जाइ । सु-कलत्तु जेम पासेउ लेइ ॥६॥
सु-कलत्तु जेम रोसेण वलइ । सु-कलत्तु जेम सम्पत्तु खलइ ॥७॥
सु-कलत्तु जेम संकुइय-वयणु । सु-कलत्तु जेम मउलन्त-णयणु ॥८॥
सु-कलत्तु जेम किय वङ्क-भमुहु । सु-कलत्तु जेम धावन्तु समुहु ॥९॥

घत्ता

रोक्कइ कोक्कइ ढुक्कइ वि वेढइ वलइ धाइ परिपेल्लइ ।
हणुवहों वलु सु-कलत्तु जिह पिट्टिजन्तु वि मग्गु ण मेल्लइ ॥१०॥

[१४]

दुवई

हुलि-हल - मुसल-सूल - सर-सब्बल-पट्टिस-फलिह-कोन्तेँ हिँ ।
गय-मोग्गर-मुसुण्ढि - झस - कोन्तेँहिँ सूलेँहिँ परसु-चक्केँ हिँ ॥१॥
हउ पवण-पुत्तु । रणेँ उत्थरन्तु ॥२॥
तेण वि चलेण । दिढ-भुअ - वलेण ॥३॥
णिद्दलिउ सिमिरु । चमरेण चमरु ॥४॥
छत्तेण छत्तु । कोन्तेण कोन्तु ॥५॥
खग्गेण खग्गु । धउ धएँण भग्गु ॥६॥

[१३] जहाँ-जहाँ पवनसुत घूमता, वहाँ-वहाँ सेना ठहर नहीं पाती। अपने कांतके क्रुद्ध होनेपर सुकलत्रकी तरह (वह सेना) न नष्ट ही होती और न पास ही पहुँच पाती। सुकलम की तरह वह सामने-सामने जाती थी। सुकलत्रकी तरह भृकुटि के सम्मुख नहीं ठहरती थी। सुकलत्रकी तरह विपरीत नहीं देखती थी। सुकलत्रकी तरह वह मनमें पीड़ित थी। सुकलत्र की तरह वह क्षणभर में पहुँच जाती थी। सुकलत्रकी तरह, हट जाती थी। सुकलत्रकी तरह हाथ धुनती थी, सुकलमकी तरह छिपती हुई जाती थी। सुकलत्रकी तरह पसीना-पसीना हो जाती। सुकलत्रकी तरह, रोषसे मुड़ पड़ती थी। सुकलत्रकी तरह निकट आते ही स्खलित हो जाती थी। सुकलत्रकी तरह वह अत्यंत संकुचित हो रही थी। सुकलत्रकी भाँति उसके नेत्र मुकुलित थे। सुकलत्रकी तरह उसकी भ्रकुटी टेढ़ी-मेढ़ी हो रही थी। सुकलत्रकी भाँति ही वह सेना सामने-सामने ही दौड़ रही थी। हनुमान उसे रोकता, बुलाता और पास पहुँच जाता। कभी उसे घेर लेता, मुड़ता, दौड़ता और उसे पीड़ित करता। किंतु वह सेना पीटी जाकर भी सुकलत्रकी भाँति अपना रास्ता नहीं छोड़ रही थी ॥ १–१० ॥

[१४] हुलि, हल, मूसल, शूल, सर, सव्वल, पट्टिश फलिह, भाला, गदा, मुद्गर, भुसुंडि, झस, कोत, शूली और परशु चक्रसे सेनाने जब युद्धमें उछलते हुए हनुमानको आहत कर दिया, तब दृढभुज उसने भी रावणकी सेनाको चपेट डाला। चमरसे चमर, छत्रसे छत्र, कोंतसे कोंत, खड्गसे खड्ग, ध्वजसे ध्वज,

चिन्धेण चिन्धु । सरु सरेँण विद्धु ॥७॥
रहु रहवरेण । गउ गयवरेण ॥८॥
हउ हयवरेण । णरु णरवरेण ॥९॥
हत्थेण अण्णु । पाएण अण्णु ॥१०॥
पण्हियएँ अण्णु । जण्हुयएँ अण्णु ॥११॥
दिट्ठीएँ अण्णु । मुट्ठीएँ अण्णु ॥१२॥
उरसा वि अण्णु । सिरसा वि अण्णु ॥१३॥
तालेण अण्णु । तरलेण अण्णु ॥१४॥
सालेण अण्णु । सरलेण अण्णु ॥१५॥
चन्दणेँण अण्णु । वन्दणेँण अण्णु ॥१६॥
णागेण अण्णु । चम्पएँण अण्णु ॥१७॥
णिम्बेण अण्णु । पक्खेण अण्णु ॥१८॥
सज्जेण अण्णु । अज्जुणेँण अण्णु ॥१९॥
पाडलिएँ अण्णु । पुप्फलिए अण्णु ॥२०॥
केअइएँ अण्णु । मालइएँ अण्णु ॥२१॥
अणेण्ण अण्णु । हउ एम सेण्णु ॥२२॥

घत्ता

पवण - सुअहोँ पहरन्ताहोँ पाणायाम - थाम-परिचत्तइँ ।
रिउसाहण-णन्दणवणइँ वेण्णि वि रणेँ सरिसाइँ समत्तइँ ॥२३॥

[१५]

दुवई

पाडिय वर-तुरङ्ग रह मोडिय चूरिय मत्त कुञ्जरा ।
वेस व णह-विलुक्क थिय केवल उक्खय-दुम-वसुन्धरा ॥१॥

वण - वलइँ दसाणण - केराइँ । सुरह मि आणन्द - जणेराइँ ॥२॥
महियलेँ सोहन्ति पडन्ताइँ । णं जिण-पडिमहेँ पणमन्ताइँ ॥३॥
हण-वलइँ णिसण्णइँ धरणियलेँ । जलयरइँ व सुक्कइँ उवहि-जलेँ ॥४॥
पण-वलइँ सु-संतावियइँ किह । दुप्पुत्तेँहिँ उभय-कुलाइँ जिह ॥५॥
वण-वलइँ परोप्परु मीसियइँ । णं वर-मिहुणाइँ पदीसियइँ ॥६॥
सामीरणि - णिद्दएँ भुत्ताइँ । रणेँ रयणिहिँ मिलेँवि पसुत्ताइँ ॥७॥

चिह्नसे चिह्न और सरसे सर विद्ध हो उठे। रथसे रथ, गजसे गज, अश्वसे अश्व और नखसे नख, टकरा गये। कोई हाथ, कोई पैरसे, कोई पिंडरी ? से, कोई जानसे, कोई दृष्टिसे, कोई मुट्ठीसे, कोई उरसे, कोई सिरसे, कोई तालसे, कोई तरलसे, कोई सालसे, कोई चन्दनसे, कोई बन्धनसे, कोई नागसे, कोई चम्पकसे, कोई नींबसे, कोई लक्षसे, कोई सर्जसे, कोई अर्जुनसे,कोई पाटलीसे कोई पुम्फलीसे, कोई केतकीसे, कोई मालतीसे, हनुमान द्वारा आहत हो उठा। इस प्रकार उसने समस्त सेनाको ध्वस्त कर दिया। प्रहार करते हुए हनुमानने उच्छ्वास रहित रिपुसेना और नन्दनवनको समान रूपसे नष्ट कर दिया ॥१–२३॥

[१५] उत्तम अश्व गिर पड़े। रथ मुड़ गये। मत्त कुञ्जर चूर-चूर हो उठे। केवल उच्छिन्न वृक्षोंकी धरती, नकटी वेश्याके समान बाक़ी बची थी। देवताओंको भी आनन्द प्रदान करनेवाला रावणका उद्यान और सैन्य दोनों ही धरतीपर पड़े हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो वे जिनप्रतिमा को प्रणाम कर रहे हों। धराशायी नन्दनवन और सैन्य, ऐसे लगते थे मानो समुद्रका जल सूख जानेपर जलचर ही निकल आये हों। उद्यान और सैन्य उसी तरह संतप्त थे जैसे कुपुत्रके कारण अन्य कुल दुःखी होते हैं। उद्यान और सैन्य आपसमें मिले हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो उत्तम मिथुन ही दिखाई पड़ रहे हों। सामीरणी (हनुमान और

वण-वलइँ हणुव - पहराहयइँ । णं कालहोँ पाहुणाइँ गयइँ ॥८॥
अहवइ णं वलहोँ हियत्तणेण । वणु भग्गु भडग्गिहँ कारणेण ॥९॥

घत्ता

समरेँ महासरेँ रुहिर-जलेँ णर-सिरकमलइँ दिसहिँ पढोएँवि ।
मारुइ मत्त-गइन्दु जिह वग्गइ स इँ भुव-जुअलु पजोएँवि ॥१०॥

●

[५२. दुवण्णासमो संधि]

विणिवाइएँ साहणेँ भग्गएँ उववणेँ णं हरि हरिहेँ समावडिउ ।
स-तुरङ्ग स सन्दणु दहमुह-णन्दणु अक्खउ हणुवहोँ अब्भिडिउ ॥

[१]

दुरियाणणउ विहुणिय - वाहुदण्डओ ।
णं गयवरउ णिब्भर-गिल्ल गण्डओ ॥
तं दहवयणु जयकारेवि अक्खओ ।
णं णीसरिउ गरुडहोँ समुहु तक्खओ ॥१॥

संचल्लन्तएँ रह-गय - वाहणेँ । रणेँ पडहउ देवाविउ साहणेँ ॥२॥
कड्ढिय-हय - संजोत्तिय - सन्दणु । लीलएँ चडिउ दसाणण-णन्दणु ॥३॥
धूमकेउ धय-दण्डेँ थवेप्पिणु । कालदिट्ठि सारत्थि करेप्पिणु ॥४॥
परिहिउ माया-कवउ कुमारेँ । रहु संचल्लिउ पच्छिम - दारेँ ॥५॥
ताव समुट्ठियाइँ दुण्णिमित्तइँ । जाइँ विओय-मरण-भयइत्तइँ ॥६॥
सिव फेक्कारु करन्ति पढुक्कइ । सुक्कएँ पायवेँ वुक्कणु वुक्कइ ॥७॥
पहु छिन्दन्तु सप्पु संचल्लइ । पुणु पडिकूलु पवणु पडिपेल्लइ ॥८॥
रासहु रसइ कुमारहोँ पच्छएँ । णावइ सज्जणु लग्गु कडच्छएँ ॥९॥

हवा) के कारण मानो वे युद्ध और रातमें एकाकार हो उठे हों। पवनसुत हनुमानके प्रहारोंसे आहत वन और बल ऐसे जान पड़ते थे मानो दोनों ही यम के अतिथि जा बने हों। रुधिर जलसे पूर्ण उस युद्धरूपी महासमरमें दिशाओंको नरोंके सिरकमल उपहारमें चढ़ाकर और अपनी भुजाओंका प्रयोगकर गर्वीला हनुमान मत्तगजकी तरह गरज रहा था ॥१-१०॥

●

बावनवीं संधि

सेनाका विनाश और नन्दनवनका पतन होनेपर रावणका पुत्र अक्षयकुमार अश्व और रथके साथ आकर हनुमानसे भिड़ गया, वैसे ही जैसे सिंहसे सिंह भिड़ जाता है।

[१] उसका चेहरा तम-तमा रहा था, अपने दोनों हाथ मलते हुए वह ऐसा लगता था मानो, मद झरता हुआ महागज हो। रावणकी जय बोलकर अक्षयकुमार निकल पड़ा, मानो गरुड़ के सम्मुख तक्षक ही निकला हो। रथ और गजवाहनोंके साथ, सेनाके प्रस्थान करनेपर दुंदुभि बजवा दी गई। अश्व निकल पड़े। रथ खींचे जाने लगे और रावणपुत्र लीलापूर्वक उसपर चढ़ गया। ध्वजदंडपर धूमकेतु स्थापितकर, अक्षयकुमारने कालदृष्टिको अपना सारथि बनाया। कुमारने मायाकवच पहन लिया। पश्चिम-द्वारसे रथ चल पड़ा। ठीक इसी समय, वियोग और मरणसे पूरित दुर्निमित्त होने लगे। शृंगाल फेक्कार करता हुआ आया। कौआ सूखे पेड़पर बैठकर काँव-काँव करने लगा। साँप रास्ता काटकर निकल गया। हवा उल्टी बहने लगी। कुमारके पीछे गधा बोल रहा था, वैसे ही जैसे सज्जनके पीछे दुर्जन हो?

घत्ता

अवगण्णेंवि ताइँ मि सउण-सयाइँ मि दुप्परिणामें छाइयउ ।
णङ्गूल-पईहहों सीहु व सीहहों हणुवहों समुहु पधाइयउ ॥१०॥

[२]

एत्थन्तरे पभणइ पवर-सारहि ।
समरङ्गणएँ केण समउ पहारहि ॥
ण तुरङ्ग गय धय-चिन्धइँ ण विहावमि ।
सवडम्मुहउ रहवरु कासु वाहमि ॥१॥

तं णिसुणेवि पजम्पिउ अक्खउ । 'जो णीसेस-णिहय-पविवक्खउ ॥२॥
सारहि समर-सएँहिँ जसवन्तहों । रहवरु वाहि वाहि हणुवन्तहों ॥३॥
रहवरु वाहि वाहि जहिँ रहवर । संचूरिय - सतुरङ्ग - सणरवर ॥४॥
रहवरु वाहि वाहि जहिँ कुञ्जर । दलिय-सिरग्ग भग्ग-भुव-पञ्जर ॥५॥
रहवरु वाहि वाहि जहिँ छत्तइँ । पडियइँ महिहिँ णाइँ सयवत्तइँ ॥६॥
रहवरु वाहि वाहि जहिँ चिन्धइँ । अण्णु पणच्चावियइँ कवन्धइँ ॥७॥
रहवरु वाहि वाहि जहिँ गिद्धइँ । परिघमंति वस-मंस - पइद्धइँ ॥८॥
रहवरु वाहि वाहि जहिँ उववणु । णं दरमलिउ वियड्ढें जोव्वणु ॥९॥

घत्ता

सारहि एहु पावणि हउँ सो रावणि विहि मि भिडन्तहँ एउ दलु ।
जिम हणुवहों मायरि जिम मन्दोयरि मुअइ सुदुक्खउ अंसु-जलु' ॥१०॥

[३]

जं जाणियउ अक्खउ रण-रसाहिउ ।
रहु सारहिण हणुवहों सम्मुहु वाहिउ ॥
ढुक्कन्तु रणें तेण वि दिट्ठु केहउ ।
रयणायरेंण गङ्गा-वाहु जेहउ ॥१॥

अभाग्य मानो उसपर छाया हुआ था। इसलिए उन सैकड़ों अप-शकुनोंकी उपेक्षाकर वह हनुमानके सम्मुख इस तरह दौड़ा मानो दीर्घ पूँछवाले सिंहके पीछे सिंह दौड़ा हो ॥१-१०॥

[२] इसी बीचमें उसके प्रवर सारथीने पूछा कि युद्धके प्रांगणमें आप किससे लड़ेंगे। मैं तो अश्व, गज और ध्वज-चिह्न कुछ भी नहीं देख रहा हूँ फिर रथ किसके सम्मुख हाँकूँ। यह सुनकर, समस्त प्रतिपक्षका संहार करनेवाले अक्षयकुमारने उत्तरमें सारथीसे कहा कि सैकड़ों युद्धोंमें यशस्वी हनुमानके सम्मुख मेरा रथ हाँक ले चलो। तुम रथ वहाँ हाँककर ले चलो जहाँ चूर-चूर हुए अश्वों और नरवरोंके साथ रथवर हैं। रथवरको हाँककर रथ तुम वहाँ ले चलो जहाँ फूटे सिर और भग्न शरीरवाले गज हैं। तुम रथ वहाँ हाँक ले चलो जहाँ छत्र, कमलकी तरह धरती पर बिखरे हैं, तुम रथवरको वहाँ पर हाँक ले चलो जहाँ पर धड़ लोट-पोट रहे हैं। तुम रथको वहाँ हाँक ले चलो जहाँ मज्जा और माँसके लोभी गीध मँडरा रहे हों। तुम रथवर वहाँ हाँक ले चलो जहाँ नन्दनवन इस प्रकार ध्वस्त कर दिया गया है मानो विदग्धने (किसीका) यौवन ही मसल दिया हो। सारथिपुत्र यह है हनुमान और यह है रावणपुत्र अक्षय कुमार। युद्धरत्त दोनोंकी यह सेना है। जिस प्रकार हनुमानकी माँ उसी प्रकार मन्दोदरी (अक्षयकी माँ) दुखके आंसू गिरायेगी ॥१-१०॥

[३] जब सारथीने यह देखा कि कुमार अक्षय रणरस (वीरता) से भरा हुआ है तो उसने हनुमानके सम्मुख रथ बढ़ा दिया। रणस्थलमें पहुँचते ही हनुमानने उसे इस प्रकार देखा मानो समुद्रने गंगाके प्रवाहको देखा हो। रथ देखकर हनुमान

जं णिज्झाइउ णिसियर-सन्दणु । मग्गें आरुट्ठु समीरण - णन्दणु ॥२॥
वलिउ दिवायर-चक्कहों राहु व । रइ-भत्तारहों तिहुवण-णाहु व ॥३॥
वलिउ तिविट्ठु व अस्सग्गीवहों । राहवो व्व मायासुग्गीवहों ॥४॥
दहवयणो व्व वलिउ सहसक्खहों । तिह हणुवन्तु समुहु रणें अक्खहों ॥५॥
दहमुह - णन्दणेण हक्कारिउ । णि-ट्ठुर-कडु-आलावहिँ खारिउ ॥६॥
'चङ्गउ पवण-पुत्त पइँ जुज्झिउ । जिणवर-वयणु कयावि ण वुज्झिउ ॥७॥
अणुवउ गुणवउ णउ सिक्खावउ । परधण-वउ सुणासु जिह सावउ ॥८॥
एत्तिय जीव जेण संघारिय । ण वि जाणहुँ कहिँ थत्ति समारिय ॥९॥

घत्ता

मइँ घइँ सुकु-लीवहों सव्वहों जीवहों किय णिवित्ति मारेवाहों' ।
पर एक्कु परिग्गहु णाहिँ अवग्गहु पइँ समाणु पहरेवाहों ॥१०॥

[४]

अक्खत्तहो वयणु सुणेवि तणुवेँण ।
पङ्कय-मुहेँण सरहसु हसिउ हणुवेँण ॥
'जिह एत्तियहुँ तुज्झु वि भिडन्तहो ।
जीविउ हरमि एत्तिउ रणें रसन्तहो ॥१॥

एव चवन्त सुहड-चूडामणि । भिडिय परोप्परु रावणि-पावणि ॥२॥
णं विण्णि मि आसीविस विसहर । णं विण्णि मि मुक्कङ्कुस कुञ्जर ॥३॥
णं विण्णि मि सरहस पञ्चाणण । णं विण्णि वि कुलिसहर-दसाणण ॥४॥
णं विण्णि मि गलगज्जिय जलहर । णं वेण्णि वि उत्थल्लिय सायर ॥५॥
विण्णि वि रावण-राहव-किङ्कर । विण्णि वि वियड-वच्छ विहुणिय-कर ॥६॥
विण्णि वि रत्त-णेत्त डसियाहर । विण्णि वि वहु-परिवड्ढिय-रण-भर ॥७॥

मन ही मन उभड़ पड़ा। सूर्यमण्डलपर राहुकी तरह या कामदेव पर शिवकी तरह, उसकी ओर मुड़ा। रणमुखमें पवनपुत्र कुमार अक्षयपर उसी प्रकार झपटा जिस प्रकार, अश्वग्रीवपर त्रिविष्ट, माया सुग्रीवपर राम या सहस्राक्षपर रावण झपटा था। तब रावण-पुत्र कुमार अक्षयने निष्ठुर और कठोर शब्दोंमें पवनपुत्रको ललकारकर उसे क्षुब्ध कर दिया। उसने कहा, "अरे हनुमान! तुमने भला युद्ध किया। जिनवरके वचनको तुमने कुछ भी नहीं समझा। अणुव्रत, गुणव्रत और परधन व्रतमेंसे तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, जिनसे कि श्रावकका सुनाम होता है। जिसने इतने इतने जीवोंका संहार किया है कि पता नहीं वह कहाँ जाकर विश्राम पायेगा। मैंने इस समय सभी छोटे-छोटे जीव-जन्तुओंको मारनेसे निवृत्ति ग्रहण कर ली है, केवल एक बातको अभी तक ग्रहण नहीं किया और वह यह कि तुम्हारे जैसे लोगोंके साथ युद्ध करना नहीं छोड़ा" ॥१-१०॥

[४] कुमार अक्षयके वचन सुनकर, हनुमानके हर्षपूर्ण मुखकमलपर हँसी आ गई। वह बोला, "जैसे इतने जीवोंका, वैसे ही लड़ते बोलते हुए तुम्हारा भी जीवनहरण कर लूँगा।" यह कहनेपर सुभटश्रेष्ठ कुमार अक्षय और हनुमान दोनों आपस में ऐसे टकरा गये, मानो दोनों ही आशीविष सर्पराज हों। मानो दोनों ही अंकुशविहीन गज हों, मानो दोनों ही वेगशील सिंह हो, मानो दोनों ही गरजते हुए महामेघ हों, मानो दोनों ही उछलते हुए समुद्र हों। दोनों राम और रावणके अनुचर थे। विशाल वक्षःस्थलवाले वे दोनों ही अपने हाथ धुन रहे थे। दोनोंके नेत्र आरक्त थे और वे अपने ओंठ चबा रहे थे। दोनों ही, बढ़ते हुए युद्धभारसे दबे थे। दोनों ही अरहंतका नाम

विण्णि वि णासु लिन्ति अरहन्तहों। तरु णिसियरेँण मुक्कु हणुवन्तहों ॥८॥
तेण वि तिक्ख-खरुप्पेँ हिँ खण्डिउ। वलि जिह दिसिहिँ विहञ्जेँ वि छण्डिउ ॥

घत्ता

पुणु मुक्कु महीहरु स-तरु स-कन्दरु सो वि पडीवउ छिण्णु किह।
जण-णयणाणन्दें परम-जिणेन्दें भीसणु भव-संसारु जिह ॥१०॥

[५]

अण्णेक्कु किर गिरिवरु मुअइ जावेँहि।
आरुट्ठुएँण पवण-सुएण तावेँहिँ ॥
णिय-भुअ-वलेँण भामेँवि णहयलन्तरे।
सहु रहवरेँण घत्तिउ पुव्व-सायरे ॥१॥
सारहि णिहउ तुरङ्गम-घाइय। आसालियहेँ महापहेँ लाइय ॥२॥
अक्खउ गयण-मग्गेँ उप्पालेँवि। आउ खणद्धें सिल संचालेँवि ॥३॥
किर परिघिवइ वियड-वच्छ-त्थलेँ। हणुवें णवर भमाडेँवि णहयलेँ ॥४॥
घत्तिउ दाहिण-लवण-महण्णवेँ। आउ पडीवउ भिडिउ महाहवेँ ॥५॥
पुणरवि घत्तिउ पच्छिम-सायरेँ। तहि मि पराइउ णिविसब्भन्तरेँ ॥६॥
पुणु आवाहिउ उत्तर-वासेँ। पत्तु पडीवउ सहुँ णीसासेँ ॥७॥
पुणु णहयलहोँ घित्तु भामेप्पिणु। मेरुहेँ पासेँहिँ भामरि देप्पिणु ॥८॥
पत्तु खणन्तरेँ णहेँ गज्जन्तउ। 'मारइ पहरु पहरु' पभणन्तउ ॥९॥

घत्ता

(तं) णिसुणेवि पवोल्लिय सुर मणेँ डोल्लिय 'कुण्डहोँ कइ दूअहोँ तणिय ॥
दुक्करु जीवेसइ रामहोँ णेसइ कुसल-वत्त सीयहेँ तणिय' ॥१०॥

[६]

जोयण-सएँण जो घल्लिउ आवइ (?)।
अइ-चञ्चलउ मणु कामिणिहेँ णावइ ॥

ले रहे थे। कुमार अक्षयने हनुमानके ऊपर एक वृक्ष फेंका। हनुमानने उसे अपने तीखे खुरपेसे वैसे ही खण्ड-खण्ड कर दिया जैसे बलिको विभक्तकर दिशाओंमें छिटक देते हैं। तब कुमार अक्षयने गुफाओंसे सहित पहाड़ फेंका, वह भी छिन्न-भिन्न होकर उसी प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार जननेत्रोंको आनन्द देनेवाले जिनसे छिन्न-भिन्न होकर भीषण भव-संसार गिर पड़ता है ॥१-१०॥

[५] इतनेमें कुमार अक्षय एक और पहाड़ उठाकर फेंकने लगा। परन्तु पवनपुत्र हनुमानने अपने भुजबलसे उसे आकाशमें उछालकर रथसहित पूर्व समुद्रमें फेंक दिया। सारथी मारा गया। और दोनों अश्वोंने आशाली विद्याका अनुसरण किया। किन्तु कुमार अक्षय आधे ही क्षणमें शिला उठाकर मारने आया। तब विशाल वक्षःस्थलवाले हनुमानने उसे घुमाकर लवण समुद्रमें फेंक दिया। फिर भी वह लौटकर लड़ने लगा। तब हनुमानने उसे पश्चिम समुद्रमें फेंक दिया। वह वहाँसे भी पलभरमें लौट आया। तब हनुमानने उसे उत्तर दिशामें फेंका, वहाँसे भी एक निश्वासमें लौटकर आ गया। हनुमानने उसे आकाशमें फेंक दिया, वह भी मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देकर आधे ही क्षणमें आकाशमें गर्जन करता हुआ आ गया। उसने कहा, "प्रहार करो, प्रहार करो।" यह सुनकर देवता मन ही मन डर कर बोले, "अरे, अब तो हनुमानके दौत्यकी गाथा ही समाप्त हुई, अब इसका जीवित रहना और रामके पास सीतादेवीका कुशल-सन्देश ले जाना दुष्कर ही है।" ॥१-१०॥

[६] सौ सौ योजन दूर फेंके जानेपर भी वह वापस आ जाता था, इस प्रकार वह कामिनीके मनकी तरह चंचल हो रहा

जं आहयणेँ जिणेवि ण सक्किउ अरी ।
विम्भाविओ मणेँ हणुवन्त-केसरी ॥१॥

रावण-तणयहोँ फुरणु पसंसिउ । 'वलु वडुन्तरेण महु पासिउ ॥२॥
जसु संचारु सुरेहिँ ण वुज्झिउ । तेण समाणु केम हउँ जुज्झिउ ॥३॥
किह जसु लद्धु णिहउ मइँ आहवेँ । कुसल-वत्त किह पाविय राहवेँ' ॥४॥
मारुइ मणेँण वियप्पइ जावँहिं । मन्दोयरि - सुएण रणेँ तावँहिं ॥५॥
सावट्ठम्भें भड्डु वोल्लाविउ । 'किं भो पवण-पुत्त चिन्ताविउ ॥६॥
णासु णासु जइ पाणहँ भीयउ । इन्दइ जाम ण आवइ वीयउ' ॥७॥
तं णिसुणेवि पहञ्जण-जाएं । रिउ वच्छयलेँ विद्धु णाराएं ॥८॥
तेण पहारें णिसियरु मुच्छिउ । पडिवउ दुक्खु दुक्खु ओमुच्छिउ ॥९॥

घत्ता

तहिँ अवसरेँ झाइय पासु पराइय अक्खहोँ अक्खय-विज्ज किह ।
देवत्तणेँ लद्धएँ केवलि-सिद्धएँ परम-जिणिन्दहो रिद्धि जिह ॥१०॥

[७]

पभणिय भडेँण 'चिन्तिउ किण्ण वुज्झहि ।
एत्तडउ करेँ एण समाणु जुज्झहि' ॥
पहसिय - मुहएँ णर - सुर-पुज्जणिज्जए ।
संवोहियउ अक्खउ अक्खय-विज्जए (?) ॥१॥

'अहो *मन्दोअरि-णयणाणन्दण* । *लङ्का - णयरि - णराहिव-णन्दण* ॥२॥
जं पभणहि तं काइँ ण इच्छमि । सिरसा वज्जासणि वि पडिच्छमि ॥३॥
जइ हउँ अक्खय-विज्जा रूसमि । तो णिविसद्धें सायरु सोसमि ॥४॥
इन्दहोँ इन्दत्तणु उद्दालमि । मेरु वि वाम-करग्गें टालमि ॥५॥
णवरि एक्कु गुरु सव्वहुँ पासिउ । णउ अ-पमाणु होइ मुणि-भासिउ ॥६॥

था। जब हनुमान उसे युद्धमें जीत नहीं पाया तो वह अपनेमें आश्चर्यचकित रह गया। वह रावणके पुत्र कुमार अक्षयकी स्फूर्ति की यह प्रशंसा करने लगा कि यह मेरी अपेक्षा अधिक बलवान है। देवता भी जिसकी गतिका पार नहीं पा सकते, उसके साथ मैं कैसे युद्ध करूँ? यशके लोभी इसे मैं किस प्रकार आहत करूँ और राम तक सीता देवीकी कुशलवार्त्ता कैसे ले जाऊँ। इस प्रकार हनुमान अपने मनमें संकल्प-विकल्प कर ही रहा था कि कुमार अक्षयने अपने मंत्री अवष्टंभ द्वारा यह कहलवाया, "अरे पवन-पुत्र, क्या चिंता कर रहे हो, यदि अपने प्राणोंसे भयभीत नहीं हो, और दूसरे, जबतक इन्द्रजीत आता है, उसके पहले ही मैं तुम्हें नष्ट कर देता हूँ।" यह सुनकर हनुमान क्रुद्ध हो उठा। उसने शत्रुकी छातीमें तीर मारा। उसके प्रहारसे राक्षस मूर्छित हो गया। बड़ी कठिनाईसे जिस किसी तरह जब उसकी मूर्छा दूर हुई तो उसने अपनी अक्षय विद्याका चिंतन किया। वह उसके पास उसी तरह आ गई जिस प्रकार ऋद्धि, देवत्व प्राप्त होनेपर केवलज्ञानी परम सिद्धके पास आ जाती है ॥१-१०॥

[७] सुभटकुमार अक्षयने कहा, "चिंतन करनेपर भी तुम नहीं समझ पा रही हो, लो इसके साथ लड़ो"। तब नर और देवताओंमें पूज्य उस विद्याने हँसमुख होकर कहा, "अरे मंदोदरीके नेत्रप्रिय लंकानरेशके पुत्र कुमार अक्षय, तुमने जो कुछ कहा है उसे करनेकी मेरी इच्छा क्यों नहीं है। मैं अपने सिरपर वज्रको भी झेल सकती हूँ। कुमार अक्षयके कुपित होनेपर मैं आधे ही पलमें समुद्रका शोषण कर लूँ। इन्द्रके इन्द्रत्वको दल दूँ और मेरु पर्वतको हाथकी अंगुलीसे टाल दूँ। परन्तु इन सबकी अपेक्षा एक बात सबसे बड़ी है, और वह यह कि गुरुका कहा

पइ मि मइ मि हणुवन्तहों हत्थें । जाएवउ वज्जाउह - पन्थें ॥७॥

घत्ता

एम वि जइ जुज्झहि कज्जु ण बुज्झहि तो पडिवारउ करहि रणु ।
णिम्मवेंवि स-वाहणु माया-साहणु होमि सहेज्जी एक्कु खणु' ॥८॥

[८]

तो णिम्मविउ माया-वलु अणन्तउ ।
मेहउलु जिह दस-दिसि-वहु भरन्तउ ॥
जलें थलें गयणें भुवणन्तरें ण माइओ ।
अक्खण-सुअहों पहरण-करु [प] धाइओ ॥१॥

केण वि लइउ महाकुल-पावउ । केण वि हुववहु जग-संतावउ ॥२॥
केण वि उम्मूलिउ वड-पायवु । केण वि तामसु केण वि वायवु ॥३॥
केण वि जल-धारा-हरु वारुणु । केण वि दिणयरत्थु अइ-दारुणु ॥४॥
केण वि णाग-पासु केण वि घणु । एम पधाइउ सयलु वि साहणु ॥५॥
तो पण्णत्ति-विज्ज हणुवन्तें । चिन्तिय अहिणव-वलु चिन्तन्तें ॥६॥
'दइ पेसणु पभणन्ति पराइय । माया - साहणु करें वि पधाइय ॥७॥
वेण्णि वि वलइँ परोप्परु भिडियइँ । जल-थलाइँ णं एक्कहिँ मिलियइँ ॥८॥
उब्भिय-धयइँ समाहय-तूरइँ । णं कलि-काल-मुहइँ अइ-कूरइँ ॥९॥

घत्ता

हणु-अक्खकुमारहुँ विक्कम-सारहुँ जाउ जुज्झु पहरण-घणउ ।
जोइज्जइ इन्दें सहुँ सुर-विन्दें णावइ छाया-पेक्खणउ ॥१०॥

[९]

वेण्णि वि वलइँ जय-सिरि-लद्ध-पसरइं ।
पहरन्ति रणें जीव-भयावण-सरइं ॥
फुरियाहरइँ भड - भिउडी - करालइं ।
ए (क्के) लमेक्कहों पेसिय-वाण-जालइं ॥१॥

कभी अप्रमाणित नहीं जाता। तुम और मैं दोनों हनुमानके हाथसे वज्रायुधके पथपर जायेंगे इतनेपर भी यदि तुम अपना हित नहीं समझते तो युद्ध करो, मैं भी वाहनसहित मायावी सेना उत्पन्न कर एक क्षणके लिए तुम्हारी सहायता करूँगी।" ॥१-८॥

[८] यह कहकर विद्याने अनंत सेना उत्पन्न कर दी जो मेघकुलकी तरह दसों दिशाओंमें फैल गई। जल, थल, आकाश और भुवनांतरमें भी वह नहीं समा पा रही थी। वह हाथमें अस्त्र लेकर हनुमान पर दौड़ी। किसीने महाकुल अग्नि ले ली, किसीने जनसंतापकारी, हुतवह ले लिया। किसीने वटका पेड़ उखाड़ लिया, किसीने अंधकार, तो किसीने पवन। किसीने जलधाराधर वारुण, तो किसीने अत्यंत भयङ्कर दिनकर-अस्त्र ले लिया। किसीने नाग-पाश और किसीने मेघ ही ले लिया। इस प्रकार योधागण दौड़ पड़े। तब अभिनव सेनाका विचार करते हुए हनुमानने भी अपनी 'पण्णत्ति' प्रज्ञप्ति विद्याका चिंतन किया। वह "आज्ञा दो" यह कहती हुई आ पहुँची। वह भी विद्यामयी सेना रचकर दौड़ी। दोनों सेनाएँ आपसमें टकरा गई। जल-थल दोनों मिलकर एक हो गये। दोनोंकी ध्वजाएँ उड़ रही थीं और तूर्य बज रहे थे, मानो अति क्रूर कलिकालके मुख ही हों। विक्रमके सारभूत हनुमान और अक्षयकुमारमें शस्त्रोंसे सघन युद्ध हुआ, इन्द्रने भी उसे देवसमूहके साथ ऐसे देखा मानो इन्द्रजाल हो ॥१-१०॥

[९] दोनों ही सेनाओंको जयश्रीके विस्तारकी चाह हो रही थी, वे युद्धमें प्राणोंके लिए भयङ्कर तीरोंसे प्रहार कर रही थीं। उनके अधर काँप रहे थे और योधाओंकी भौंहें भयङ्कर हो रही थीं। एक दूसरेपर बाणोंका जाल छोड़ रहे थे। कहीं

कत्थइ वोल्लावोल्लि वरावरि । कत्थइ दुक्कादुक्कि धराधरि ॥२॥
कत्थइ हूलाहूलि मरामरि । कत्थइ कण्डाकण्डि सरासरि ॥३॥
कत्थइ दण्डादण्डि घणाघणि । कत्थइ केसाकेसि हणाहणि ॥४॥
कत्थइ छिन्दाछिन्दि लुणालुणि । कत्थइ कड्ढाकड्ढि धुणाधुणि ॥५॥
कत्थइ भिन्दाभिन्दि दलादलि । कत्थइ मुसलामुसलि हलाहलि ॥६॥
कत्थइ सेल्लासेल्लि णरिन्दहुँ । कत्थइ पेल्लोपेल्लि गइन्दहुँ ॥७॥
कत्थइ पाडापाडि तुरङ्गहुँ । कत्थइ मोडामोडि रहङ्गहुँ ॥८॥
कत्थइ लोट्टालोट्टि विमाणहुँ । आहर - जाहर णरवर-पाणहुँ ॥९॥

घत्ता

विण्णि वि अ-णिविण्णइँ माया-सेण्णइँ ताव परोप्परु जुज्झियइँ ।
कहिँ गम्पि पइट्ठइँ कहि मि ण दिट्ठइँ जाव ण केण वि वुज्झियइँ ॥१०॥

[१०]

उव्वरिय पर दुद्दम-दणु-विमद्दणा ।
संगर-सम-गय रावण-पवण-णन्दणा ॥
णं मत्त गय धाइय एक्कमेक्कहो ।
सहसोत्थरिय रण-धव देन्त सक्कहो ॥१॥

तो आरूढ्‌ठु समीरण-णन्दणु । चूरिउ रणेँ रयणायर-सन्दणु ॥२॥
सारहि णिहउ तुरङ्गम घाइय । वइवस-पुरवर-पन्थेँ लाइय ॥३॥
अक्खकुमार-हणुव थिय केवल । वाहा-जुज्झेँ भिडिय महा-वल ॥४॥
तो मारुव-सुएण आयामिउ । चलणेँहिँ लेवि णिसायरु भामिउ ॥५॥
ताम जाम आमेल्लिउ पाणेँहिँ । कह वि कह वि णिय-भिच्च-समाणेँहिँ ।६।
लोयणइ मि उच्छलियइँ फुट्टेवि । विण्णि वाहु-दण्ड गय तुट्टेवि ॥७॥

योद्धाओंमें बराबरीकी कहासुनी हो रही थी। धक्का-मुक्की हो रही थी। कहीं हूलाहूलि हो रही थी और कहीं मारामारी हो रही थी। कहीं, तीरन्दाजी, कहीं लट्ठबाजी, कहीं घनबाजी, कहीं केशा-केशी और कहीं मारकाट हो रही थी। कहीं छेदन-भेदन, कहीं लोंचा-लोंची, कहीं खींचतान, और कहीं मारचपेट हो रही थी। कहीं भेदाभेदन, कहीं दलना-पीटना, कहीं मूसलबाजी, कहीं हलबाजी, कहीं राजाओंमें सेलबाजी और कहीं हाथियोंमें रेलपेल मची हुई थी। कहीं विमान गिर-पड़ रहे थे, कहीं खाँगोंमें मोड़ा-मोड़ मची। कहीं घोड़ोंमें पड़ापड़ी हो रही थी। कहीं, विमान लोट-पोट हो रहे थे, कहीं नरवरोंके प्राण आ जा रहे थे? इस तरह जमकर दोनों मायावी सेनाएँ लड़ते-लड़ते कहीं भी जाकर नष्ट हो गईं। न तो कोई उन्हें देख सका और न समझ ही सका॥१-१०॥

[१०] तब दुर्दम दानवोंका मर्दन करनेवाले हनुमान और अक्षयकुमार युद्धमें समान रूपसे लड़ने लगे। पवनपुत्रने रुष्ट होकर रजनीचरके रथको चूर-चूर कर दिया, सारथीको मार डाला, और अश्वको आहत कर दिया। उसे वैश्रवणके पथपर भेज दिया। अब अकेले हनुमान और अक्षयकुमार बचे। दोनों महा-बलियोंका बाहुयुद्ध होने लगा। तदनन्तर हनुमानने झुककर अक्षयकुमारको पैरोंसे पकड़कर तब तक घुमाया जब तक कि अपने अनुचरोंके तुल्य प्राणोंने उसे मुक्त नहीं कर दिया। उसके नेत्र फूटकर उछल पड़े, दोनों हाथ टूटकर गिर गये, नीलकमलकी

सिरु णिवडिउ णीलुप्पल-कोमलु । किउ सरीरु तहों हड्डहँ पोट्टलु ॥८॥
एह वत्त गय मय-मारिच्चहुँ । अन्तेउरहुँ असेसहुँ भिच्चहुँ ॥९॥

घत्ता

तो णिसियर-णाहें कोव-सणाहें हियउ हणेव्वएँ ढोइयउ ।
रण-रस-सण्णद्धुअ णिएँवि स यं भु व चन्दहासु अवलोइयउ ॥१०॥

●

[५३. तिवण्णासमो संधि]

भणउ विहीसणु 'लइ अज्जु कि कज्जु ण णासइ ।
रामण रामहों अप्पिज्जउ सीय-महासइ ॥

[१]

भो भुवणेक्क-सीह वीसद्ध-जीह तउ थाउ एह बुद्धी ।
अज्ज वि विगय-णामेंणं समउ रामेंणं कुणहि गम्पि 'संधी ॥१॥
अज्ज वि णिय जाणइ को वि ण जाणइ धरणियलें ।
अज्ज वि सिय माणहि कुल-खउ माऽऽणहि णियय-बलें ॥२॥
अज्ज वि सं-सा-रएँ मा संसारएँ पइसरहि ।
अज्ज वि उज्जाणेंहिँ सिविया-जाणेंहिँ संचरहि ॥३॥
अज्ज वि तुहुँ रावणु जग-जूरावणु सा जेँ सिय ।
अज्ज वि मन्दोअरि सा मन्दोअरि पाण-पिय ॥४॥
अज्ज वि ते सन्दण णरवर-सन्दण ते तुरय ।
अज्ज वि तं साहणु गहिय-पसाहणु ते जि गय ॥५॥
अज्ज वि करेँ खण्डउ करि-सिर-खण्डउ तं जि तउ ।
अज्ज वि भड-सायरु लद्ध-जसायरु रणेँ अजउ ॥६॥
अज्ज वि पवराहउ जाम ण राहउ ओवडुइ ।

तरह कोमल सिर गिर पड़ा। उसका शरीर हड्डियोंकी पोटली बन गया। यह खबर, शीघ्र ही, मय, मारीच और अन्तःपुरके दूसरे अनुचरोंके पास पहुँची। तब, अपने मनमें पवनसुतको मारनेका संकल्पकर निशाचरनाथ रावणने क्रुद्ध होकर, रणरस लुब्ध चन्द्रहास खड्गको अपने हाथमें ले लिया ॥९-१०॥

•

त्रेपनवीं सन्धि

विभीषणने रावणसे कहा, "लो, आज भी अपना काम मत बिगाड़ो, महासती सीता देवी रामको सौंप दो।

[१] हे भुवनैकसिंह, विश्रब्ध जीव ! तुम्हारी यह क्या मति हो गई है। आज भी, प्रसिद्धनाम रामके पास जाकर सन्धि कर लो। आज भी जानकीको ले जाओ। दुनियामें कोई भी इस बातको नहीं जानेगा। आज भी सीताका सम्मान करो, और अपनी सेनामें कुलक्षय मत करो। आज भी सन्देह भरे संसारमें मत घूमो। आज भी तुम शिविका यानमें बैठकर अपने उद्यानोंमें विहार करो। आज भी, तुम विश्वको सतानेवाले वही रावण हो, और सीता देवी भी वहीं हैं। आज भी तुम्हारी वही कृशोदरी मन्दोदरी प्राणप्रिय है। आज भी वे ही रथ हैं, वही नरवरोंका आगमन है। वे ही अश्व हैं, वही सेना है। वे ही प्रसाधन हैं। और वे ही गज हैं। आज भी तुम्हारे हाथमें, गजसिरोंको खण्डित करनेवाला खड्ग हैं। आज भी भटसमुद्र, यशके आकरको प्राप्त करनेवाले तुम रणमें अजेय हो। आज भी तुम प्रवर अस्त्रवाले हो। तब तक, जबतक कि राम नहीं आते, और आज जब तक

अज्ज वि बहु-लक्खणु जाम ण लक्खणु अब्भिडइ ॥७॥
वरि ताम दसाणण पवर-दसाणण पवर-भुअ ।
अप्पिज्जउ रामहों जण-अहिरामहों जणय-सुअ ॥८॥
परयारु रमन्तहों कहों वि जियन्तहों णाहिँ सुहु ।
अच्छहि तमें छूढउ णिय-मणें मूढउ काइँ तुहुँ ॥९॥

घत्ता

जाम विहीसणु दहवयणहों हियउ ण भिन्दइ ।
महि अप्फालेँवि मडु ताव समुट्ठिउ इन्दजइ ॥१०॥

[२]

"भो दणुइन्द-मद्दणा पइँ विहीसणा काइँ एव वुत्तं ।
अक्ख-कुमारें घाइए हणुएँ आइए लिहक्किउं ण जुत्तं ॥१॥
एवहिँ काइँ मन्तु मन्तिज्जइ । जलें विसट्टें किं वरुणु रइज्जइ ॥२॥
पित्तिय णासु णासु जइ भीयउ । उत्तर-सक्खि समरें महु वीयउ ॥३॥
एक्कु पहुच्चइ तोयदवाहणु । अच्छउ भाणुकण्णु पञ्चाणणु ॥४॥
अच्छउ मउ मारिच्चि सहोयरु । अच्छउ अण्णु मि जो जो कायरु ॥५॥
महु पुणु चङ्कउ अवसरु वट्टइ । जो किर अज्जु कल्लें अब्भिट्टइ ॥६॥
जेणाऽऽसाल-विज्ज विणिवाइय । वणु भग्गउ वण-पाल वि घाइय ॥७॥
किङ्कर - खन्धावारु पलोट्टिउ । अक्खउ कुमारु जेण दलवट्टिउ ॥८॥
सो महु कह वि कह वि अब्भिडियउ । सीहहों हरिणु जेम कमें पडियउ ॥९॥
दूउ भणेप्पिणु समरङ्गणें जइ वि ण मारमि ।
तो वि धरेप्पिणु तुम्हहँ समक्खु वित्थारमि ॥१०॥

[३]

पुणरवि रिउ-णिसुम्भ अहिमाण-खम्भ सुणि वयणु ताय ताय ।
जइ ण धरेमि सत्तु रणें उत्थरन्तु ता छित्त तुम्ह पाय ॥१॥

बहुत लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मण आकर नहीं लड़ता। तबतक, हे रावण, श्रेष्ठनायक और विशालबाहु, तुम जन-अभिराम रामको जनकसुता सीता सौंप दो। परस्त्रीका रमण करते हुए तुम्हें जीते जी कहीं भी सुख नहीं मिल सकता। तमसे मुक्त होओ। अपने मनमें मूर्ख क्यों बनते हो।" इस तरह विभीषण रावणके हृदयका भेद कर ही रहा था कि इतनेमें धरतीपर धमकता हुआ सुभट इन्द्रजीत उठा ॥१-१०॥

[२] वह बोला, "दानव और इन्द्रका दलन करनेवाले विभीषण, तुमने यह क्या कहा। अक्षयकुमारके मारे जाने और हनुमानके आनेपर अब पलायन करना ठीक नहीं। अब मन्त्रणा करनेसे क्या होगा, पानी निकल जाने पर, अब बाँध बाँधना क्या शोभा देगा। पितृव्य ! यदि विनाशसे आप भयभीत हैं तो मुझे युद्धमें दूसरा उत्तर साक्षी समझना ! एक तोयदवाहन (मेघवाहन) ही पर्याप्त है। भानुकर्ण और पंचानन यहीं रहें। मय, मारीच और सहोदर भी रहें, और भी जो जो कायर हैं, वह भी रहें। यह मेरे लिए तो बहुत ही भला अवसर है। मैं आज-कल ही में युद्ध करूँगा। जिसने आसाली विद्याका पतन किया, जिसने उद्यान उजाड़कर वनपालोंको भी मार डाला, अनुचरोंको भी आहत कर दिया और जिसने अक्षयकुमारको भी समाप्त कर दिया, उसे आज सिंहके पैरोंमें पड़े मृगकी तरह मैं किसी न किसी तरह नष्ट कर दूँगा। दूत समझकर युद्ध-स्थलमें यदि मैंने उसे न मारा तो कमसे कम पकड़कर तुम्हारे सामने लाकर रख दूँगा" ॥१-१०॥

[३] "और भी, शत्रुनाशक, अभिमानस्तम्भ हे तात ! मेरे वचन सुनो, यदि मैं रणमें उछलते हुए शत्रुको न पकड़ूँ तो

अहवइ लङ्केसर कि परमेसर वीसरिउ ।
जइयहुँ सुर-सुन्दरें गम्पि पुरन्दरें उत्थरिउ ॥२॥
तइयहुँ तेत्थन्तरें छत्त-णिरन्तरें धवल-धऍं ।
सिन्दूरुप्पङ्किऍं गिञ्जालङ्किऍं मत्तगऍं ॥३॥
संजोत्तिय-रहवरें हिंसिय-हयवरें पवर-थडें ।
धणु-गुण-टङ्कारवें कलयल-रउरवें कुइय-भडें ॥४॥
आमेल्लिय-परियरें कड्ढिय-सरवरें गाढ-फरें ।
पडु-पडहऽप्फालिऍं सद्द-वमालिऍं गहिर-सरें ॥५॥
रिउ-जय-सिरि-लुद्धऍं अमरिस-कुद्धऍं जुज्झ-मणें ।
सव्वल-हुलि-हूलहिँ सत्ति-तिसूलेँहिँ वावरणें ॥६॥
तहिँ तेहए साहणें हय-गय-वाहणें अब्भिडेंवि ।
साहेण व वर-करि धरिउ पुरन्दरि रहेँ चडेंवि ॥७॥
तहिँ इन्दइ घोसिउ णामु पगासिउ सुरवरेँहिँ ।
विज्जाहर-जक्खेँहिँ गन्धव-रक्खेँहिँ किण्णरेँहिँ ॥८॥
तो एक्कें हणुवें अण्णु वि मणुवें को गहणु' ।
रहेँ चडिउ तुरन्तउ जय-कारन्तउ परम-जिणु ॥९॥

घत्ता

हरि धुरेँ देप्पिणु धऍं विजउ जणहोँ पेक्खन्तहोँ ।
णिग्गउ इन्दइ णं वन्धणारु हणुवन्तहोँ ॥१०॥

[४]

पच्छऍं मेहवाहणो गहिय-पहरणो णिग्गओ तुरन्तो ।
णं जुअ-खऍं सणिच्चरो भरिय-मच्छरो अहर-विप्फुरन्तो ॥१॥
सो वि पधाइउ रहवरें चडियउ । णं केसरि-किसोरु णिव्वडियउ ॥२॥
संचल्लन्तऍं तोयदवाहणें । तूरइँ हयइँ असेस वि साहणें ॥३॥
सण्णज्झन्ति के वि रयणीयर । वर - तोणीर - वाण-धणुवर-कर ॥४॥

देखना ? मैं तुम्हारे चरण छूता हूँ। हे लंकेश्वर परमेश्वर ! क्या तुम वह बात भूल गये जब सुरसुन्दर इन्द्रपर आपने आक्रमण किया था। उस युद्धमें छत्र और धवल-ध्वजोंकी तो कोई गिनती ही नहीं थी। हाथी सिंदूर और गीतोंसे झंकृत हो रहे थे, रथ जुते हुए थे। घोड़ें हींस रहे थे। सैन्यघटा प्रबल हो रही थी। धनुषकी डोरकी टंकार हो रही थी। कलकल शब्द हो रहा था। सैनिक कुपित थे। परिकर छोड़कर, और उत्तम तीर लेकर सैनिक तमतमा रहे थे। विजयश्रीके लालची और अमर्षसे भरे हुए उनका मन युद्धके लिए हो रहा था। सब्वल, हूलि, हलि, शक्ति और त्रिशूलसे सेना आक्रमण कर रही थी, वह अश्व, गज और वाहनोंसे भरपूर थी, ऐसे उस भयंकर युद्धमें रथपर आरूढ़ लड़ते हुए मैंने इन्द्रको उसी तरह पकड़ लिया था जैसे सिंहवर गजको पकड़ लेता है। और तब, सुरवरों, विद्याधर, यक्ष, गंधर्व, राक्षस और किन्नरोंने मेरा नाम इन्द्रजीत घोषित किया था ? तो एक हनुमान और अन्य मनुष्योंको ग्रहण करनेमें कौन-सी बात है।" यह कहकर, वह मनमें जिनकी जय बोलता हुआ तुरंत रथपर चढ़ गया। रथकी धुरामें घोड़े जोतकर, विजयध्वज लेकर लोगोंके देखते-देखते इन्द्रजीत ऐसे निकल पड़ा मानो हनुमानको पकड़नेवाला ही हो ॥१-१०॥

[४] उसके पीछे, अस्त्र लेकर मेघवाहन भी तुरंत निकल पड़ा मानो युगका क्षय होनेपर मत्सरसे भरा कम्पिताधर शनैश्चर ही हो। वह भी रथपर चढ़कर दौड़ा मानो सिंहशावक ही निकल पड़ा हो। मेघवाहनके चलते ही सेनामें तूर्य बजा दिये गये। कितने ही निशाचर संनद्ध होने लगे, उनके हाथमें बढ़िया तूणीर, बाण और धनुष थे। उनके हाथोंमें खुली हुई पैनी तलवारें

के वि तिक्ख-खग्गुक्खय-हत्था । के वि गुरुहों ओणामिय-मत्था ॥५॥
के वि चडिय हिंसन्त-तुरङ्गँहिँ । के वि रसन्त-मत्त-मायङ्गँहिँ ॥६॥
के वि रहँहिँ कें वि सिविया-जाणँहिँ । के वि परिट्ठिय पवर-विमाणँहिँ ॥७॥
आउच्छन्ति के वि णिय-कन्तउ । को वि णिवारिउ रणँ पइसन्तउ ॥८॥
केण वि णिय-कलत्तु णिब्भच्छिउ । 'एक्कु सु-सामि-कज्जु पइँ इच्छिउ' ॥९॥

घत्ता

अग्गएँ इन्दइ पच्छएँ रयणीयर-साहणु ।
वीया-यन्दहों अणुलग्गु णाइँ तारायणु ॥१०॥

[५]

पुच्छिउ णियय-सारही 'अहों महारही दिढइँ जाइँ जाइं ।
कहि केत्तियइँ अत्थइं रणहों सत्थइं रहँ चडावियाइं' ॥१॥
तो एत्थन्तरँ पभणइ सारहि । 'अत्थइँ अत्थि देव छुडु पहरहि ॥२॥
चक्कइँ पञ्च सत्त वर-चावइँ । दस असिवरइँ अणिट्ठिय-गावइँ ॥३॥
वारह झस पण्णारह मोग्गर । सोलह लउडि-दण्ड रणँ दुद्धर ॥४॥
वीस परसु चउवीस तिसूलइँ । कोन्तइँ तीस सत्तु-पडिकूलइँ ॥५॥
घण पणतीस चाल वसुणन्दा । वावन्नास तिक्ख अद्धेन्दा ॥६॥
सेल्लइँ सट्ठि खुरुप्पइँ सत्तरि । अण्णु वि कणय चडिय चउहत्तरि ॥७॥
असी तिसत्तिउ णवइ मुसुण्ढिउ । जाउ दिवेँ दिवेँ रण-रस-यड्ढिऊ ॥८॥
सव णारायहुँ जं परिमाणमि । अण्णहँ पुणु परिमाणु ण जाणमि ॥९॥

घत्ता

वारह णियलइँ सोलह विज्जउ रहँ चडियउ ।
जेहिँ धरिज्जइ समरङ्गणँ इन्दु वि भिडियउ' ॥१०॥

[६]

तं णिसुणेवि रावणी जेत्थु पावणी तेत्थु रहँ पयट्टो ।
णं मज्जाय-मेल्लणो पुहइ-रेल्लणो सायरो विसट्टो ॥१॥

थीं। कोई भारसे मस्तक झुकाये हुए थे, कोई हींसते हुए घोड़ोंपर और कोई मद झरते हुए उन्मत्त हाथियोंपर, कोई रथ और शिविका यानपर, और कोई प्रवर विमानोंपर आरूढ़ हुए। कोई अपनी पत्नियोंसे मिल रहे थे, कोई रणमें जानेसे रोक लिया गया। किसीने अपनी पत्नीको यह कहकर डाँट दिया, "केवल एक स्वामी के कार्यकी इच्छा करो।" आगे इन्द्रजीत था और पीछे निशाचर की सेना। मानो दोजके चन्द्रके पीछे तारागण लगे हों ॥१-१०॥

[५] उसने सारथीसे कहा, "अरे महारथी दृढ़ हो गये? कहो कितने अस्त्र हैं, रणके सब हथियार रथपर चढ़ा लिये हैं न? इसपर सारथीने उत्तर दिया "देव! शीघ्र प्रहार कीजिये, पाँच चक्र और सात उत्तम धनुष हैं। अनिर्दिष्ट गर्ववाली, दस सुन्दर तलवारें हैं। बारह झस और पन्द्रह मुद्गर हैं। रणमें दुर्धर सोलह गदा है। बीस गदा और चौबीस त्रिशूल हैं, शत्रु-विरोधी तीस भाले हैं। पैंतीस घन फारुक, बावन तीखे अर्धेन्दु, साठ सेलें, सत्तर खुरुपा और चौदह कणप चढ़े हुए हैं। अस्सी त्रिशक्ति, नब्बे भुसुंढि सौ-सौ बाणोंके परिमाणको जानता हूँ। और किसीका परिमाण मैं नहीं जानता। बारह निगड और सोलह विद्याएँ भी रथमें हैं, ये वे ही विद्याएँ थीं जो युद्धमें इन्द्रसे जा भिड़ी थीं ॥१-१०॥

[६] यह सुनकर इन्द्रजीतने उस ओर रथ बढ़वाया जहाँ हनुमान था। (वह रथ ऐसा लग रहा था) मानो धरतीको

परिवेढ्डिउ माख्इ दुज्जऍहिँ । केवलु व अवहि-मणपज्जऍहिँ ॥२॥
जम्बू-दीवु व रयणायरॅहिँ । पञ्चाणणो व्व कुञ्जर-वरॅहिँ ॥३॥
लोयन्तउ व्व ति-पहञ्जणेँहिँ । दिवसाहिउ व्व णहेँ णव-घणेँहिँ ॥४॥
एक्कल्लउ सुहडु अणन्तु वलु । पप्फुल्लु तो वि तहों मुह-कमलु ॥५॥
परिसक्कइ थक्कइ उल्ललइ । हक्कारइ पहरइ दणु दलइ ॥६॥
आरोक्कइ ढुक्कइ उत्थरइ । पवियम्भइ रुम्भइ वित्थरइ ॥७॥
ण वि छिज्जइ भिज्जइ पहरणेँहिँ । जिह जिणु संसारहों कारणेँहिँ ॥८॥
हणुवहों पासेँहिँ परिभमइ वलु । णं मन्दर-कोडिहिँ उवहि-जलु ॥९॥

घत्ता

धरेँवि ण सक्कइ वलु सयलु वि उक्खय-पहरणु ।
मेरुहेँ पासेँहिँ परिभमइ णाइँ तारायणु ॥१०॥

[७]

धाइउ पवण-णन्दणो दणु विमद्दणो वलहों पुलइयङ्गो ।
हउ रहु रहवरेण गउ गयवरेण तुरऍण व तुरङ्गो ॥१॥
सुहडें सुहडु कवन्धु कवन्धें । छत्तें छत्तु चिन्धु हउ चिन्धें ॥२॥
वाणें वाणु चाउ वर-चावें । खग्गें खग्गु अणिट्ठिय-गावें ॥३॥
चक्कें चक्कु तिसूलु तिसूलें । मुग्गरु मुग्गरेण हुलि हूलें ॥४॥
कणऍं कणउ मुसलु वर-मुसलें । कोन्तें कोन्तु रणङ्गणें कुसलें ॥५॥
सेल्लें सेल्लु खुरुप्पु खुरुप्पें । फलिहें फलिहु गय वि गय-रुप्पें ॥६॥
जन्तें जन्तु एन्तु पडिखलियउ । वलु उज्जाणु जेम दरमलियउ ॥७॥
णासइ सयलोणामिय-मत्थउ । णिग्गइन्दु णित्तुरउ णिरत्थउ ॥८॥
विवरामुहु ओहुल्लिय-वयणउ । भग्ग-मडप्फरु मउलिय-णयणउ ॥९॥

ठेलता हुआ मर्यादासे हीन समुद्र हो। दुर्जेय उनसे हनुमान उसी प्रकार घिर गया जिस प्रकार केवली अवधि और मनःपर्यय ज्ञानसे, जम्बूद्वीप समुद्रोंसे, सिंह गजोंसे, लोकांत तीन प्रकारके पवनोंसे, दिनकर नये जलधरोंसे घिरे रहते हैं। यद्यपि वह सुभट अकेला था, और शत्रुसेना अनंत थी, फिर भी उसका मुखकमल खिला हुआ था। वह कभी चलता, ठहरता, छलांग मारता, हुँकारता, प्रहार करता, कुचलता, जम्हाई लेता, रुद्ध होता, फैलता, दिखाई दे रहा था। प्रहारोंसे वह वैसे ही छिन्न-भिन्न नहीं हो रहा था जैसे सांसारिक कारणोंसे जिन छिन्न-भिन्न नहीं होते। हनुमानके चारों ओर सेना ऐसी घूम रही थी मानो मंदराचलके आस-पास समुद्रका जल हो। शस्त्र उठाये हुए भी वह सैन्यसमूह हनुमानको पकड़नेमें असमर्थ था। मानो मेरुके चारों ओर तारा गण घूम रहे हों ॥१-१०॥

[७] तब राक्षससंहारक पवनपुत्र पुलकित होकर, सेनापर झपटा। रथवरसे रथको उसने आहत कर दिया, गजवरसे गजको, अश्वसे अश्वको, सुभटसे सुभटको, कबंधसे कबंधको, छत्रसे छत्रको, चिह्नसे चिह्नको, बाणसे बाणको, वरचापसे वरचापको, अनिर्दिष्ट गर्ववाली ? तलवारसे तलवारको, चक्रसे चक्र को, त्रिशूलसे त्रिशूलको, मुद्गरसे मुद्गरको, हुलिसे हुलिको, कनकसे कनकको, मुसलसे मुसलको, रणके आंगनमें कुशल कोंत से कोंतको, सेलसे सेलको, खुरुपासे खुरुपाको, फलिहसे फलिहको और गदासे गदाको और यंत्रसे आते हुए यंत्रको स्खलित कर दिया। सेनाको उसने उद्यानकी तरह ध्वस्त कर दिया। रथ और अश्वोंसे हीन, वे माथा झुकाये हुए थे। उनका मुख

घत्ता

वियलिय-पहरणु णासन्तु णिएँवि णिय - साहणु ।
रहवरु वाहेँवि थिउ अग्गएँ तोयदवाहणु ॥१०॥

[८]

रावण-राम-किङ्करा रणेँ भयङ्करा भिडिय विप्फुरन्ता ।
विहसुग्गीव-राहवा विजय-लाहवा णाइँ 'हणु' भणन्ता ॥१॥
वे वि पयण्ड वे वि विज्जाहर । वेण्णि वि अक्खय-तोण धणुद्धर ॥२॥
वेण्णि वि वियड-वच्छ पुलइय-भुअ । वेण्णि वि अञ्जण-मन्दोयरि-सुअ ॥३॥
वेण्णि वि पवण-दसाणण-णन्दण । वेण्णि वि दुद्दम - दाणव- मद्दण ॥४॥
वेण्णि वि पर - वल-पहरण-चड्डिय । वेण्णि वि जय-सिरि-वहु-अवरुण्डिय॥५॥
वेण्णि वि राहव-रावण- पक्खिय । वेण्णि वि सुरवहु-णयण-कडक्खिय॥६॥
वेण्णि वि समर-सएँहिँ जसवन्ता । वेण्णि वि पहु-सम्माणु सरन्ता ॥७॥
वेण्णि वि परम-जिणिन्दहोँ भत्ता । वेण्णि वि धीर वीर भय - चत्ता ॥८॥
वेण्णि वि अतुल मल्ल रणेँ दुद्धर । वेण्णि वि रत्त-णेत्त फुरियाहर ॥९॥

घत्ता

विहि मि महाहवु जो असुर-सुरेन्देँहिँ दीसइ ।
रावण - रामहँ सो तेहउ दुक्करु होसइ ॥१०॥

[९]

अमरिस-कुद्धएण जस-लुद्धएण जयसिरि-पसाहणेणं ।
पेसिय विज्ज हणुवहो मेहवाहणी मेहवाहणेणं ॥१॥
'गम्पिणु णिणय-परक्कमु दरिसहि । जिह सक्कइ तिह उप्परि वरिसहि ॥२॥
तं णिसुणेप्पिणु विज्ज वियम्भिय । माया - पाउस - लीलारम्भिय ॥३॥
कहिं जि मेह-दुग्गयं । सुराउहं समुग्गयं ॥४॥
कहिं जि विज्जु-गज्जियं । घणेहिँ कं विसज्जियं ॥५॥

पीला, और नेत्र मलिन थे। समूची सेना नष्ट हो रही थी। अपनी सेनाको इस प्रकार प्रहारोंसे खंडित होते देखकर, मेघवाहन सबसे आगे बढ़ा। वह बढ़िया रथपर आरूढ़ था ॥१-१०॥

[८] तब युद्धमें भीषण, तमतमाते हुए, राम और रावणके वे दोनों अनुचर भिड़ गये। मानो विजयके लिए शीघ्रता करनेवाले मायासुग्रीव और राम ही 'मारो-मारो' कह रहे हों। दोनों ही प्रचंड थे, दोनों ही विद्याधर थे, दोनों ही अक्षय तूणीर और धनुष धारण किये हुए थे। दोनोंके वक्षःस्थल विशाल थे और भुजाएँ पुलकित थीं। दोनों ही अंजना और मंदोदरीके पुत्र थे। दोनों ही पवनंजय और रावणके लड़के थे। दोनों ही दुर्दम दानवों का मर्दन करनेवाले थे। दोनों ही शत्रुसेनापर विजयलक्ष्मी रूपी वधूको बलात् लानेवाले थे। दोनों ही क्रमशः राम और रावणके पक्षके थे। दोनोंको ही सुर-बालाएँ देख रही थीं। दोनों ही सैकड़ों युद्धोंमें यशस्वी थे। दोनों ही प्रभुके सम्मानको निबाहनेवाले थे। दोनों ही परम जिनेन्द्रके भक्त थे। दोनों ही धीर-वीर और भयसे रहित थे। दोनों ही अतुल मल्ल, रणमें दुर्धर थे। दोनों ही आरक्त नेत्र और स्फुरिताधर थे। देव और असुरोंमें जो महायुद्ध देखा जाता है, राम और रावणमें वह वैसा ही दुष्कर युद्ध होगा ॥१-१०॥

[९] अमर्षसे क्रुद्ध, यशके लोभी जयश्रीका प्रसाधन करनेवाले मेघवाहनने हनुमानके ऊपर मेघवाहनी विद्या छोड़ी और कहा—"जाकर अपना पराक्रम बताओ, जैसे संभव हो वैसे उसके ऊपर बरसो।" यह सुनकर विद्या बढ़ने लगी, और मायावी मेघों की लीला उसने प्रारंभ कर दी। कहीं मेघोंसे दुर्गमता थी, कहीं इन्द्रधनुष निकल आया, कहीं बिजली तड़क रही थी, कहीं मेघों

कहिँ जेँ णीरजं जलं । वहावियं महीयलं ॥६॥
कहिँ जेँ मोर-केइयं । वलाय - पन्ति - तेइयं ॥७॥
इय णव-पाउस-लील पदरिसिय । थिर-थोरहिँ जल-धारहिँ वरिसिय ॥८॥
वाय-सुएण वि वायवु पेसिउ । तेण घणागमु पयलु विणासिउ ॥९॥

घत्ता

स-धउ स-सारहि स-तुरङ्गमु मोडिउ सन्दणु ।
पर एक्कल्लउ गउ णासेँवि दहमुह-णन्दणु ॥१०॥

[१०]

भग्गएँ मेहवाहणे णियय-साहणे इन्दई विरुद्धो ।
मत्त-गइन्द-गन्धेणं मय-समिद्धेणं केसरि व्व कुद्धो ॥१॥
मारुइ थाहि थाहि कहिँ गम्मइ । सिरइँ समोड्डें वि रण-पडु रम्मइ ॥२॥
रहवर-तुरय-सारि - संघडणेँहिँ । मत्त - महग्गय - पासा-वडणेँहिँ ॥३॥
कर-सिर-छेज्जहिँ पहरण-दाएँहिँ । मरण-गमेँ हिँ खग-चर-संघाएँहिँ ॥४॥
सुरवहु-णट्ट-सएँहिँ - परिचड्डिउ । अच्छइ एउ जुज्झ-पडु मण्डिउ ॥५॥
जो त्रिहिँ जिणइ तासु लिह दिज्जइ । जाणइ - धरणउ मेल्लाविज्जइ ॥६॥
जिम रामणहोँ होउ जिम रामहोँ । हउँ पुणु कुद्धु लग्गउ णिय रामहोँ ॥७॥
जिह उज्जाणु भग्गु हउ अक्खउ । पहरु पहरु तिह आउ कुल-क्खउ' ॥८॥
एम भणेवि समीरण-पुत्तहोँ । इन्दइ भिडिउ समरेँ हणुवन्तहोँ ॥९॥

घत्ता

रावणि-पावणि सङ्गामेँ परोप्परु भिडिया ।
उत्तर-दाहिण णं दिस-गइन्द अब्भिडिया ॥१०॥

[११]

पढम-भिडन्तएण असहन्तएण दहवयण-णन्दणेणं ।
सर चेयारि मुक्क अट्ठहि विलुक्क उज्जाण-मद्दणेणं ॥१॥
जं वाणेहिँ वाण विद्धंसिय । भामेँवि भाम गयासणि पेसिय ॥२॥
धाइय धुद्धुवन्ति हणुवन्तहोँ । करयलेँ लग्ग सु-कन्त व कन्तहोँ ॥३॥

से पानी गिर रहा था। कहीं पानीसे धूलरहित भूतल बहा जा रहा था। कहींपर मोर शब्द कर रहे थे और कहीं पर बगुलोंका वेग दिखाई दे रहा था। इस तरह उसने नई पावस लीलाका प्रदर्शन किया, स्थिर और स्थूल जलधाराएँ बरसीं। तब पवन-सुतने भी, वायव्य तीर भेजा। उससे समस्त घनागम नष्ट हो गया। ध्वज सारथी और तुरंगसहित रथ मुड़ गया, परंतु एक अकेला रावणपुत्र ही मारा गया ॥१–१०॥

[१०] मेघवाहन और अपनी सेनाके इस प्रकार नष्ट होने पर इन्द्रजीत एकदम विरुद्ध हो उठा मानो मत्त गजराजकी मद-भरी गंधसे सिंह ही क्रुद्ध हो उठा हो। उसने कहा, "हनुमान, ठहरो-ठहरो, कहाँ जाते हो। अपना सिर सजाकर रथपट सजाओ। बड़े-बड़े रथ और घोड़े ही उसमें पासे होंगे। महागजोंका चलना ही पासोंका चलना होगा। हाथ और सिरका छेदन, प्रहार, मरण, गमन और पत्ति संघात ही उसमें कूटद्यूत होंगे। यह युद्धपट इस प्रकार मंडित है। भाग्यसे जो इसमें जीते, सीता और भूमि उसके लिए ही प्रदान की जाय। जिस तरह तुमने उद्यान उजाड़ा, कुमार अक्षयको मारा, वैसे ही मुझपर प्रहार करो, प्रहार करो, मैं तुम्हारा कुलक्षय आ गया हूँ"। यह कहकर इन्द्रजीत युद्धमें हनुमानसे भिड़ गया। पवनपुत्र और रावणपुत्र इस तरह आपसमें भिड़ गये मानो उत्तर और दक्षिणके दिग्गज ही लड़ पड़े हों ॥१–१०॥

[११] असहनशील रावणपुत्रने पहली ही भिड़न्तमें चार बाण छोड़े, परंतु उद्यानको उजाड़नेवाले हनुमानने आठ बाणोंसे उन्हें लुप्त कर दिया। जब बाणोंसे बाण विध्वस्त हो गये तो उसने भीषण गदा घुमाकर फेंकी। घू-घू करती वह, दौड़कर हनुमानके

पुणु वि पडिल्लउ मेल्लिउ मोग्गरु । किउ हणुवेण सो वि सय-सक्करु ॥४॥
पुणु वि णिसिन्दें चक्कु विसज्जिउ । जं सङ्गाम-सऍहिँ अ-पराजिउ ॥५॥
कह वि ण लग्गु पवड्ढिय-हरिसहोँ । दुज्जण-वयणु जेम सप्पुरिसहोँ ॥६॥
जं जं इन्दइ पहरणु घत्तइ । तं तं णं सयवत्तु पवत्तइ ॥७॥
दहमुह - सुऍण णिरत्थीहूऍं । हसिउ स-विब्भमु रामहोँ दूऍं ॥८॥
'चक्कउ मइँ समाणु ओलग्गउ । पहरहि णं उववासेँहिँ भग्गउ' ॥९॥

घत्ता

हणुवहोँ वयणेँहिँ सो इन्दइ झत्ति पलित्तउ ।
भय-भीसावणु सिहि णाइँ सिणिद्धें सित्तउ ॥१०॥

[१२]

मरु मरु काइँ एण रणेँ णिप्फलेण सयवार-गज्जिएणं ।
किं लङ्गूल-दीहेण पवर-सीहेण णह - विवज्जिएणं ॥१॥
णिव्विसेण किं पवर-भुअङ्गे । किमदन्तेण मत्त - मायङ्गे ॥२॥
किं जल-विरहिएण णहेँ मेहें । किं णीसब्भावेण सणेहें ॥३॥
किं धुत्त-यण - मज्झेँ दुवियड्ढें । कवणु गहणु किर कु-पुरिस-सण्ढें ॥४॥
जइ पहरमि तो घाऍं मारमि । किर तुहुँ दूउ तेण ण वियारमि' ॥५॥
एव भणेवि भुवणेँ जसवन्तहोँ । मेल्लिउ णाग-पासु हणुवन्तहोँ ॥६॥
तेहऍं अवसरेँ तेण वि चिन्तउ । 'अच्छमि रिउ संघारमि केत्तिउ ॥७॥
तो वरि वन्धावमि अप्पाणउ । जें वोल्लमि रावणेण समाणउ ॥८॥
एम भणेवि पडिच्छिउ एन्तउ । णाइँ सहोयरु साइउ देन्तउ ॥९॥

घत्ता

रण-रसियड्ढेण कउसल्लु करेप्पिणु भुत्तें ।
सइँ भुव-पञ्जरु वेढाविउ पवणहोँ पुत्तें ॥१०॥

●

करतलमें ऐसे लगी मानो सुकांता अपने कांतसे ही जा लगी हो। तब उसने मुद्गर मारा, हनुमानने उसके भी सौ टुकड़े कर दिये। तब निशाचरने वह चक्र छोड़ा, जो सैकड़ों युद्धोंमें अजेय था। अत्यन्त हर्षित हनुमानको वह कहीं भी नहीं लगा वैसे ही जैसे दुर्जनके वचन सज्जनको नहीं लगते। इन्द्रजीत जो-जो अस्त्र छोड़ता, वह सौ-सौ टुकड़ोंमें हो जाता। रावणपुत्रके अंतमें निरस्त्र होनेपर रामके दूत हनुमानने विलासपूर्वक हँसते हुए कहा—"अच्छा हुआ जो तुम मुझसे लड़े, प्रहार करो, मानो उपवासोंसे भग्न हो गये हो?" उसके वचनोंसे इन्द्रजीत शीघ्र भड़क उठा मानो आगमें घी पड़ गया हो ॥१-१०॥

[१२] उसने कहा, "मर-मर, युद्धमें इस तरह व्यर्थ बार-बार गरजनेसे क्या, नखरहित, लम्बी पूँछके प्रवर सिंहसे क्या। बिना विषके विशाल सर्पसे क्या, बिना दाँतके हाथीसे क्या, बिना सद्भावके स्नेहसे क्या, आकाशमें निर्जल मेघसे क्या, धूर्तजनोंके बीच दुर्विदग्धसे क्या, कुपुरुषसमूहके द्वारा किसी बातके ग्रहणसे क्या, यदि प्रहार करूँ तो एक ही आघातमें मार डालूँ, परन्तु तुम दूत हो इसलिए विदीर्ण नहीं करता।" यह कहकर उसने भुवनमें यशस्वी हनुमानके ऊपर नागपाश फेंका। इसी अवसरपर हनुमानने अपने मनमें सोचा कि मैं कितना और शत्रुसंहार करूँ। तो उचित यही है कि मैं अपने आपको बँधवा दूँ। जिससे रावणके साथ बातचीत कर सकूँ।" यह विचारकर उसने, आते हुए उस नागपाशका सगे भाईकी तरह आलिङ्गन कर लिया। रणरससे भरपूर कुशल हनुमानने कौशलपूर्वक अपने आपको घिरवा लिया ॥१-१०॥

●

[५४. चउवण्णासमो संधि]

हणुवन्त - कुमारु पवर - भुअङ्गोमालियउ ।
दहवयणहों पासु मलयगिरि व संचालियउ ॥

[१]

णव-णीलुप्पल-णयण-जुय सोएं णिरु संतत्त ।
'पवण-पुत्त पइँ विरहियउ कवणु पराणइ वत्त' ॥१॥

सो अञ्जण - पवणञ्जयहुँ सुउ । अइरावय - कर - सारिच्छ - भुउ ॥२॥
संचालिउ लङ्कहें सम्मुहउ । णं णियल - णिवद्धउ मत्त - गउ ॥३॥
णिविसद्धें पुरें पइसारियउ । णिय - णासु णाइँ हक्कारियउ ॥४॥
एत्थन्तरें पीण - पओहरिहिँ । वलगेहिणि - लङ्कासुन्दरिहिँ ॥५॥
इर-एरउ जाउ पवेसियउ । हणुवन्तहों वत्त - गवेसियउ ॥६॥
आयाउ ताउ ससि - वयणियउ । कुवलय- दल- दीहर- णयणियउ ॥७॥
जाणाविउ तुरियउ इर- इरें हिँ । पगलन्त- अंसु - गग्गर - गिरें हिँ ॥८॥
'सुणु माएँ काइँ दूएण किउ । जं णिसियर - णाहहों पाण-पिउ ॥९॥
तं णन्दण - वणु संचूरियउ । किङ्कर - साहणु मुसुमूरियउ ॥१०॥
अक्खयहों जीउ विद्धंसियउ । घणवाहण - वलु संतासियउ ॥११॥
इन्दइण णवर अवमाणु किउ । वन्धेंवि दहवयणहों पासु णिउ' ॥१२

घत्ता

तं वयणु सुणेवि णीलुप्पलइँ व डोल्लियइँ ।
सीयहें णयणाइँ विण्णि मि अँसु-जलोल्लियइँ ॥१३॥

[२]

जं जसु दिण्णउ अण्ण-भवें जीवहों कहि मि थियासु ।
तासु कि णासेंवि सक्कियइ कम्महों पुव्व - कियासु ॥१॥

चौवनवीं संधि

कुमार हनुमान, मलयपर्वतकी तरह प्रवर भुजंगोसे मालित (नाग-पाशसे बँधा हुआ और नागोंसे लिपटा हुआ) रावणके पास चला।

[१] यह देखकर नवनील कमलकी तरह नेत्रवाली शोकसे संतप्त सीतादेवी अपने मनमें सोचने लगीं, कि "पवनपुत्र, तुम्हें छोड़कर अब कौन मेरी कुशलवार्ता ले जा सकता है।" उधर वह ऐरावतकी तरह सूँड़वाला हनुमान लंकाके सम्मुख ऐसे ले जाया गया मानो साँकलोंसे बँधा हुआ मत्तगज ही हो। आधे ही पलमें उसे लंकानगरीमें प्रविष्ट कराया गया। इस तरह मानो उन्होंने अपने विनाशको ही ललकारा हो। इसी बीचमें पीन-पयोधरा सीतादेवी और लंकासुन्दरीने जो इरा और अचिराको हनुमानकी खबर लेनेके लिए भेजा था, वे दोनों लौटकर आ गईं। शीघ्र ही उन दोनोंने आकर झरते हुए आँसुओं और गद्गद स्वरमें चंद्रमुखी और कमलनयनी उन लोगोंको तुरंत कहा, "माँ, सुनो। उस दूतने क्या-क्या किया। लंकानरेशका जो प्राणप्रिय उद्यान था वह उसने उजाड़ दिया है, और समस्त अनुचरसेनाको मसल दिया है। कुमार अक्षयके प्राण हरण कर लिये और घन-वाहनकी सेनाको संत्रस्त कर दिया है। केवल इन्द्रजीत ही उसे अपमानित कर सका है। वह उसे बाँधकर रावणके पास ले गया है।" यह सुनकर सीतादेवीके नेत्र नीलकमलकी भाँति हिल उठे और उनसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित होने लगी ॥१-१३॥

[२] वह अपने मनमें विचार करने लगीं कि जीव चाहे कहीं हो, उसने पूर्वभवमें जो किया है, उसके पूर्वभवमें किये गये

पुणु रुवइ स-दुक्खउ जणय-सुअ । मालइ - माला - सारिच्छ- भुअ ॥२॥
'खल खुद्द पिसुण हय दड्ढ विहि । पूरन्तु मणोरह होउ दिहि ॥३॥
दसरह - कुडुम्बु जं छत्तरिउ । वलि जिह दस-दिसिहिँ पविक्खिरिउ ॥४॥
अण्णहिँ हउँ अण्णहिँ दासरहि । अण्णहिँ लक्खणु अन्तरें उवहि ॥५॥
एहएँ वि कालें वसणावडिएँ । वहु- इट्ट- विओय- सोय- भरिएँ ॥६॥
जो किर णिव्वूढ - महाहवहों । सन्देसउ णेसइ राहवहों ॥७॥
पइँ समरें सो वि वन्धावियउ । वलहद्दहों पासु ण पावियउ ॥८॥
अहवइ किं तुहु मि करहि छलइँ । एयइँ दुक्किय - कम्महों फलइँ' ॥९॥

घत्ता

अकुसल - वयणेहिँ सीय वि लङ्कासुन्दरि वि ।
णं रवि-किरणेहिँ तप्पइ जउण वि सुर-सरि वि ॥१०॥

[३]

मारुइ-णन्दण भणमि पइँ कुल-वल-जाइ-विहीण ।
तावस जे फल - भोयणा ते पइँ सेविय दीण' ॥१॥

एत्तहेँ वि सुहड - पञ्चाणणहों । णिउ मारुइ पासु दसाणणहों ॥२॥
वइसारें वि कञ्जालाव किय । 'हे सुन्दर काइँ दु-बुद्धि थिय ॥३॥
चङ्गउ कुसलत्तणु सिक्खियउ । अह उत्तमु कुलु ण परिक्खियउ ॥४॥
सुर-डामरु रावणु मुएँ वि मइँ । परियरिउ वरायउ रामु पइँ ।
पञ्चाणणु मेल्लेंवि धरिउ गउ । जिणु मुएँवि पसंसिउ पर-समउ ॥६॥
जो जसु भायणु सो तं धरइ । कइ णालियरेण काइँ करइ ॥७॥
जो सयल-काल सुपहुत्तएँहिँ । मणि-कडय - मउड-कडिसुत्तएँहिँ ॥८॥
पुज्जिज्जहि सो एवहिँ धरिउ । लम्पिक्कु जेम जण - परियरिउ ॥९॥

घत्ता

मइँ मुएँ वि सु-सामि मारुइ कियइँ जाइँ छलइँ ।
इह-लोएँ जेँ ताइँ पत्तु कु-सामि-सेव-फलइँ ॥१०॥

कर्मका नाश कौन कर सकता है ? जनकसुता इस प्रकार फूट-फूटकर रोने लगीं। उनकी भुजाएँ मालती मालाकी तरह थीं। वह बोलीं, "हे खल क्षुद्र पिशुन कठोरविधि, तुम भाग्यवश अपना मनोरथ पूरा कर लो। दशरथ-कुटुम्बको तुमने तितर-बितर कर दिया है,। बलिकी तरह तुमने उसे दशों दिशाओंमें बिखेर दिया है। मैं कहीं हूँ, राम कहीं हैं। बीचमें (इतना बड़ा समुद्र) है। अपने इष्ट लोगोंके वियोग और शोधसे पूर्ण आपत्तिकालमें जो महायुद्धोंमें समर्थ रामके पास मेरा संदेश ले जाता, तुमने युद्धमें उसे भी बँधवा दिया। अथवा क्या तुम भी छल कर सकते हो, नहीं कदापि नहीं, यह मेरे पापकर्मोंका फल है।

[३] इधर, वे लोग (इन्द्रजीत आदि) हनुमानको सुभटश्रेष्ठ रावणके पास ले गये। उसने बैठाकर उससे वार्तालाप किया। और कहा, "हे हनुमान, मैं तुमसे कहता हूँ कि जो कुल, बल, जातिसे विहीन है, जो फलभोजी दीन-हीन तापस है, तुमने उसकी सेवा की। हे सुंदर, आखिर तुम्हें यह दुर्बुद्धि क्यों हुई। तुमने अच्छा दूतपन सीखा यह। अथवा अरे तुमने कुल तककी परीक्षा नहीं की। देवभयंकर मुझ रावणको छोड़कर तुमने उस अभागे रामकी शरण ग्रहण की। (सचमुच) तुमने सिंह छोड़कर गधेको पकड़ा। जिनवरको छोड़कर तुमने पर-सिद्धान्तकी प्रशंसा की। फिर जो जिसके पात्र होता है, उसमें वही वस्तु रखी जाती है। बताओ, नारियल (इसकी खोपड़ी)का क्या होता है। जो (तुम) सदैव प्रभुताके गुणों चूड़ामणि, कटक, मुकुट और कटिसूत्रोंसे सम्मानित किये जाते थे वही तुम घेरकर लोगोंके द्वारा चोरकी भाँति पकड़ लिये गये। मुझ जैसे उत्तम स्वामीको छोड़कर हे हनुमान, तुमने जो कुछ किया है। तुमने कुस्वामीकी सेवाके उस फलको यहीं प्राप्त कर लिया है ॥१-१०॥

[४]

रावण सुहु भुञ्जन्ताहँ लङ्काउरि जिह णारि ।
आणिय सीय ण एह पइँ णिय-कुल-वंसहों मारि' ॥१॥

अण्णु मि जो दुग्गइ-गामिएँहिँ । कुकलत्त - कुमन्ति-कुसामिएँहिँ ॥२॥
कुपरियण-कुमन्ति - कुसेवएँहिँ । कुतित्थ - कुधम्म - कुदेवएँहिँ ॥३॥
आएहिँ असेसहिँ भावियउ । सो कवणु ण आवइ पावियउ' ॥४॥
तं वयणु सुणेवि कइद्धएँण । णिब्भच्छिउ वेहाविद्धएँण ॥५॥
'किर काइँ दसाणण हसहि मइँ । अप्पणु सलग्घु किउ काइँ पइँ ॥६॥
परदारु होइ चिलिसावणउ । णाणाविह - भय - दरिसावणउ ॥७॥
दुक्खहुँ पोट्टलु कुल-लञ्छणउ । इहलोय - परत्त - विणासणउ ॥८॥
दुज्जण - धिक्कार - पडिच्छणउ । घरु अयसहों जम्महों लञ्छणउ ॥९॥

घत्ता

संसारहों वारु दिट्ठु कवाडु सासय-घरहों ।
लङ्कहेँ वि विणासु अकुसलु अण्ण-भवन्तरहों ॥१०॥

[५]

जोव्वणु जीविउ धणिय घरु सम्पय-रिद्धि णरिन्द ।
भावेंवि एह अणिच्च तुहुँ पट्ठवि सीय णिसिन्द ॥१॥

पर-धणु पर-दारु मज्ज-वसणु । आयरइ को वि जो मूढ-मणु ॥२॥
तुहुँ पइँ सयलागम-कल-कुसलु । मुणि-सुव्वय - चलण-कमल-भसलु ॥३
जाणन्तु ण अप्पहि जणय-सुअ । अद्धुव-अणुवेक्ख काइँ ण सुअ ॥४॥
को कासु सव्वु माया-तिमिरु । जल-विन्दु जेम जीविउ अ-थिरु ॥५॥
सम्पत्ति समुद्द - तरङ्ग - णिह । सिय चवल विज्जुल-लेह जिह ॥६॥
जोव्वणु गिरि-णइ-पवाद-सरिसु । पेम्मु वि सुविणय-दंसण-सरिसु ॥७॥
धणु सुर-धणु-रिद्धिहेँ अणुहरइ । खणेँ होइ खणद्धेँ ओसरइ ॥८॥
झिज्जइ सरीरु आउसु गलइ । जिह गउ जल-णिवहु ण संभवइ ॥९॥

[४] हनुमानने तब उत्तरमें कहा,"तुम लंका नगरीका नारीकी तरह सुन्दर भोग करो। किन्तु यह तुम सीता देवी नहीं, किन्तु साक्षात् अपने कुलकी मारी (विनाश) लाये हो।" यह सुनकर रावणने कहा,"और जो दुर्गतिगामी, कुकलत्र, कुमंत्री, कुस्वामी और कुपरिजन, कुमंत्री, कुसेवक, कुतीर्थ कुधर्म, और कुदेव इन सबकी भावना करनेवाला होता है, कहां उसे कौनसी आपत्ति नहीं होती।" तब क्रुद्ध हनुमानने उसकी निंदा करते हुए कहा, "परस्त्री घृणाजनक और नाना प्रकारके भयों को दिखाने वाली होती है। वह दुखकी पोटली और कुलकी कलंक है। इहलोक और परलोकका नाश करने वाली है। वह दुर्जनोंके धिक्कारसे भरी हुई होती है, वह अयशका घर, जीवनकी लांछन है। वह संसारका द्वार और मोक्षका किवाड़ है। वह लंकाका विनाश और जन्मान्तरका अकल्याण है ॥१-१०॥

[५] हे राजन्, यौवन, जीवन, धन, घर, सम्पदा और ऋद्धि इन सबको तुम अनित्य समझ कर सीताको वापस भेज दो। कोई मूर्ख जन भी पर धन, परदारा और मद्य व्यसनका आदर नहीं करता। तुम तो फिर सकल आगम और कलाओंमें निपुण हो। मुनिसुव्रत भगवान्के चरणकमलोंके भ्रमर हो। जानते हुए भी सीताका अर्पण नहीं कर रहे हो। क्या तुमने अनित्य उत्प्रेक्षा को नहीं सुना। कौन किसका है, यह सब मायाका अंधकार है। जीवन जलकी बूँदकी तरह अस्थिर है। सम्पत्ति समुद्रकी लहरकी तरह है। लक्ष्मी बिजलीकी रेखाकी तरह चंचला है। यौवन पहाड़ी नदीके प्रवाहके समान है। प्रेम भी स्वप्नदर्शनकी तरह है। धन इंद्रधनुषके समान है। वह क्षणमें होता है और क्षणमें विलीन हो जाता है। शरीर छीज रहा है और आयु गल रही है।

घत्ता

घरु परियणु रज्जु सम्पय जीविउ सिय पवर ।
एयइँ अ-थिराइँ एक्कु मुएप्पिणु धम्मु पर ॥१०॥

[६]

'रावण अ-सरणु सम्भरॆवि पट्ठवि रामहों सीय ।
णं तो सम्पइ सयल सुय पइँ तम्बारहों णीय' ॥१॥

अहों केक्कसि-रयणासवहों सुय । असरण-अणुवेक्ख काइँ ण सुय ॥२॥
जावॅहिँ जीवहों ढुक्कइ मरणु । तावॅहिँ जगॆँ णाहिँ को वि सरणु ॥३॥
रक्खिज्जइ जइ वि भयङ्करॆंहिँ । असि-लउडि-विहत्थॆँहिँ किङ्करॆंहिँ ॥४॥
मायङ्ग - तुरङ्गम - सन्दणॆँहिँ । कमलासण - रुद्द - जणद्दणॆँहिँ ॥५॥
जम-वरुण - कुबेर - पुरन्दरॆंहिँ । गण-जक्ख - महोरग - किण्णरॆंहिँ ॥६॥
पइसरइ जइ वि पायालयलॆँ । गिरि-गुहिलॆँ हुआसणॆँ उवहिँ-जलॆँ ॥७॥
रणॆँ वणॆँ तिणॆँ णहयलॆँ सुर-भवणॆँ । रयणप्पहाइ - दुग्गइ - गमणॆँ ॥८॥
मञ्जूस-कूवॆ घर - पञ्जरऍ । कड्ढिज्जइ तो वि खणन्तरऍ ॥९॥

घत्ता

तहिँ असरण-कालॆँ जीवहों अण्ण ण का वि धर ।
पर रक्खइ एक्कु अहिंसा-लक्खणु धम्मु पर ॥१०॥

[७]

रावण गय-घड भड-णिवहु घरु परियणु सुहि रज्जु ।
एत्तिउ छड्डॆवि जासि तुहुँ पर सुट्ठु दुक्खु सहेज्जु ॥१॥

अहों रावण णव-कुवलय-दलक्ख । किं ण सुइय एक्कत्ताणुवेक्ख ॥२॥
जगॆँ जीवहों णत्थि सहाउ को वि । रइ वन्धइ मोह-वसेण तो वि ॥३॥
"इउ घरु इउ परियणु इउ कलत्तु"। णउ बुज्झहि जिह सयलेहिँ चत्तु ॥४॥
एक्केण कणेव्वउ विहुर - कालॆँ । एक्केण वसेव्वउ जल-वमालॆँ ॥५॥
एक्केण वसेव्वउ तहिँ णिगोऍ । एक्केण रुएव्वउ पिय-विओऍ ॥६॥

गत जल-समूहकी तरह वह तुम्हारा नहीं होता। घर, परिजन, राज्य, सम्पदा, जीवन और प्रवर लक्ष्मी ये सब अस्थिर हैं। केवल एक धर्मको छोड़कर ॥१-१०॥

[६] हे रावण, तुम अशरण उत्प्रेक्षाका चिंतन कर सीताको भेज दो। नहीं तो तुम्हारी संपदा और समस्त सुख नाशको प्राप्त हो जायँगे। अरे कैकशी और रत्नाश्रवके पुत्र, क्या तुमने अशरण अनुप्रेक्षा नहीं सुनी। जब जीवकी मृत्यु पास आ जाती है, तब उसे कोई शरण नहीं मिलती चाहे तलवार और गदा हाथमें लेकर बड़े-बड़े भीषण किंकर, गज, अश्व, रथ, ब्रह्म, विष्णु, महेश, यम, वरुण, कुबेर, पुरन्दर, गण, यक्ष, नागराज और किन्नर भी इसकी रक्षा करें। चाहे वह, पातालतल, गिरि-गुफा, आग, समुद्रजल, रण-वन, तृण, नभतल, सुरभवन, दुर्गतिगामी रत्नप्रभ नरक, मजूंषा, कुँआ या घररूपी पिंजड़ेमें प्रवेश करे, एक क्षणमें उसे निकाल लिया जाता है। अशरण कालमें जीवका और कोई नहीं होता है। केवल एक अहिंसामूलक धर्म (जिन) ही रक्षा करता है ॥१-१०॥

[७] रावण, गजघटा, भट समूह, घर-परिजन, पंडित और राज्य ये सब तुझे छोड़ देंगे। केवल एक तूँ ही सुख-दुख सहेगा। ओ नवनीलकमलनयन रावण, क्या तुमने एकत्व अनुत्प्रेक्षाको नहीं सुना। मोहके वशसे कोई कितनी भी रति करे, परन्तु इस संसारमें जीवका कोई भी सहायक नहीं है। यह घर, ये परिजन यह स्त्री, नहीं देखते, इनको सबने छोड़ दिया। विधुरकालमें अकेले क्रन्दन करोगे, ज्वालमालामें अकेले बसोगे। निगोदमें अकेले रहोगे, प्रिय वियोगमें अकेले ही रोओगे, कर्मसमूह और मोहके

एक्केण भवेव्वउ भव- समुद्दें । कम्मोह- मोह - जलयर - रउद्दें ॥७॥
एक्कहों जें दुक्खु एक्कहों जें सुक्खु । एक्कहों जें बन्धु एक्कहों जें मोक्खु ॥८॥
एक्कहों जें पाउ एक्कहों जें धम्मु । एक्कहों जें मरणु एक्कहों जें जम्मु ॥९॥

घत्ता

तहिँ तेहएँ विहुरें सयण-सयाइँ ण ढुक्कियइँ ।
पर वेण्णि सया इ जीवहों दुक्किय-सुक्कियइँ ॥१०॥

[८]

'रावण जुत्ताजुत्त तुहुँ चिन्तेंवि णियय - मणेण ।
अण्णु सरीरु वि अण्णु जिउ विहडइ एउ खणेण' ॥१॥
पुणु वि पढीवउ उववण - मद्दणु । कहइ हियत्तणेण मरु - णन्दणु ॥२॥
अण्णत्ताणुवेक्ख दहगीवहों । अण्णु सरीरु 'अण्णु गुणु जीवहों ॥३॥
अण्णहिँ तणउ धण्णु धणु जोव्वणु । अण्णहिँ तणउ सयणु घरु परियणु ॥४॥
अण्णहिँ तणउ कलत्तु लइज्जइ । अण्णहिँ तणउ तणउ उप्पज्जइ ॥५॥
कइ वि दिवस गय मेलावक्कें । पुणु विहडन्ति मरन्तें एक्कें ॥६॥
अण्णहिँ जीउ सरीरु वि अण्णहिँ । अण्णहिँ घरु घरिणि वि अण्णण्णहिँ ॥७॥
अण्णहिँ तुरय महग्गय रहवर । अण्णहिँ आण - पडिच्छा णरवर ॥८॥
एहएँ अण्ण - भवन्तर - वन्तरें । अत्थ - विडाविडँ होइ खणन्तरें ॥९॥

घत्ता

जणु कज्जवसेण मुह - रसियउ पिय - जम्पणउ ।
जिण-धम्मु मुएवि जीवहों को वि ण अप्पणउ ॥१०॥

[९]

चउ-गइ-सायरें दुह-पउरें जम्मण- मरण- रउद्दें ।
अप्पहि सिय म गाहु करि मं पडि णरय-समुद्दें ॥१॥
भो भुवण - भयङ्कर दुण्णिरिक्ख । सुणु चउगइ संसाराणुवेक्ख ॥२॥

जलचरोंसे भयंकर भवसागरमें अकेले ही भटकोगे। जीवको अकेले ही दुख, अकेले ही सुख, भोगना पड़ता है, अकेले ही उसे बन्ध और मोक्ष होता है। अकेले ही उसको पाप धर्मका बन्ध होता है। अकेले उसीका ही मरण और जन्म होता है। उस संकटके समयमें कोई भी स्वजन नहीं आते, केवल दो ही पहुँचते हैं, वे हैं जीवके सुकृत और दुष्कृत ॥१-१०॥

[८] हे रावण, तुम अपने मनमें उचित और अनुचितका विचार करो, यह शरीर अलग है और जीव अलग। यह एक क्षणमें नष्ट हो जायगा। बार-बार उपवनको उजाड़नेवाले हनुमानने हृदयसे रावणको अन्यत्व-अनुप्रेक्षा बताते हुए कहा—"शरीर अन्य है और जीवका स्वभाव अन्य है, धन-धान्य, यौवन दूसरेके हैं। स्वजन, घर, परिजन भी दूसरेके हैं। स्त्री भी दूसरेकी समझना। तनय भी दूसरेका उत्पन्न होता है। यह सब कुछ ही दिनोंका मिलाप है, फिर मरकर सब एकाकी भटकते फिरते हैं। जीव और शरीर भी अन्यके हो रहते हैं, घर भी दूसरेका, गृहिणी भी दूसरेकी, तुरग, महागज और रथवर भी अन्यके हो जाते हैं। आज्ञाकारी नरवर भी दूसरेके ही रहते हैं। इस दूसरे जन्मांतरमें जीवका अर्थनाश एक क्षणमें ही हो जाता है। लोग कार्यके वशसे (अपने मतलबसे) मुँहके मीठे और प्रिय बोलनेवाले होते हैं, परंतु जिनधर्मको छोड़कर, इस जीवका और कोई भी अपना नहीं है ॥१-११॥

[९] सीताको अर्पित कर दो। उसे ग्रहण मत करो, नहीं तो, दुखसे भरपूर, जन्म और मरणसे भयंकर चार गतियोंके समुद्र, और नरक-सागरमें पड़ोगे। हे भुवनभयंकर और दुर्दर्शनीय

जल - थल - पायाल - णहङ्गणेहिँ । सुर-णरय- तिरय - मणुअत्तणेहिँ ॥३॥
णर - णारि - णपुंसय - रूवएहिँ । विस-मेसँ हिँ महिस- पसूअएहिँ ॥४॥
मायङ्ग - तुरङ्ग - विहङ्गमेहिँ । पञ्चाणण - मोर - भुअङ्गमेहिँ ॥५॥
किमि- कीड - पयङ्गेन्दिन्दिरेहिँ । विस-वइस- गइन्दें (?) मञ्जरेहिँ ॥६॥
हम्मन्तु हणन्तु मरन्तु जन्तु । कलुणइँ रुअन्तु खज्जन्तु खन्तु ॥७॥
गेण्हन्तु मुअन्तु कलेवराइँ । अणुहवइ जीउ पावहोँ फलाइँ ॥८॥
घरिणी वि माय माया वि घरिणि । भइणी वि धीय धीया वि भइणि ॥९॥
पुत्तो वि वप्पु वप्पो वि पुत्तु । सत्तो वि मित्तु मित्तो वि सत्तु ॥१०॥

घत्ता

एहएँ संसारे रावण सोक्खु कहिँ तणउ ।
अप्पिज्जउ सीय सीलु म खण्डहि अप्पणउ ॥११॥

[१०]

चउदह रज्जुय दहवयण भुअँ वि सोक्ख- सयाइँ ।
तो इ ण हूइय तित्ति तउ अप्पहि सीय ण काइँ ॥१॥

अहोँ सुर-समर-सएँ हिँ सवडम्मुह । तइलोकाणुवेक्ख सुणि दहमुह ॥२॥
जं तं णिरवसेसु आयासु वि । तिहुवणु मज्झेँ परिट्ठिउ तासु वि ॥३॥
आइ णिहणु णउ केण वि धरियउ । अच्छइ सयलु वि जीवहँ भरियउ ॥४॥
पहिलउ वेत्तासण-अणुमाणें । थियउ सत्त-रज्जुअ-परिमाणें ॥५॥
बीयउ झल्लरि-रूवागारें । थियउ एक्क-रज्जुव-वित्थारें ॥६॥
तइयउ भुवणु मुरव-अणुमाणें । थियउ पञ्च-रज्जुअ-परिमाणें ॥७॥
मोक्खु वि विवरिय-छत्तायारें । थियउ एक्क-रज्जुअ-वित्थारें ॥८॥
इय चउदह-रज्जुएँ हिँ णिवद्धउ । तिहुअणु तिहिँ पवणेँ हिँ उद्धद्धउ ॥९॥

रावण, तुम चारगतिवाली संसार-अनुप्रेक्षा सुनो। जल-थल, पाताल और आकाशतलमें स्वर्ग नरक तिर्यंच और मनुष्य ये चारगतियाँ हैं, नर-नारी और नपुंसक आदिरूप, वृषभ, मेष, महिष, पशु, गज, अश्व और पक्षी, सिंह, मोर और साँप, कृमि, कीट, पतंग और जुगुनू, वृष, वायस, गयंद और मंजरी ? (इन सब रूपोंमें) जीव उत्पन्न होता है। वह मारता है, पिटता है, मरता है, जाता है, करुण रोता है, खाता है, खाया जाता है, शरीरोंको छोड़ता है, ग्रहण करता है। इस प्रकार जीव अपने पापका फल भोगता है। कभी स्त्री माँ बनती है, और माँ स्त्री, बहन लड़की बनती है, और लड़की बहन। पुत्र बाप बनता है और बाप पुत्र बनता है। शत्रु भी मित्र बनता है और मित्र शत्रु। इस संसारमें, 'हे रावण,' सुख कहाँ है। सीता सौंप दो, अपना शील खंडित मत करो" ॥१-११॥

[१०] हे रावण, चौदहराजू इस विश्वमें तुमने सैकड़ों भोगों का अनुभव किया है। फिर भी तुम्हे तृप्ति नहीं हुई। सीता क्यों नहीं सौंप देते ? अहो सैकड़ों देवयुद्धोंमें अभिमुख रहनेवाले रावण, त्रिलोक-अनुप्रेक्षा सुनो। यह जो निरवशेष आकाश है, उसके बीचमें त्रिभुवन प्रतिष्ठित है, अनादिनिधन वह, किसी भी वस्तुपर आधारित नहीं है। सबका सब जीवराशिसे भरा हुआ है, पहला, वेत्रासनके समान सात राजू प्रमाण है, दूसरा लोक झल्लरीके आकारका एक राजू विस्तारवाला है, और तीसरा लोक, पाँचराजू प्रमाण मृदंगके आकारका है, मोक्ष भी छल और आकारसे रहित, एक राजू विस्तारवाला है। इस प्रकार चौदह-राजुओंसे निबद्ध, तीनों लोक तीन पवनोंसे घिरे हुए हैं। उसीके

जल - थल - पायाल - णहङ्गणेहिँ । सुर-णरय- तिरय - मणुअत्तणेहिँ ॥२॥
णर - णारि - णपुंसय - रूवएहिँ । विस-मेसेँ हिँ महिस- पसूअएहिँ ॥४॥
मायङ्ग - तुरङ्ग - विहङ्गमेहिँ । पञ्चाणण - मोर - भुअङ्गमेहिँ ॥५॥
किमि- कीड - पयङ्गेन्दिन्दिरेहिँ । विस-वइस- गइन्दें (?) मच्छरेहिँ ॥६॥
हम्मन्तु हणन्तु मरन्तु जन्तु । कलुणइँ रुअन्तु खज्जन्तु खन्तु ॥७॥
गेण्हन्तु मुअन्तु कलेवराइँ । अणुहवइ जीउ पावहोँ फलाइँ ॥८॥
घरिणी वि माय माया वि घरिणि । भइणी वि धीय धीया वि भइणि ॥६॥
पुत्तो वि वप्पु वप्पो वि पुत्तु । सत्तो वि मित्तु मित्तो वि सत्तु ॥१०॥

घत्ता

एहएँ संसारे रावण सोक्खु कहिँ तणउ ।
अप्पिज्जउ सीय सीलु म खण्डहि अप्पणउ ॥११॥

[१०]

चउदह रज्जुय दहवयण भुञ्जेँवि सोक्ख- सयाइँ ।
तो इ ण हूइय तित्ति तउ अप्पहि सीय ण काइँ ॥१॥

अहोँ सुर-समर-सएँहिँ सवडम्मुह । तइलोकाणुवेक्ख सुणि दहमुह ॥२॥
जं तं णिरवसेसु आयासु वि । तिहुवणु मज्झेँ परिट्ठिउ तासु वि ॥३॥
आइ णिहणु णउ केण वि धरियउ । अच्छइ सयलु वि जीवहँ भरियउ ॥४॥
पहिलउ वेत्तासण-अणुमाणें । थियउ सत्त-रज्जुअ-परिमाणें ॥५॥
बीयउ झल्लरि-रूवागारें । थियउ एक्क-रज्जुव-वित्थारें ॥६॥
तइयउ भुवणु मुरव-अणुमाणें । थियउ पञ्च-रज्जुअ-परिमाणें ॥७॥
मोक्खु वि विवरिय-छत्तायारें । थियउ एक्क-रज्जुअ-वित्थारें ॥८॥
इय चउदह-रज्जुएँहिँ णिबद्धउ । तिहुअणु तिहिँ पवणेँहिँ उद्धद्धउ ॥६॥

रावण, तुम चारगतिवाली संसार-अनुप्रेक्षा सुनो। जल-थल, पाताल और आकाशतलमें स्वर्ग नरक तिर्यंच और मनुष्य ये चारगतियाँ हैं, नर-नारी और नपुंसक आदिरूप, वृषभ, मेष, महिष, पशु, गज, अश्व और पक्षी, सिंह, मोर और साँप, कृमि, कीट, पतंग और जुगनू, वृष, वायस, गयंद और मंजरी ? (इन सब रूपोंमें) जीव उत्पन्न होता है। वह मारता है, पिटता है, मरता है, जाता है, करुण रोता है, खाता है, खाया जाता है, शरीरोंको छोड़ता है, ग्रहण करता है। इस प्रकार जीव अपने पापका फल भोगता है। कभी स्त्री माँ बनती है, और माँ स्त्री, बहन लड़की बनती है, और लड़की बहन। पुत्र बाप बनता है और बाप पुत्र बनता है। शत्रु भी मित्र बनता है और मित्र शत्रु। इस संसारमें, 'हे रावण,' सुख कहाँ है। सीता सौंप दो, अपना शील खंडित मत करो" ॥१-११॥

[१०] हे रावण, चौदहराजू इस विश्वमें तुमने सैकड़ों भोगों का अनुभव किया है। फिर भी तुम्हे तृप्ति नहीं हुई। सीता क्यों नहीं सौंप देते ? अहो सैकड़ों देवयुद्धोंमें अभिमुख रहनेवाले रावण, त्रिलोक-अनुप्रेक्षा सुनो। यह जो निरवशेष आकाश है, उसके बीचमें त्रिभुवन प्रतिष्ठित है, अनादिनिधन वह, किसी भी वस्तुपर आधारित नहीं है। सबका सब जीवराशिसे भरा हुआ है, पहला, वेत्रासनके समान सात राजू प्रमाण है, दूसरा लोक झल्लरीके आकारका एक राजू विस्तारवाला है, और तीसरा लोक, पाँचराजू प्रमाण मृदंगके आकारका है, मोक्ष भी छल और आकारसे रहित, एक राजू विस्तारवाला है। इस प्रकार चौदह-राजुओंसे निबद्ध, तीनों लोक तीन पवनोंसे घिरे हुए हैं। उसीके

घत्ता

तहों मज्झें असेसु जलु थलु णयण-कडक्खियउ ।
तं कवणु पएसु जं ण वि जीवें भक्खियउ ॥१०॥

[११]

वसें वि चिलिञ्चिलें देह-घरें खणें भङ्गुरएँ असारें ।
रावण सीयहें लुद्धु तुहुँ जिह मण्डलउ कयारें ॥१॥

अहों अहों सयल-भुवण-संतावण । असुइत्ताणुवेक्ख सुणि रावण ॥२॥
माणुस-देहु होइ घिणि-विट्टलु । सिरेहिं णिवद्धउ हड्डहँ पोट्टलु ॥३॥
चलु कु-जन्तु मायमउ कुहेडउ । मलहों पुञ्जु किमि-कीडहुँ मूडउ ॥४॥
पूअगन्धि रुहिरामिस-भण्डउ । चम्म-रुक्खु दुग्गन्ध-करण्डउ ॥५॥
अन्तहँ पोट्टलु पक्खिहिँ भोयणु । वाहिहिँ भवणु मसाणहों भायणु ॥६॥
आयएहिँ कलुसिउ जहिँ अङ्गउ । कवणु पएसु सरीरहों चङ्गउ ॥७॥
सुण्णउ सुण्णहरु व दुप्पेच्छउ । कलियलु पच्छाहर-सारिच्छउ ॥८॥
जोव्वणु गण्डहों अणुहरमाणउ । सिरु णालियर-करङ्क-समाणउ ॥९॥

घत्ता

एहएँ असुइत्तें अहों लङ्काहिव भुवण-रवि ।
सीयहें वरि तो वि हूउ विरत्तीभाउ ण वि ॥१०॥

[१२]

पञ्च-पयारेंहिँ दहवयण जीवहों ढुक्कइ पाउ ।
सुहु दुक्खहुँ जं जेम ठिय तं भुञ्जेवउ साउ ॥१॥

भो सुरकरि-कर-संकास-भुअ । आसव-अणुवेक्ख काइँ ण सुअ ॥२॥
वेढिज्जइ जीउ मोह-मएँहिँ । पञ्चाणणु जेम मत्त-गएँहिँ ॥३॥
रयणायरु जिह सरि-वाणिएँहिँ । पञ्च-विहेंहिँ णाणावरणिएँहिँ ॥४॥
णव-दंसणेहिँ विहिँ वेयणेंहिँ । अट्ठावीसहिँ वामोहणेंहिँ ॥५॥

बीचमें समस्त जल-थल दिखाई देते हैं, इसमें ऐसा कौन-सा प्रदेश है जिसका जीवने भक्षण न किया हो ॥१-१०॥

[११] इस घिनौने क्षणभंगुर और असार सीताके देह रूपी घरमें तुम उसी तरह लुब्ध हो जिस तरह कुत्ता मांसमें लुब्ध होता है ? अरे-अरे सकल भुवनसंतापकारी रावण, तुम अशुचि-अनुप्रेक्षा सुनो, यह मनुष्यदेह घृणाकी गठरी है। हड्डियों और नसोंसे यह पोटली बँधी हुई है। चंचल कुजन्तुओंसे भरी, कुत्सित मांसपिंडवाली, नश्वर मलका ढेर, कृमि और कीड़ोंसे व्याप्त, पीपसे दुर्गन्धित, रुधिर और मांसक पात्र, रूखे चमड़ेवाली और दुर्गन्धकी समूह है। अन्तमें यह पोटली, पक्षियोंका भोजन, व्याधियोंका घर और श्मशानका पात्र बनती है। पापसे इसका एक-एक अंग कलुषित है, भला बताओ शरीरका कौन-प्रदेश अमर है। सूने घरकी तरह वह सूना और अदर्शनीय है। इसका कटितल 'पच्छाहर' ? के समान है, यौवन व्रणके अनुरूप है, और सिर नारियलकी खोपड़ीकी तरह है। अरे विश्वरवि लंका-नरेश, शरीरके इतना अपवित्र होने पर भी, सीताके ऊपर तुम्हारा विरक्तिभाव नहीं हो रहा है ॥१-१०॥

[१२] हे दसमुख ! जीवको पाँच प्रकारके पाप लगते हैं। जो जिस तरह सुख-दुखमें होता है, उसे वैसा भोग सहन करना पड़ता है। अरे ऐरावतकी सूँड़की तरह प्रचंडबाहु रावण, क्या तुमने आस्रव-अनुप्रेक्षा नहीं सुनी। यह जीव, मोह-मदसे वैसे ही घेर लिया जाता है, जैसे मत्त गज सिंहको घेर लेते हैं, या नदियोंकी धाराएँ समुद्रको घेर लेती हैं,। पाँच प्रकारका ज्ञाना-वरणीय, नौ प्रकारका दर्शनावरणीय, दो प्रकारका वेदनीय, अट्ठाईस

चउ-विहँहिँ आउ-परिमाणएँहिँ । ते णउइ-पयारेँहिँ णामएँहिँ ॥६॥
विहिँ गोत्तेँहिँ मइल-समुज्जलेँहिँ । पञ्चहि मि अन्तराइय-खलेँहिँ ॥७॥
छाइज्जइ छिज्जइ भिज्जइ वि । मारिज्जइ खज्जइ पिज्जइ वि ॥८॥
पिट्टिज्जइ वज्झइ मुच्चइ वि । जन्तेहिँ दलिज्जइ रुज्झइ वि ॥९॥

घत्ता

णिय-कम्म-वसेण जम्मण-मरणोहुद्धएँण ।
विसहेव्वउ दुक्खु जेम गइन्दें वद्धएँण ॥१०॥

[१३]

भणमि सणेहें दहवयण जाणेंवि एउ असारु ।
संवरु भावेंवि णियय-मणें वज्जिज्जउ परयारु ॥१॥

भो सयल-भुअण-लच्छी-णिवास । संवर-अणुवेक्खा सुणि दसास ॥२॥
रक्खिज्जइ जीउ स-रागु केम । णउ ढुक्कइ अयस-कलङ्कु जेम ॥३॥
दिज्जइ रक्खणु जो जासु मल्लु । कामहोँ अ-कामु सल्लहोँ अ-सल्लु ॥४॥
दम्भहोँ अ-दम्भु दोसहोँ अ-दोसु । पावहोँ अ-पावु रोसहोँ अ-रोसु ॥५॥
हिंसहोँ अहिंस मोहहोँ अ-मोहु । माणहोँ अ-माणु लोहहोँ अ-लोहु ॥६॥
णाणु वि अण्णाणहोँ दिढ-कवाडु । मच्छरहोँ अ-मच्छरु दप्प-साडु ॥७॥
अ-विओउ विओयहोँ दुण्णिवारु । जसु अयसहोँ दुप्पइसारु वारु ॥८॥
मिच्छत्तहोँ दिढ-सम्मत्त-पयरु । मेल्लिज्जइ जेम ण देह-णयरु ॥९॥

घत्ता

परियाणेंवि एउ णव-णीलुप्पल-णयण-जुय ।
वरि रामहोँ गम्पि करेँ लाइज्जउ जणय-सुय ॥१०॥

[१४]

रावण णिज्जर भावि तुहुँ जा दय-धम्महोँ मूलु ।
तो वरि जाणवि परिहरहि किज्जइ तहोँ अणुकूलु ॥१॥

लङ्काहिव दणु-दुग्गाह-गाह । णिज्जर-अणुवेक्खा णिसुणि णाह ॥२॥

प्रकारका मोहनीय, चार प्रकारका आयुकर्म, नौ प्रकारका नामकर्म, दो प्रकारका गोत्रकर्म और शुभ-अशुभ पाँच प्रकारका अन्तराय कर्म। इन सब कर्मोंसे जीव आच्छन्न होता, छीजता, मिटता, मारा, खाया और पिया जाता है। जन्म-मरणसे बँधे हुए इस जीवको अपने कर्मोंके वशीभूत होकर उसी प्रकार दुख उठाना पड़ता है जिस प्रकार बंधनमें पड़ा हुआ गज उठाता है ॥१-१०॥

[१३] रावण! मैं स्नेहपूर्वक कह रहा हूँ। तुम इसे असार समझो। अपने मनमें संवर-तत्त्वका ध्यान करो, और परस्त्रीसे बचते रहो। त्रिभुवनलक्ष्मीके निकेतन हे रावण, तुम संवर-अनुप्रेक्षा सुनो। रागरहित होकर इस जीवको इस तरह रखना चाहिए कि इसे किसी तरहका कलङ्क न लगे। जो जिसका प्रतिद्वंद्वी है उसकी उससे रक्षा करो, कामसे अकामको, शल्यसे अशल्यको, दम्भसे अदम्भको, दोषसे अदोषको, पापसे अपापको, रोषसे अरोषको, हिंसासे अहिंसाको, मोहसे अमोहको, मानसे अमान को, लोभसे अलोभको, अज्ञानसे दृढ़ ज्ञानको, मत्सरसे दर्प-नाशक अमत्सरको, वियोगसे दुर्निवार अवियोगको, अपथसे दुष्प्रवेश द्वारपथको, और मिथ्यात्वसे दृढ़ सम्यकत्वके समूहको बचाओ जिससे देहरूपी नगर नष्ट न हो जाय, हे नवनील कमल-नयन रावण, यह सब जानकर, तुम जाकर रामको जनकसुता अर्पित कर दो" ॥१-१०॥

[१४] रावण, तुम निर्जरा-तत्त्वका ध्यान करो जो दया-धर्मकी जड़ है। अच्छा हो तुम सीताको छोड़ दो और उसके अनुसार आचरण करो। हे दानवरूपी ग्राहोंसे अग्राह्य लंकाधिप रावण 'तुम निर्जरा-अनुप्रेक्षा सुनो। षष्ठी, अष्टमी, दशमी, द्वादशीको

छट्ठम - दसम - दुवारसेहिँ । वहु - पाणाहारेँहिँ णीरसेहिँ ॥३॥
चउथेहिँ तिरत्ता - तोरणेहिँ । पक्खेक्कवार - किय - पारणेहिँ ॥४॥
मासोववास - चन्दायणेहिँ । अवरेहि मि दण्डण - मुण्डणेहिँ ॥५॥
वाहिर-सयणेँहिँ अत्तावणेहिँ । तरु - मूलेँहिँ वर - वीरासणेहिँ ॥६॥
सज्झाय - झाण-मण-खञ्चणेँहिँ । वन्दण - पुज्जण - देवञ्चणेहिँ ॥७॥
संजम-तव-णियमेँहिँ दूसहेहिँ । घोरेँहिँ वावीस - परीसहेहिँ ॥८॥
चारित्त-णाण - वय - दंसणेहिँ । अवरेहि मि दण्डण - खण्डणेहिँ ॥९॥

घत्ता

जो जम्म-णएण सञ्चिउ दुक्किय-कम्म-मलु ।
सो गलइ असेसु वरणेँ दु-वद्धएँ जेम जलु ॥१०॥

[१५]

धम्मु अहिंसा दहवयण जाणहि तुहुँ दह-भेउ ।
तो वि ण जाणइ परिहरहि काइ मि कारणु एउ ॥१॥
अहों जिणवर-कम-कमलिन्दिन्दिर । दसधम्माणुवेक्ख सुणेँ दस-सिर ॥२॥
पहिलउ एउ ताम वुज्झेव्वउ । जीव - दया - वरेण होएव्वउ ॥३॥
वीयउ मद्दवत्तु दरिसेव्वउ । तइयउ उज्जय - चित्तु करेव्वउ ॥४॥
चउथउ पुणु लाहवेँण जिवेव्वउ । पञ्चमउ वि तव-चरणु चरेव्वउ ॥५॥
छट्ठउ संजम - वउ पालेव्वउ । सत्तमु किम्पि णाहिँ मग्गेव्वउ ॥६॥
अट्ठमु वम्भचेरु रक्खेव्वउ । णवमउ सच्च-वयणु वोल्लेव्वउ ॥७॥
दसमउ मणेँ परिचाउ करेव्वउ । एँहु दस-भेउ धम्मु जाणेव्वउ ॥८॥
धम्में होन्तएण सुहु केवलु । धम्में होन्तएण चिन्तिय-फलु ॥९॥

घत्ता

धम्मेण दसास वरु परियणु सवडम्मुहउ ।
विणु एक्कें तेण सयलु वि थाइ परम्मुहउ ॥१०॥

नीरस उपवास करना चाहिए। पक्षमें चार तीन ? या एक बार पारणा करनी चाहिए। एक माहके उपवास वाला चान्द्रायण व्रत, तथा और भी दण्डन-मुण्डन करना चाहिए! बाहर सोना या पेड़ोंके मूलमें या आतापिनी शिलापर वीरासन लगाना चाहिए। सुध्यात ध्यानसे मनको वशमें करना, वन्दना, पूजन और देवार्चा करना, दुःसह संयम, तप और नियमोंको पालना, घोर बाईस परीषह सहन करना, चारित्र ज्ञान, व्रत और दर्शनका अनुष्ठान तथा अन्य दण्डन-खण्डन करना चाहिए। इस प्रकार जो सैकड़ों जन्मोंसे पापरूपी कर्ममल संचित हैं, वे सब वैसे ही गल जाते हैं जैसे बाँध खोल देनेसे पानी बह जाता है ॥१-१०॥

[१५] हे रावण! तुम अहिंसा धर्मके दस अंगोंको जानते हो। फिर भी सीताका परित्याग नहीं करते। आखिर इसका क्या कारण है। जिनवरके चरणकमलोंके भ्रमर दशशिर रावण, दसधर्म-अनुप्रेक्षा सुनो। पहली तो यह बात समझो कि तुम्हें जीवदयामें तत्पर होना चाहिए। दूसरे मार्दव दिखाना चाहिए। तीसरे सरलचित्त होना चाहिए। चौथे अत्यन्त लाघवसे जीना चाहिए। पाँचवें तपश्चरण करना चाहिए। छठे संयम धर्मका पालन करना चाहिए। सातवें किसीसे याचना नहीं करनी चाहिए। आठवें ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। नवें सत्य व्रतका आचरण करना चाहिए। दसवें मनमें सब बातका परित्याग करना चाहिए। तुम इन धर्मोंको जानो। धर्म होनेसे ही केवल सुखकी प्राप्ति होती है, और धर्मसे ही चिन्तित फल मिलता है। हे रावण! धर्मसे ही गृह, परिजन सब अभिमुख (अनुकूल) होते हैं, और एक उसके बिना सब विमुख हो जाते हैं ॥१-१०॥

[१६]

'माहइ भव-आणन्दयर णिय-कुलेँ ससि अ-कलङ्क ।
जाणइ जाणिय सयल-जगेँ कह भय-भीएं मुक्क' ॥१॥

अण्णु वि दहवयणु मणेण मुणेँ । णामेण बोहि - अणुवेक्ख सुणेँ ॥२॥
चिन्तेव्वउ जीवेँ रत्ति-दिणु । "भवेँ भवेँ महु सामिउ परम-जिणु ॥३॥
भवेँ भवेँ लब्भउ समाहि-मरणु । भवेँ भवेँ होजउ सुगइ-गमणु ॥४॥
भवेँ भवेँ जिण-गुण-सम्पत्ति महु । भवेँ भवेँ दंसण-णाणेण सहुँ ॥५॥
भवेँ भवेँ सम्मत्त होउ अचलु । भवेँ भवेँ णासउ हय-कम्म-मलु ॥६॥
भवेँ भवेँ सम्भवउ महन्त दिहि । भवेँ भवेँ उप्पज्जउ धम्म-णिहि" ॥७॥
रावण अणुवेक्खउ एयाउ । जिण - सासणेँ वारह-भेयाउ ॥८॥
जो पढइ सुणइ मणेँ सद्दहइ । सो सासय-सोक्ख-सयइँ लहइ' ॥९॥

घत्ता

सुन्दर - वयणाइँ लग्गइँ मणेँ लङ्केसरहोँ ।
स इँ भु व-जुवलेण किउ जयकारु जिणेसरहोँ ॥१०॥

●

[५५. पञ्चवण्णासमो संधि]

'एत्तहेँ दुलहउ धम्मु एत्तहेँ विरहग्गि गरूवउ ।
आयहेँ कवणु लएमि' दहवयणु दुवक्खीहूअउ ॥

[१]

'एत्तहेँ जिणवर-वयणु ण चुक्कइ । एत्तहेँ वम्महु वम्महोँ ढुक्कइ ॥१॥
एत्तहेँ भव-संसारु विरूवउ । एत्तहेँ विरह-परव्वसिहूअउ ॥२॥

[१६] मनके लिए आनन्दकर, अपने कुलका कलंकहीन चन्द्र हनुमान जानता था कि जानकी समस्त विश्वमें भय और भीतिसे मुक्त है। फिर भी उसने कहा, "हे रावण अपने मनमें गुनो, और बोधि अनुप्रेक्षा सुनो। जीवको दिनरात यही सोचना चाहिए, भवभवमें मेरे स्वामी परम जिन हों, भवभवमें मुझे समाधिमरण प्राप्त हो, जन्म-जन्ममें सुगति गमन हो, जन्म-जन्ममें जिनगुणोंकी सम्पदा मिले, जन्मजन्ममें दर्शन और ज्ञानका साथ हो, भवभवमें अचल सम्यक् दर्शन हो, भवभवमें मैं कर्ममलका नाश करूँ। जन्म-जन्ममें मेरा महान् सौभाग्य हो, जन्म-जन्ममें मुझे धर्मनिधि उत्पन्न हो। हे रावण, जिनशासनमें ये बारह प्रकारकी अनुप्रेक्षाएँ हैं, जो इन्हें पढ़ता, सुनता और अपने मनमें श्रद्धा करता है, वह शाश्वत शतशत सुखोंको पाता है। ये सुन्दर वचन रावणके मनमें गड़ गये और उसने अपने हाथ जोड़कर जिनका जयकार किया ॥१-१०॥

●

पचपनवीं सन्धि

रावणके सम्मुख अब बहुत बड़ी समस्या थी; एक ओर तो उसके सामने दुर्लभ धर्म था और दूसरी ओर विपुल-विरहाग्नि। इन दोनोंमें वह किसको ले, इस सोचमें वह व्याकुल हो उठा।

[१] एक ओर तो वह जिनवरके उपदेशसे नहीं चूकना चाहता था तो दूसरी ओर, उसके मर्मको काम भेद रहा था, एक ओर विरूपित भवसंसार था, तो दूसरी ओर वह कामके वशी-

एत्तहेँ णरएँ पडेव्वउ पाणेँहिँ । एत्तहेँ भिण्णु अणङ्गहोँ बाणेँहिँ ॥३॥
एत्तहेँ जीउ कसाएँहिँ रुम्भइ । एत्तहेँ सुरय-सोक्खु कहिँ लब्भइ ॥४॥
एत्तहेँ दुक्खु दुकम्महों पासिउ । एत्तहेँ जाणइ-वयणु सुहासिउ ॥५॥
एत्तहेँ हय-सरीरु चिलिसावणु । एत्तहेँ सुन्दरु सीयहेँ जोव्वणु ॥६॥
एत्तहेँ दुलहइँ जिण-गुण-वयणइँ । एत्तहेँ मुद्धइँ सीयहेँ णयणइँ ॥७॥
एत्तहेँ जिणवर-सासणु सुन्दरु । एत्तहेँ जाणइ-वयणु मणोहरु ॥८॥
एत्तहेँ असुहु कम्मु णिरु भावइ । एत्तहेँ सीय-अहरु को पावइ ॥९॥
एत्तहेँ णिन्दिउ उत्तम-जाइहेँ । एत्तहेँ केस-भारु वरु सीयहेँ ॥१०॥
एत्तहेँ णरउ रउद्दु दुरुत्तरु । एत्तहेँ सीयहेँ कण्ठु सु-सुन्दरु ॥११॥
एत्तहेँ णारइयहुँ गिर'मरु मरु' । एत्तहेँ सीयहेँ मणहरु थणहरु ॥१२॥
एत्तहेँ जम-गिर 'लइ लइ धरि धरि'। एत्तहेँ जाणइ लडह-किसोयरि ॥१३॥
एत्तहेँ दुक्खु अणन्तु दुणित्थरु । एत्तहेँ सीयहेँ रमणु स-वित्थरु ॥१४॥
एत्तहेँ जम्मन्तरेँ सुट्ठु विरलउ । एत्तहेँ सुललिय-ऊरुव-जुवलउ ॥१५॥
एत्तहेँ मणुव-जम्मु अइ-विरलउ । एत्तहेँ जंघा-जुअलउ सरलउ ॥१६॥
एत्तहेँ एउ कम्मु ण वि विमलउ । एत्तहेँ सीयहेँ वरु कम-जुअलउ ॥१७॥
एत्तहेँ पाउ अणोवमु वज्झइ । एत्तहेँ विसएँहिँ मणु परिरुज्झइ ॥१८॥
एत्तहेँ कुविउ कयन्तु सु-भीसणु । एत्तहेँ दुत्तरु मयणहोँ सासणु ॥१९॥
कवणु लएमि कवणु परिसेसमि । तो वरि एवहिँ णरएँ पडेसमि ॥२०॥

घत्ता

जाणमि जिह ण वि सोक्खु पर-तिय पर-दव्वु लयन्तहोँ ।
जं रुच्चइ तं होउ तहोँ रामहोँ सीय अ-देन्तहोँ ॥२१॥

भूत था, इधर यदि प्राण नरकमें पड़ेंगे तो उधर कामके बाणोंसे अंग छिन्न हो जायेंगे, इधर कषायोंसे वह अवरुद्ध हो जायगा तो उधर सुरतसुख उसे कहाँ मिलेगा, इधर दुष्कर्मोंका दुखद पाश है, तो उधर हँसता हुआ जानकीका मुख है। इधर घिनौना आहत शरीर है, उधर सीताका सुन्दर यौवन है, इधर दुर्लभ जिन गुण और वचन हैं, उधर सीताके मुग्ध नयन हैं, इधर सुन्दर जिनवर शासन है और उधर, मनोहर सीताका मुख है। यहाँ अत्यन्त अशुभ कर्म मनको अच्छा लग रहा है और उधर सीताके अधरोंको कौन पा सकता है, इधर उत्तम जातिकी निन्दा है, उधर सीताका उत्तम केशभार है, इधर दुस्तर रौद्र नरक है, और उधर सीताका सुन्दर कण्ठ है, इधर नारकियोंकी 'मारो मारो" वाणी है और इधर सीताके सुन्दर स्तन हैं। इधर यमकी "लो-लो पकड़ो-पकड़ो" वाणी है और उधर सुन्दरियोंमें सुन्दरी सीता है। इधर अनन्त दुस्तर दुख है और उधर सीताका सविस्तार रमण है। यहाँ जन्मान्तरमें भी सुख विरल है और वहाँ सुन्दर ऊरु युगल हैं। इधर विरल मानव-जन्म है, और उधर सरल सुन्दर जंघा युगल है। इधर यह कर्म बिलकुल ही पवित्र नहीं है उधर सीता का उत्तम चरण-युगल है, यहाँ अनुपम पापका बन्ध होगा उधर विषयोंमें मन अवरुद्ध हो जायगा। इधर सुभीषण कृतान्त कुपित हो जायगा और उधर मदनका दुस्तर शासन है। किसे स्वीकार करूँ और किसे छोड़ दूँ। अच्छा, इस समय नरकमें पड़ना ही ठीक है। मैं जानता हूँ कि पर-स्त्री और परद्रव्य लेनेमें किसी भी तरह सुख नहीं है, फिर भी उस रामको सीता नहीं दूँगा, फिर चाहे जो रुचे वह हो ॥१-२१॥

[२]

जइ अप्पमि तो लक्खणु णामहों । जणु वोल्लेसइ "सङ्किउ रामहों" ॥१॥
मणें परिचिन्तेंवि जय-सिरि-माणणु । हणुवहों सम्मुहु वलिउ दसाणणु ॥२॥
'अरें गोवाल वाल धी-वज्जिय । वद्धउ झङ्खहि काइँ अलज्जिय ॥३॥
लवणु समुद्दहों पाहुडु पेसहि । सासय - थाणें सुहाइँ गवेसहि ॥४॥
मेरुहें कणय - दण्डु दरिसावहि । दिणयर - मण्डलें दीवउ लावहि ॥५॥
जोण्हावइहें जोण्ह संपाडहि । लोह - पिण्डें सण्णाहु भमाडहि ॥६॥
इन्दहों देव - लोउ अप्फालहि । महु अग्गएँ कहाउ संचालहि' ॥७॥
तं णिसुणेवि पवोल्लिउ सुन्दरु । पवर- भुअङ्ग- वद्ध- भुअ - पञ्जरु ॥८॥

घत्ता

'रावण तुज्झु ण दोसु लइ ढुक्कउ मुणिवर - भासिउ ।
अण्णहिँ कइहिँ दिणेहिँ खउ दीसइ सीयहें पासिउ' ॥९॥

[३]

दुव्वयणेंहिँ दहवयणु पलित्तउ । केसरि केसरग्गें णं छित्तउ ॥१॥
'मरु मरु लेहु लेहु सिरु पाडहों । णं तो लहु विच्छोडेंवि धाडहों ॥२॥
खरें वइसारहों सिरु मुण्डावहों । वेल्लएँ वन्धेंवि घरें घरें दावहों ॥३॥
तं णिसुणेवि पधाइय णिसियर । असि-झस-परसु-सत्ति-पहरण- कर ॥४॥
तहिँ अवसरें सरीरु विहुणेप्पिणु । पवर - भुअङ्ग - वन्ध तोडेप्पिणु ॥५॥
मारुइ भड भअन्तु समुट्ठिउ । सणि अवलोयणें णाइँ परिट्ठिउ ॥६॥
जउ जउ देइ दिट्ठि परिसक्कइ । तउ तउ अहिमुहु को वि ण थक्कइ ॥७॥
भणइ दसाणणु 'सइँ संघारमि । जेत्तहें जाइ तं जें मरु मारमि' ॥८॥

[२] यदि मैं अर्पित कर दूँगा तो नामको कलङ्क लगेगा, लोग कहेंगे कि रामके डरसे ऐसा किया !" जयश्रीके अभिमानी रावण अपने मनमें यह सब विचार करके हनुमानके सम्मुख मुड़ा, और बोला, "अरे बुद्धिहीन बाल गोपाल, बँधा हुआ भी व्यर्थ क्यों बक रहा है। लवण-समुद्रमें पत्थर फेंकना चाहता है। शाश्वत स्थानमें सुख खोजना चाहता है। मेरुको सोनेका दण्डा दिखाना चाहता है। सूर्यमण्डलको दीपक दिखाना चाहता है। चन्द्रमामें चाँदनी मिलाना चाहता है। लोहपिण्डपर निहाईको घुमाना चाहता है। इन्द्रसे देवलोक छीनना चाहता है। मेरे आगे कहानी चलाना चाहता है।" यह सुनकर सुन्दर पवनपुत्र (नागपाशसे दोनों हाथ जकड़े हुए थे) ने कहा, "रावण, इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है, असलमें मुनिवरका कहा सत्य होना चाहता है, कुछ ही दिनोंमें सीतासे तुम्हारा नाश दिखाई देता है ॥१-६॥

[३] इन दुर्वचनोंसे रावण भड़क उठा, मानो सिंह सिंहको क्षुब्ध कर दिया हो। उसने कहा, "मारो-मारो, पकड़ो या सिर गिरा दो, नहीं तो इसका धड़ अलग कर दो। इसे गधेपर बैठाओ, सिर मुड़वा दो, रस्सीसे बांधकर घर-घर दिखाओ"। यह सुनकर राक्षस दौड़े, उनके हाथमें तलवार, झस, फरसा और शक्ति शस्त्र थे। उस अवसरपर हनुमान भी अपने शरीरको हिलाकर नागपाशको तोड़कर और भटोंका संहार करता हुआ उठा। देखने में वह ऐसा लगता मानो शनीचर ही प्रतिष्ठित हुआ हो, जहाँ-जहाँ उसकी दृष्टि जाती वहाँ-वहाँ सम्मुख आनेमें और कोई समर्थ नहीं पा रहा था। तब रावणने कहा, "मैं स्वयं मारूँगा, जहाँ जायगा, वहीं इसे मारूँगा"। इस प्रकार हनुमान, उस विद्याधर

घत्ता

वञ्चेंवि सेण्णु असेसु विज्जाहर-भवण- पईवहों ।
मुहें मसि-कुच्चउ देवि गउ उप्परि दहगीवहों ॥९॥

[४]

थिउ वलु सयलु मडप्फर-मुक्कउ । जोइस - चक्कु व थाणहों चुक्कउ ॥१॥
कमल-वणु व हिम- वाएँ दड्डउ । दुविलासिणि- वयणु व दुवियड्डउ ॥२॥
रयणिहिँ वर-भवणु व णिद्दीवउ । किर उद्दवणु करेइ पडीवउ ॥३॥
भणइ सहोअरु 'जाउ कु-दूअउ । एत्तडेण किं उत्तिमु हूअउ ॥४॥
गिरिवर-उवरि विहङ्गमु जन्तउ । तो किं सो जें होइ वलवन्तउ ॥५॥
एम भणेवि णिवारिउ रावणु । सण्णज्झन्तु भुवण-संतावणु ॥६॥
तावेत्तहें वि तेण हणुवन्तें । णाइँ विहङ्गे णहयलें जन्तें ॥७॥
चिन्तिउ एक्कु खणन्तरु थाएँवि । कोव - दवग्गि मुहुत्तुप्पाएँवि ॥८॥

घत्ता

'लक्खण-रामहुँ किंत्ति जगेँ णीसावण्ण भमाडमि ।
दहमुह-जीविउ जेम वरि यमहिँ घरु उप्पाडमि' ॥९॥

[५]

चिन्तिऊण सुन्दरेँण सुन्दरं । भुअबलेण दहवयण - मन्दिरं ॥१॥
स - सिहरं स - मूलं समुक्खयं । स-चलियं (?) स-जाला-गवक्खयं ॥२॥
स - कुसुमं स - वारं स - तोरणं । मणि- कवाड - मणि - मत्तवारणं ॥३॥
मणि - तवङ्ग - सव्वङ्ग - सुन्दरं । वलहि - चन्दसाला - मणोहरं ॥४॥
हीर- गहण- तल- उब्भ- खम्भयं । गुमगुमन्त - रुण्टन्त - छप्पयं ॥५॥
विप्फुरन्त - णीसेस - मणिमयं । सूरकन्त - ससिकन्त - भूमयं ॥६॥
इन्दणील - वेरुलिय - णिम्मलं । पोमराय - मरगय - समुज्जलं ॥७॥
वर - पवाल - माला - पलम्बिरं । मोत्तिएक्क - झुम्बुक्क - झुम्बिरं ॥८॥

घत्ता

तं घरु पवर-भुएहिँ रसकसमसन्तु णिद्दलियउ ।
हणुव-वियड्डें णाइँ लङ्कहेँ जोव्वणु दरमलियउ ॥९॥

द्वीपकी समस्त सेनाको वंचितकर, और उनके मुखपर स्याहीकी कूँची फेरनेके लिए रावणके ऊपर झपटा ॥१-९॥

[४] सारी सेना अहंकारशून्य होकर ऐसे रह गई, मानो ज्योतिषचक्र ही अपने स्थानसे च्युत हो गया हो, या कमलवन हिमसे ध्वस्त हो उठा हो या दुर्विलासिनीका मुख ही कलङ्कित हो गया हो या रत्नोंसे उत्तम भवन ही उद्दीप्त नहीं हो रहा हो। वह बार-बार उठना चाह रही थी। इतनेमें विभीषणने रावणसे कहा, "यह कुदूत है, इतनेसे क्या यह उत्तम हो जायगा। पहाड़के ऊपरसे पक्षी निकल जाता है, तो क्या इससे वह उसकी अपेक्षा बलवान् हो जाता है," यह कहकर उसने रावणका निवारण किया। इतनेपर भी, हनुमानने आकाशमें जाते हुए पक्षीकी भाँति, एक क्षण रुककर और क्रोधाग्निसे भड़ककर अपने मनमें सोचा कि मैं राम-लक्ष्मणकी असाधारण कीर्तिको संसारमें घुमाऊँ, और दशमुखके जीवनकी तरह इस घरको ही उखाड़ दूँ ॥१-९॥

[५] तब हनुमानने अपने भुजबलसे शिखर और नींव सहित उसके प्रासादको कसमसाते हुए दलित कर दिया। मानो हनुमानने लंकाका यौवन ही मसल दिया था। वह राजप्रासाद, जाल-गोखों, कुसुमद्वार, तोरण, मणिमय किवाड़ और छज्जोंसे सहित था। मणियोंके तवांग ? से सुन्दर तथा वलभी और चन्द्रशाला से मनोहर था। उसका तल हीरोंसे जड़ा था। और दोनों ओर खम्भे थे। जिनपर भ्रमर गुनगुना रहे थे। समस्त भूमि चमकते हुए मणियों तथा सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त मणियोंसे जड़ित थी। इन्द्रनील और वैदूर्यसे निर्मल पद्मराग और मरकत मणियोंसे उत्तम मूँगोंकी मालासे लम्बमान और मोतियोंके झूमरोंसे झुम्बिर था वह भवन ॥१-६॥

[६]

तहों सरिसाइँ जाइँ अणुलग्गइँ । पञ्च सहासइँ गेहहुँ भग्गइँ ॥१॥
किउ कडमद्दणु पवणाणन्दें । णं सरवरें पइसरेंवि गइन्दें ॥२॥
पुणु वि स - इच्छएँ परिसक्कन्तें । पाडिय पुर - पओलि णिग्गन्तें ॥३॥
सहइ सभारणि णहयलें जन्तउ । लङ्कहें जीउ णाइँ उड्डन्तउ ॥४॥
तहिँ अवसरें सुरवर - पञ्चाणणु । चन्दहासु किर लेइ दसाणणु ॥५॥
मन्तिहिँ णवर कडच्छएँ धरियउ । 'किं पहु-णित्ति देव वीसरियउ ॥६॥
जइ णासइ सियालु विवराणणु । तो किं तहों रूसइ पञ्चाणणु' ॥७॥
एव भणेवि णिवारिउ जावेँहिँ । जाणइ मणें परिओसिय तावेँहिँ ॥८॥

घत्ता

जं घर-सिहरु दलेवि हणुवन्तु पडीवउ आइउ ।
सीयहें राहउ जेम परिओसें अङ्गें ण माइउ ॥९॥

[७]

जं जें पयट्टु समुद्दु किक्किन्धहों । पवरासीस दिण्ण कइचिन्धहों ॥१॥
'होहि वच्छ जयवन्तु चिराउसु । सूर- पयाव- हारि जिह पाउसु ॥२॥
लच्छी- सय- सहाणु- जिह सरवरु । सिय-लक्खण-अमुक्कु जिह हलहरु' ॥३॥
तेण वि दूरत्थेण समिच्छिय । सिरु णामेंवि आसीस पडिच्छिय ॥४॥
पुणु एकल्ल - वीरु जग - केसरि । लहु आउच्छेंवि लङ्कासुन्दरि ॥५॥
मिलिउ गम्पि णिय- खन्धावारएँ । थिउ विमाणें घण्टा - टङ्कारएँ ॥६॥
तूरइँ हयइँ समुट्ठिउ कलयलु । तारावइ - पुरु पत्तु महावलु ॥७॥
णिग्गय अङ्गङ्गय सहुँ वप्पें । अण्ण वि णिव णिय-णिय-माहप्पें ॥८॥

[६] उसीके साथ लगे हुए पाँच सौ मकान और भी ध्वस्त हो गये। पवनके आनन्द हनुमानने उन सबको ऐसे दल-मल कर दिया मानो गजेन्द्रने घुसकर सरोवरको ही रौंद डाला हो। फिर भी स्वेच्छासे घूमते हुए उसने जाते-जाते, पुरप्रतोलीको गिरा दिया। आकाशतलमें उड़ता हुआ हनुमान ऐसा सोह रहा था मानो लंकाका 'जीव' ही उड़कर जा रहा हो। उस अवसरपर, सुरवरसिंह रावण अपने हाथमें चन्द्रहास तलवार लेकर दौड़ा। परन्तु मन्त्रियोंने बड़े कष्टसे उसे रोकवाया। उन्होंने कहा,—"देव! क्या आप राजाकी मर्यादाको भूल गये। यदि शृगाल गुफाका मुख नष्ट कर दे, तो क्या उससे सिंह रूठ जाता है"। जब उसे यह कहकर रोका तो सीता अपने मनमें खूब संतुष्ट हुई। गृह-शिखरको दलकर हनुमान जब लौटकर आया तो सीता ही की तरह राम आनन्दसे अपने अङ्गोंमें फूले नहीं समाये ॥१-६॥

[७] जैसे ही हनुमान किष्किंधनगरके सम्मुख आया तो वानरोंने उसे प्रवर आशीर्वाद दिया, "हे वत्स! तुम चिरायु और जयशील बनो, पावसकी तरह सूर्यके प्रतापको हरण करो, सरोवर की तरह लक्ष्मी और शचीसे सहित बनो। बलभद्रकी तरह लक्खण (लक्ष्मण और गुण) तथा प्रिय (सीता और शोभा) से अमुक्त रहो।" उसने भी दूरसे आदरपूर्वक उन सब आशीर्वादोंको ग्रहण किया। उसके अनन्तर जगसिंह अद्वितीय वीर वह, लंका सुन्दरी से पूछकर, अपने स्कन्धावारमें घंटाध्वनिसे मुखरित अपने विमानमें स्थित हो गया। तब तूर्य बज उठे और कल-कल शब्द होने लगा, जब वह महाबली सुग्रीवके नगरमें पहुँचा तो कुमार अङ्ग और अङ्गद अपने पिताके साथ निकले। अन्य राजे भी अपने अपने अमात्योंके साथ बाहर आये। वे सब मिलकर, उसे भीतर

तेहिँ मिलेँवि पइसारिजन्तउ। लक्खिउ लक्खण-रामेँहिँ एन्तउ ॥९॥

घत्ता

हिण्डन्तेँहिँ वण-वासेँ जो विहि-परिणामेँ णट्ठउ।
सो पुण्णोदय-कालेँ अमु णाइँ पडीवउ दिट्ठउ ॥१०॥

[८]

तहोँ तइलोक्क - चक्क - मम्भीसहोँ। मारुइ चलणेँहिँ पडिउ हलीसहोँ ॥१॥
सिरु कम-कमल-णिसण्णु पदीसिउ। णं णीलुप्पलु पङ्कय - मीसिउ ॥२॥
वलेँण समुट्ठाविउ सइँ हत्थेँ। कुसलासीस दिण्ण परमत्थेँ ॥३॥
कण्ठउ कडउ मउडु कडिसुत्तउ। सयलु समप्पेँवि मणेँ पजलन्तउ ॥४॥
अद्धासणेँ वइसारिउ पावणि। जो पेसिउ सीयएँ चूडामणि ॥५॥
तं अहिणाणु समुज्जल - णामहोँ। दाहिण - करयलेँ घत्तिउ रामहोँ ॥६॥
मणि पेक्खेँवि सव्वङ्गु पहरिसिउ। उरेँ ण मन्तु रोमञ्चु पदरिसिउ ॥७॥
जो परिओसु तेत्थु संभूअउ। दुक्करु सीय - विवाहेँ वि हूयउ ॥८॥

घत्ता

पभणइ राहवचन्दु 'महु अज्ज वि हियउ ण जीवइ।
मारुइ अक्खि दवत्ति किं मुइय कन्त किं जीवइ' ॥९॥

[९]

जिण-चलणारविन्द - दल-सेवहोँ। मारुइ कहइ वत्त वलदेवहोँ ॥१॥
'जाणइ दिट्ठ देव जीवन्ती। अणुदिणु तुम्हहँ णामु लयन्ती ॥२॥
जहिँ अवसरेँ णिसियरेँहिँ गिलिज्जइ। तहिँ तेहएँ वि कालेँ पडिवज्जइ ॥३॥
इह-लोयहोँ तुहुँ सामि पियारउ। पर-लोयहोँ अरहन्तु भडारउ ॥४॥
झायइ साहु जेम परमप्पउ। उववासेहिँ लहसावइ अप्पउ ॥५॥
मइँ पुणु गम्पि णिएन्तहुँ तियसहुँ। पाराविय वावीसहँ दिवसहुँ ॥६॥
अङ्गुत्थलउ णवेवि समप्पिउ। तावहिँ महु चूडामणि अप्पिउ ॥७॥
अण्णु वि देव एउ अहिणाणु। जं लिउ गुत्त-सुगुत्तहँ दाणु ॥८॥

ले गये। तब राम लक्ष्मणने भी आते हुए उसे देखा। वनवासमें घूमते हुए, दैवके परिणामसे उनका जो यश नष्ट हो गया था अब पुण्योदयकालसे वह फिरसे उन्हें लौटता हुआ दिखाई दिया ॥१–१०॥

[८] तब त्रिलोकचक्रको अभय देनेवाले रामके चरणोंपर हनुमान गिर पड़ा। उनके चरणकमलोंपर उसका सिर ऐसा जान पड़ रहा था मानो नीलकमलमें मधुकर ही बैठा हो। रामने उसे अपने हाथोंसे उठाकर, कुशल आशीर्वाद दिया। कण्ठा, कटक, मुकुट और कटिसूत्र सब कुछ देकर, राम अपने मनमें उद्दीप्त हो उठे। हनुमानको उन्होंने अपने आधे आसनपर बैठाया। सीताने जो चूड़ामणि भेजा था, वह हनुमानने पहचानके लिए उज्ज्वल-नाम रामकी दाईं हथेलीपर रख दिया। उस समय जो परितोष रामको हुआ वह शायद सीताके विवाहमें भी कठिनाईसे हुआ होगा। तब रामने कहा—"आज भी मेरा हृदय शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहा है, हनुमान तुम शीघ्र कहो कि वह मर गई या जीवित है ॥१–९॥

[९] तब, जिन-चरणकमलके सेवक रामसे हनुमानने कहा—"हे देव, जानकीको मैंने प्रतिदिन तुम्हारा नाम लेते हुए—जीवित देखा है। जिस समय निशाचर उन्हें सताते, उस प्रतिकूल अवसरपर भी, तुम्हीं उसके इस लोकके स्वामी हो और परलोकके भट्टारक अरहंत साधुकी तरह वह परमात्माका ध्यान करती है, उपवास आदिसे आत्मक्लेश करती रहती है। मैंने जाकर स्त्रियोंके बीचमें बाईस दिनोंमें उन्हें पारणा कराई। जब मैंने प्रणाम करके अँगूठी दी तो उन्होंने मुझे यह चूड़ामणि अर्पित किया। और भी देव, यह पहचान है कि आपने गुप्त और सुगुप्त मुनियोंको दान

घत्ता

णिवडिय घरें वसु-हार णिसुणिउ अक्खाणु जडाइहँ ।
अण्णु मि तं अहिणाणु कुढें लग्गु देव जं भाइहँ' ॥९॥

[१०]

तं णिसुणेंवि वलु हरिसिय-गत्तउ । 'कहें हणुवन्त केम तहिँ पत्तउ' ॥१॥
एहएँ अवसरें णयणाणन्दें । हसिउ णियासणें थिएँण महिन्दें ॥२॥
'एयहों केरउ वड्डुउ दड्डसु । णिसुणें भडारा जं किउ साहसु ॥३॥
णरु णामेण अत्थि पवणञ्जउ । पह्लाययहों पुत्तु रणें दुज्जउ ॥४॥
तासु दिण्ण मइँ अञ्जणसुन्दरि । गउ उक्खन्धें वरुणहों उप्परि ॥५॥
वारह-वरिसह(हँ) एक्कएँ वारएँ । वासउ देवि मिलिउ खन्धारएँ ॥६॥
पवण-जणेरिएँ पुणु ईसाएँवि । घल्लिय घरहों कलङ्कउ लाएँवि ॥७॥
मइँ वि ताहें पइसारु ण दिण्णउ । वणें पसविय तहिँ एँहु उप्पण्णउ ॥८॥
तं जि वइरु सुमरेंवि हणुवन्तें । तउ आएसें दूएं जंतें ॥९॥
णयरें महारएँ किउ कडमद्दणु । हउ मि धरिउ स-कलत्तु स-णन्दणु ॥१०॥

घत्ता

भग्गाइँ सुहड-सयाइँ गय-जूहइँ दिसहिँ पणट्ठइँ ।
एयहों रण-चरियाइँ एत्तियाइँ देव मइँ दिट्ठइँ' ॥११॥

[११]

तं णिसुणेवि ति-कण्ण सहाएं । पुणु पोमाइउ दहिमुह-राएं ॥१॥
'अप्पुणु जइ वि पुरन्दरु आवइ । एयहों तणउ चरिउ को पावइ ॥२॥
वेण्णि महारिसि पडिमा-जोएं । अट्ठ दिवस थिय णियय-णिओएं ॥३॥
अण्णेक्केरहेँ अब्भासण्णउ । महु धीयउ इमाउ ति-कण्णउ ॥४॥
ताम हुआसणेण संदीविउ । वणु चाउद्दिसु जालालीविउ ॥५॥
धगधगधगधगन्त - धूमन्तएँ । छुड्ड छुड्ड गुरुहुँ पासें ढुक्कन्तएँ ॥६॥

किया था। घरपर वसुहार बरसे और आपने जटायुका आख्यान सुना था। और एक पहचान यह भी है कि देव, आप भाईके पीछे गये थे" ॥१-९॥

[१०] यह सुनकर, राम हर्षित शरीर हो उठे, उन्होंने पूछा, "अरे हनुमान, बताओ तुम वहाँ कैसे पहुँचे।" इस अवसरपर अपने आसनपर बैठे हुए, नेत्रानन्ददायक महेन्द्रने हँसकर कहा, "अरे इसका ढाढ़स बहुत भारी है, आदरणीय आप सुनें, इसने जो-जो साहस किया है। राजा प्रह्लादका पुत्र, रणमें अजेय पवनञ्जय है, उसे मैंने अपनी लड़की अंजनीसुन्दरी दी थी, वह वरुणके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए गया था, वह बारह बरसमें एक बार, स्कन्धावारसे वास देकर उससे मिला। परन्तु पवनकी माताने ईर्ष्याके कारण कलंक लगाकर अंजनाको घरसे निकाल दिया, मैंने भी उसे प्रवेश नहीं दिया, वह वनमें चली गई। वहीं यह उत्पन्न हुआ। उसी वैरका स्मरणकर, आपके दूत कार्यके लिए आकाशमार्गसे जाते हुए इसने हमारे नगरको ध्वस्त कर दिया और मुझे भी इसने स्त्री और पुत्रके साथ पकड़ लिया। सैकड़ों सुभट भग्न हो गये और हाथियोंका झुण्ड दिशाओंमें भाग गया। इसका इतना रणचरित्र, हे देव मैंने देखा" ॥१-१०॥

[११] यह सुनकर, तीन कन्याओंके साथ, दधिमुख राजाने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—"स्वयं यदि पुरन्दर भी आये, परन्तु इसके चरित्रको कौन पा सकता है। दो महामुनि प्रतिमा योगसे अपने ध्यानमें आठ दिनसे स्थित थे। अत्यन्त निकट, एक और स्थानपर ये मेरी तीनों लड़कियां बैठी हुई थीं। इतनेमें वनमें आग लग गई, और वह चारों ओरसे आगकी लपटोंमें आ गया। धक-धक करती और धुँआती हुई, धीरे-धीरे वह आग गुरुओंके

तहिँ अवसरँ हणुवन्तें छाएँवि । माया - पाउसु णहेँ उप्पाएँवि ॥७॥
सो दावाणलु पसमिउ जावँहिँ । हउ मि तेत्थु संपाइउ तावँहिँ ॥८॥

घत्ता

तहिँ कण्णाएँ समाणु मइँ तुम्हहुँ पासेँ विसज्जेँवि ।
अप्पुणु लङ्कहेँ समुहु गउ सीहु जेम गलगज्जेँवि ॥९॥

[१२]

दहिमुह-वयणु सुणेँवि गओलिउ । पिहुमइ हणुवहोँ मन्ति पवोल्लिउ ॥१॥
णिसुणेँ भडारा णहयलेँ जन्तें । पढमासाली हय हणुवन्तें ॥२॥
पुणु वज्जाउहु णरवर-केसरि । कलहेँवि परिणिय लङ्कासुन्दरि ॥३॥
गरुव-सणेहें दिट्ठु विहीसणु । तेण समाणु करेँवि संभासणु ॥४॥
कइवालाव - कालेँ अवणीयहुँ । अन्तरेँ थिउ मन्दोअरि-सीयहुँ ॥५॥
णन्दण-वणु मि भग्गु हउ अक्खउ । इन्दइ किउ पहरन्तु विलक्खउ ॥६॥
पुण वि वन्धाविउ अप्पाणउ । किर उवसमइ दसाणण-राणउ ॥७॥
णवरि विरुद्धे कह वि ण घाइउ । तहोँ घर-सिहरु दलेप्पिणु आइउ ॥८॥

घत्ता

इय चरियाइँ सुणेवि वड-दुम-पारोह-विसालेँहिँ ।
अवरुण्डिउ हणुवन्तु राहवेँण स इं भु व-डालेँहि ॥९॥

•

[५६ छप्पण्णासमो सन्धि]

हणुवागमेँ दिवसयरुग्गमेँ दसरह-वंस-जसुब्भवेँण ।
गज्जेँवि दहवयणहोँ उप्परि दिण्णु पयाणउ राहवेँण ॥

पास पहुँचने लगी। उस अवसरपर हनुमानने आकाशमें मायाके बादल उत्पन्नकर, छाया कर दी। जब तक वह दावानल शान्त हुआ तबतक हम लोग भी वहाँ पहुँचे। वहींपर कन्याओंके साथ मुझे आपके पास भेज दिया, और स्वयं सिंहकी तरह गरजकर लंकाकी ओर गया ॥१-९॥

[१२] दधिमुखके वचन सुनकर, पुलकित होकर, हनुमानके मन्त्री पृथुमतिने कहा, "सुनिये देव, सबसे पहले आकाश मार्गसे जाते हुए हनुमानने आसाली विद्या नष्ट कर दी, फिर नरवरसिंह वज्रायुधको मार दिया। तदनन्तर युद्ध करके लंकासुन्दरीसे विवाह किया, भारी स्नेहसे विभीषणसे भेंट की और उसके साथ बात-चीत की। अविनीत मन्दोदरी और सीता देवीकी कटु बातोंके प्रसङ्गमें वह बीचमें जा खड़ा हो गया। नन्दन वन उजाड़ डाला और अक्षयकुमारको भी मार दिया। प्रहार करते हुए इन्द्रजीतको व्याकुल कर दिया। फिर अपने आपको बँधवा दिया। रावण राजाको उपदेश दिया। विरुद्ध होने पर उसे किसी तरह मारा भर नहीं। उसका गृहशिखर नष्ट करके ये चले आये।" यह सब चरित्र सुनकर रामने, वट-पेड़के बरोहकी तरह विशाल अपनी भुजाओंसे हनुमानका आलिङ्गन कर लिया ॥१-६॥

●

छप्पनवीं संधि

हनुमानके आने और सूर्योदय होनेपर दशरथ-कुल उत्पन्न रामने गरजकर रावणके ऊपर अभियान किया।

[१]

हयाणन्द-भेरी दर्डा दिण्ण सङ्खा । करप्फालियाणेय-तूराण लक्खा ॥१॥
जयं णन्दणं णन्दिघोसं सुघोसं । सुहं सुन्दरं सोहणं देवघोसं ॥२॥
वरङ्गं वरिट्ठं गहीरं पहाणं । जणाणन्द-तूरं सिरीवड्ढमाणं ॥३॥
सिघं सन्तियत्थं सुकल्लाण-धेयं । महामङ्गलत्थं णरिन्दाहिसेयं ॥४॥
पसण्णज्झुणी दुन्दुही णन्दिसद्दं । पवित्तं पसत्थं च भद्दं सुभद्दं ॥५॥
विवाहप्पियं पत्थिवं णायरीयं । पयाणुत्तमं वड्ढणं पुण्डरीयं ॥६॥
मङ्गल-तूरइँ णामेँहिँ एएँहिँ । पुणु अण्णण्णइँ अण्णेँहिँ भेएँहिँ ॥७॥
डउँडउँ-डउँउउँ-डमरुअ-सद्देँहिँ । तरडक-तरडक-तरडक-णद्देँहिँ ॥८॥
धुम्मुकु-धुम्मुकु-धुम्मुकु-तालेँहिँ । रुं-रुं-रुं-रुअन्त-वमालेँहिँ ॥९॥
तक्किस-तक्किस-सरेँहिँ मणोज्जेँहिँ । दुणिकिटि-दुणिकिटि-थरिमदि-वज्जेँहिँ ॥
गेग्गदु-गेग्गदु-गेग्गदु-घाएँहिँ । एयाणेय-भेय-संघाएँहिँ ॥११॥

घत्ता

तं तूरहँ सद्दु सुणेप्पिणु राहव-साहणु संमिलइ ।
सरि-सोत्तेँहिँ आवेँवि आवेँवि सलिलु समुद्दहों जिह मिलइ ॥१२॥

[२]

सण्णद्धु कइद्धय-पवर-राउ । सण्णद्धु अङ्गु अङ्गय-सहाउ ॥१॥
सण्णद्धु हणुउ पहरिस-विसट्टु । रावण-णन्दणवण-मइयवट्टु ॥२॥
सण्णद्धु गवउ अण्णु वि गवक्खु । जम्बुण्णउ दहिमुहु दुण्णिरिक्खु ॥३॥
सण्णद्धु विराहिउ सोहणाउ । सण्णद्धु कुन्दु कुमुएं सहाउ ॥४॥
सण्णद्धु णीलु णलु परिमियङ्गु । सण्णद्धु सुसेणु इ रणेँ अभङ्गु ॥५॥
सण्णद्धु सीहरहु रयणकेसि । सण्णद्धु वालि-सुउ चन्दरासि ॥६॥
सण्णद्धु स-तणउ महिन्दराउ । भड्डु लच्छिभुत्ति पिहुमइ-सहाउ ॥७॥
चन्दप्पहु चन्दरीचि अण्णु । सण्णद्धु असेसु वि राम-सेण्णु ॥८॥

[१] डण्डोंसे आनन्द-भेरी बज उठी, शंख बजने लगे और लाखों तूर्य हाथोंसे आस्फालित हो उठे। उनमें मङ्गल तूर्योंके नाम थे—जय, नन्दन, नन्दिघोष, सुघोष, शुभ, सुन्दर, सोहन, देवघोष, वरङ्ग, वरिष्ठ, गम्भीर, प्रधान, जनानन्द, श्रीवर्धमान, शिव, शान्ति, अर्थ, ?? सुकल्याण, महामङ्गलार्थ, नरेन्द्राभिषेक, प्रसन्न-ध्वनि, दुन्दुभि, नन्दीघोष, पवित्र, प्रशस्त, भद्र-सुभद्र, विवाह प्रिय, पार्थिव नागरीक—प्रयाणोत्तम, वर्धन और पुण्डरीक। इनके सिवा और भी तरह-तरहके तूर्य थे। डउँ-डउँ-डउँ, डमरु शब्द, तरडक-तरडक नाद, घुम्मुक-घुम्मुक ताल, रूँ-रूँ-रूँ कल-कल, तक्किस-तक्किस मनोहर स्वर, दुणिकिटि, दुणिकिटि, वाद्य और गेग्गदु-गेग्गदु-घात इत्यादि अनेक भेद संघातोंसे युक्त तूर्य बज उठे। उन तूर्योंके शब्दको सुनकर राघवकी सेना वैसे ही इकट्ठी होने लगी, जैसे नदियोंके स्रोत आकर समुद्रमें मिलते हैं ॥१–१२॥

[२] कपिध्वज नरेश सुग्रीव तैयार होने लगा। अङ्गदके साथ अङ्ग भी सन्नद्ध हो गया। विशेष हर्षसे रावणके नन्दन वनको उजाड़नेवाला हनुमान भी तैयारी करने लगा, गवय और गवाक्ष सन्नद्ध होने लगे, जाम्बवंत और दुदर्शनीय दधिमुख भी तैयार होने लगे। विराधित और सिंहनाद भी तैयार होने लगे। कुमुद सहाय कुंद तैयार होने लगे, परिमिताङ्ग नल और नील तैयार होने लगे। सिंह रथ और रत्नकेशि तैयार होने लगे। बालि पुत्र भी तैयार होने लगा। अपने पुत्रके साथ राजा महेंद्र तैयार होने लगा। लक्ष्मीभुक्ति और पृथुमति भी तैयार होने लगे, और भी चन्द्रप्रभ, चन्द्रमरीची आदि तैयार होने लगे। इस तरह रामकी अशेष सेना सन्नद्ध हो उठी। एक ओर तैयार

घत्ता

अण्णेक्कु वि सण्णज्झन्तउ उप्परि जय-सिरि-माणणहोँ ।
लक्खिज्जइ लक्खणु कुद्धउ णं खय-कालु दसाणणहोँ ॥६॥

[३]

अण्णेक्क सुहण सण्णद्ध के वि । णिय-कन्तहँ आलिङ्गणउ देवि ॥१॥
अण्णेक्कहोँ धण तम्बोलु देइ । अण्णेक्कु समप्पियउ वि ण लेइ ॥२॥
'मइँ कन्तेँ समाणेव्वउ दलेहिँ । गय-पण्णेँहिँ रहवर-पोप्फलेहिँ ॥३॥
णरवर - संचूरिय - चुण्णएण । रिउ-जय-सिरि-वहुअए दिण्णएण' ॥४॥
अण्णेक्कहोँ जाइँ सु-कन्त देइ । ओहुल्लइँ फुल्लइँ णरु ण लेइ ॥५॥
'ण समिच्छमि हउँ तुहुँ लेहि भज्जेँ । एत्तिउ सिरु णिवडइ सामि-कज्जेँ' ॥६॥
अण्णेक्कहोँ धण भूसणउ देइ । अण्णेक्कु तं पि तिण-समु गणेइ ॥७॥
'किं गन्धेँ किं चन्दण-रसेण । मइँ अङ्गु पसाहेव्वउ जसेण' ॥८॥

घत्ता

अण्णेक्कहोँ धण अप्पाहइ 'हिम-ससि-सङ्खसमुज्जलइँ ।
करि-कुम्भइँ णाह दलेप्पिणु आणेज्जहि मुत्ताफलइँ' ॥६॥

[४]

अण्णेक्केत्तहँ वि सुहङ्कराइँ । सज्जियइँ विमाणइँ सुन्दराइँ ॥१॥
घण्टा - टङ्कार - मणोहराइँ । रुण्टन्त - मत्त - महुअर-सराइँ ॥२॥
ससि - सूरकन्त- कर- णिब्भराइँ । वहु- इन्दणील- किय- सेहराइँ ॥३॥
पवलय - माला - रङ्खोलिराइँ । मरगय- रिञ्छोलि- पसोहिराइँ ॥४॥
मणि - पउमराय - वण्णुज्जलाइँ । वेडुज्ज - वज्ज - पह- णिम्मलाइँ ॥५॥
मुत्ताहल - माला - धवलियाइँ । किङ्किणि-घग्घर-सर- मुहलियाइँ ॥६॥
धुव्वंत - धवल - धुअ - धयवडाइँ । वज्जन्त - सङ्ख - सय- सङ्कडाइँ ॥७॥

होता हुआ क्रुद्ध लक्ष्मण ऐसा जान पड़ता था, मानो जयश्रीके अभिमानी रावणके ऊपर क्षयकाल ही आ रहा हो ॥१–९॥

[३] कोई-कोई सुभट अपनी पत्नियोंको आलिङ्गन देकर सन्नद्ध हो गये। किसी एकको उसको धन्या पान दे रही थी, कोई एक अर्पित भी उसे ग्रहण नहीं कर रहा था। उसका कहना था कि आज मैं सैन्यदलों, गजवरों, रथवरों, पोप्फलों और विजय लक्ष्मीरूपी वधू द्वारा दिये गये, नरवरोंसे सञ्चूर्णित चूर्णकसे अपने आपको सम्मानित करूँगा। किसी एकको उसकी पत्नी खिले हुए फूलोंकी मालती माला दे रही थी, परन्तु वह यह कहकर नहीं ले रहा था, कि मैं इसको नहीं चाहता। आर्ये, तुम्हीं इसे ले लो, मेरा यह सिर तो आज स्वामीके काममें ही निपट जायगा। किसी एकको उसकी पत्नी आभूषण दे रही थी, परन्तु वह उसे तृणके समान समझ रहा था। उसने कहा, 'क्या गंधसे और क्या रससे ? मैं यशसे अपने तनको मण्डित करूँगा।' किसी एककी पत्नीने यह इच्छा प्रकट की कि हे नाथ, तुम गज-कुम्भोंको फाड़कर हिम, चन्द्र और शंखकी तरह उज्ज्वल मोतियोंको अवश्य लाना ॥१–९॥

[४] एक ओर शुभङ्कर सुन्दर विमान सजने लगे, जो घण्टोंकी टंकारसे सुन्दर, रुन-झुन करते हुए भौंरोंकी झंकारसे युक्त थे। चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त मणियोंकी किरणोंसे व्याप्त थे। उनके शिखर इन्द्रनील मणियोंके बने थे। लटकती हुई मालाओंसे जो आन्दोलित, हीरोंको पंक्तियोंसे शोभित, पद्मराग मणियोंसे उज्ज्वल, वैदूर्य और वज्र मणियोंकी प्रभासे निर्मल, मोतियोंकी मालासे धवल, किंकिणियोंकी घर-घर ध्वनिसे मुखरित थे। कम्पित पताकाएँ उनके ऊपर फहरा रही थीं। सैकड़ों

सुग्गीवें रयणुज्जोवियाइँ । विहिँ विण्णि विमाणइँ ढोइयाइँ ॥८॥

घत्ता

वन्दिण-जण-जय - जयकारेँण लक्खण - रामारूढ किह ।
सुर-परिमिय-पवर-विमाणेँहिँ वेण्णि वि इन्द-पडिन्द जिह ॥९॥

[५]

अणेक्क - पासेँ किय सारि - सज्ज । सुविसाल- सुघण्टा-जुवल-गेज्ज ॥१॥
अलि - झङ्कारिय गय - घड पयट्ट । विहलङ्घल णिब्भर-मय-विसट्ट ॥२॥
सिन्दूर - पङ्क - पङ्किय - सरीर । सिक्कार - फार- गज्जण - गहीर ॥३॥
उम्मेट्ठ णिरङ्कुस जाइ थाइ । मल्हन्ति मणोहर वेस णाइँ ॥४॥
अण्णेक्क - पासेँ रह रहिय - थट्ट । चूरन्त परोप्परु पहेँ पयट्ट ॥५॥
स-तुरङ्ग स-सारहि स-कइचिन्ध । णाणाविह- वर- पहरण- समिद्ध ॥६॥
अणेक्क - पासेँ वल - दरिसणाइँ । वज्जन्त - तूर - सर - भीसणाइँ ॥७॥
आयड्ढिय - चाव - महासराइँ । उग्गामिय-भामिय - असिवराइँ ॥८॥

घत्ता

अण्णेक्क-पासेँ हिंसन्तउ हयवर-साहणु णीसरइ ।
सुकलत्तु जेम्व मुकुलीणउ पय-संचारु ण वीसरइ ॥९॥

[६]

अण्णेक्केत्तहेँ अण्णेक्क वीर । गज्जन्ति समर - संघट्ट - धीर ॥१॥
एक्केण वुत्तु 'सोसमि समुद्दु' । अण्णेक्कु भणइ 'महु णिसियरिन्दु'॥२॥
अण्णेक्कु भणइ 'हउँ धरमि सेण्णु' । अण्णेक्कु भणइ 'महु कुम्भयण्णु ॥३॥
अण्णेक्कु भणइ 'महु मेहणाउ' । अण्णेक्कु भणइ 'महु भड-णिहाउ ॥४॥
अण्णेक्कु भणइ 'भो णिसुणि मित्त । हउँ वलहोँ स-हत्थेँ देमि कन्त' ॥५॥
अण्णेक्कु भणइ 'किं गज्जिएण । अज्ज वि सङ्गाम - विवज्जिएण ॥६॥

शंख बज रहे थे। इस तरह सुग्रीव रत्नोंसे दीप्त दो विमानोंमें राम और लक्ष्मणको ले गया। बन्दियोंके जय-जयकार शब्दके साथ, विमानमें बैठे हुए राम और लक्ष्मण ऐसे मालूम होते थे मानो देवोंसे घिरे हुए प्रवर विमानोंके साथ, इन्द्र और प्रतीन्द्र हों ॥१-६॥

[५] कितने ही के पास, अंबारीसे सजी हुई, सुविशाल सुन्दर घण्टायुगलसे गाती हुई गजघटा थी। जो भौंरोंसे झंकृत, विह्वलांग और परिपूर्ण मदसे विशिष्ट थी। सिंदूरके पंखसे उसका शरीर पंकिल था और जो शीत्कारके स्फार और गर्जनसे गम्भीर थी। महावतसे रहित और निरंकुश वह वेश्याकी भाँति सुन्दर रूपसे मल्हाती हुई जा रही थी। कईके पास रथ और रथियोंके समूह एक दूसरेको चूर-चूर करते हुए चल पड़े। वे अश्वों, सारथी कपिध्वज और तरह-तरहके अस्त्रोंसे समृद्ध थे। कईके पास पैदल सेना थी, जो बजते हुए तूणीरों और बाणोंसे भयङ्कर थी। महा धनुषोंसे सहित थी। वह, उत्तम खड्गोंको निकालकर घुमा रही थी। कईके पाससे हींसती हुई उत्तम अश्वोंकी सेना निकली। वह सुकलत्रकी तरह सुकुलीन और पदसंचारको नहीं भूल रही थी ॥१-६॥

[६] एक ओर, समरकी भिडन्तमें धीर, वीर योधा गरज रहे थे। एकने कहा "मैं समुद्र सोख लूँगा।" एक और ने कहा, "मैं निशाचरराजका शोषण करूँगा।" एक औरने कहा, "मैं सेनाको पकड़ लूँगा।" एक औरने कहा, "मैं कुम्भकर्णको पकड़ूँगा।" एक औरने कहा, "मैं मेघनादको"। एक औरने कहा– "मैं भटसमूहको पकड़ूँगा।" एक औरने कहा, "हे मित्र! सुनो। मैं अपने हाथसे सीता रामके हाथमें दूँगा।" एक औरने कहा,

सयलु वि जाणिजइ तहिँ जि कालेँ। पर-वलेँ ओवडियएँ सामि-सालेँ' ॥७॥
अण्णेक्कु वीरु णिय-मणेँ विसण्णु। 'मइँ सामिहेँ अवसरेँ काइँ दिण्णु ॥८॥

घत्ता

अण्णेक्कु सुहडु ओवग्गइ अग्गएँ थाएँ वि हलहरहोँ।
'जं वूढउ मइँ सिरु खन्धेँण तं होसइ पहु अवसरहोँ' ॥९॥

[७]

अण्णेक्क - पासेँ सुविसालियाउ। विज्जउ विज्जाहर - पालियाउ ॥१॥
पण्णत्ती वहुव - विरूविणी। वेयाली णहयल - गामिणी ॥२॥
थम्भणियाकरिसणि मोहणी ॥३॥
सामुद्दी रुद्दी केसवी। भुवइन्दी खन्दी वासवी ॥४॥
वम्भाणी रउरव - दारुणी। णेरित्ती वायव - वारुणी ॥५॥
चन्दी सूरी वइसाणरी। मायङ्गि मयन्दी वाणरी ॥६॥
हरिणी वाराहि तुरङ्गमी। वल - सोसणि गरुड - विहङ्गमी ॥७॥
पव्वइ मयरद्धय - रूविणी। आसाल - विज्ज वहु - रूविणी ॥८॥

घत्ता

सण्णद्धु असेसु वि साहणु रामहोँ सुग्गीवहोँ तणउ।
णं जम्बूदीउ पयट्टउ लङ्कादीवहोँ पाहुणउ ॥९॥

[८]

संचल्लेँ णिय - वंसुब्भवेण। दिट्ठइँ सु-णिमित्तइँ राहवेण ॥१॥
गन्धोवउ चन्दणु सिद्ध - सेस। जिण पुज्जेँ वि वाहु सुवेस वेस ॥२॥
दप्पणउ सु-सङ्खु सु - सहसवत्तु। णिग्गन्थ - रूउ पण्डुरउ छत्तु ॥३॥
पण्डुरउ हत्थि पण्डुरउ भमरु। पण्डुरउ तुरउ पण्डुरउ चमरु ॥४॥

"अरे अभीसे संग्रामके बिना ही गरजनेसे क्या, यह सब उसी समय जाना जायगा, जब स्वामिश्रेष्ठ राम शत्रु-सेनाको विघटित करेंगे।" एक और वीर यह सोचकर अपने मनमें खिन्न हो गया, कि मैंने स्वामीके लिए अवसर क्यों दिया। एक और सुभट, रामके आगे खड़ा होकर गरज उठा, "जब मेरा सिर युद्धमें उड़ जायगा, तभी प्रभुका अवसर पूरा होगा" ॥१-६॥

[७] एक और सुभटके पास विद्याधरों द्वारा साधित विद्याएँ थीं। पण्णत्ती, बहुरूपिणी, वैताली, आकाशतलगामिनी, स्तम्भिनी, आकर्षणी, मोहिनी, सामुद्री, रुद्री, केशवी, भोगेन्द्री, खन्दी, वासवी, ब्रह्माणी, रौरवदारिणी, नैर्ऋति, वायवी, वारुणी, चन्द्री, सूरी, वैश्वानरी, मातंगी, मृगेन्द्री, वानरी, हरिणी, वाराही, तुरंगमी, बलशोषणी, गारुड़ी, पव्वई ??, कामरूपिणी, बहुरूपकारिणी और आशाली विद्या। इस प्रकार राम और सुग्रीवकी सेना सन्नद्ध हो गई। मानो जम्बूद्वीप ही लंकाद्वीपका अतिथि होना चाह रहा था ॥१-६॥

[८] अपने कुलमें उत्पन्न होनेवाले रामके चलते ही, शुभ शकुन दिखाई दिये। जैसे गन्धोदक, चन्दन, सिद्ध, शेष (नाग), जिनपूजा करके व्याध ? और उत्तम वेशवाला दर्पण, शंख, सुन्दर कमल, नग्न साधु, सफेद छत्र, सफेद गज, सफेद भ्रमर, सफेद अश्व और सफेद चमर। सब अलंकारोंको पहने

सव्वालङ्कार पवित्त णारि। दहि-कुम्भ-विहत्थी वर-कुमारि ॥५॥
णिद्धूमु जलणु अणुकूलु वाउ। पियमेलावउ कुलुगुलइ काउ ॥६॥
सुणिमित्तइँ णिएँवि जसुण्णएण। वलएउ वुत्तु जम्वुण्णएण ॥७॥
'धण्णोऽसि देव तउ सहलु गमणु। आयइँ सु-णिमित्तइँ लहइ कवणु ॥८॥

घत्ता

विहसेप्पिणु वुच्चइ रामेँण सइ सु-णिमित्तइँ जन्ताहुँ।
जग-लग्गण-खम्भु भडारउ जिणवरु हियएँ वहन्ताहुँ ॥९॥

[९]

संचल्लें राहव - साहणेण। संघट्टिउ वाहणु वाहणेण ॥१॥
चिन्धेण चिन्धु रहु रहवरेण। छत्तेण छत्तु गउ गयवरेण ॥२॥
तुरएण तुरङ्गमु णरु णरेण। चलणेण चलणु करयलु करेण ॥३॥
वलु रण - रहसड्ढिउ णहेँ ण माइ। संचल्लिउ देवागमणु णाइँ ॥४॥
थोवन्तरे दिट्ठु महा - समुद्दु। सुंसुअर - मयर - जलयर - रउद्दु ॥५॥
मच्छोहर - णक्क - ग्गाह - घोरु। कल्लोलावन्तु तरङ्ग - थोरु ॥६॥
वेला - वड्ढन्तु पदूहणन्तु। फेणुज्जल - तोय - तुसार देन्तु ॥७॥
तहोँ उवरि पयट्टउ राम-सेण्णु। णं मेह-जालु णहयलें णिसण्णु ॥८॥

घत्ता

णरवइहिँ विमाणारूढेंहिँ लङ्घिउ लवण-समुद्दु किह।
सिद्धेंहिँ सिद्धालउ जन्तेंहिँ चउगइ-भव-संसारु जिह ॥९॥

[१०]

थोवन्तरेँ तहोँ सायरहोँ मज्झेँ। वेलन्धर-पुरेँ तियसहँ असज्झेँ ॥१॥
विज्जाहर सेउ - समुद्द वे वि। थिय अग्गएँ दारुणु जुज्झु देवि ॥२॥
'मरु तुम्हहँ कुइउ कयन्तु अज्जु। को सक्कइ सक्कहोँ हरेँवि रज्जु ॥३॥
को पइसइ भीसणेँ जलण-जालेँ। को जीवइ ढुक्कएँ पलय - कालेँ ॥४॥

हुए पवित्र नारी। हाथमें दहीका घड़ा लिये हुए उत्तम कन्या, निर्धूम आग, अनुकूल पवन, और प्रियसे मिलाने वाला, कौएका काँव-काँव शब्द। इन्हें देखकर यशसे उन्नत जाम्बवन्तने रामसे कहा, "हे देव! आप धन्य हैं, आपका यह गमन सफल है, भला इतने सुनिमित्त किसे मिलते हैं।" तब रामने हँसकर कहा, "विश्वके आधार स्तम्भ भट्टारक जिनको हृदयमें धारणकर यात्रा करनेसे ही ये सुनिमित्त अपने आप हुए" ॥१-८॥

[९] रामकी सेनाके प्रस्थान करते ही, वाहनसे वाहन टकराने लगे, चिह्नसे चिह्न, रथवरसे रथ, छत्रसे छत्र, गजवरसे गजवर, तुरगसे तुरग, नरसे नर, चरणसे चरण, करतलसे करतल भिड़ने लगे। रण-रससे भरी हुई सेना आकाशमें नहीं समा सकी, वह देवागमनके समान जा रही थी! थोड़ी दूरपर उन्हें महासमुद्र दीख पड़ा। वह शिंशुमार, मगर और जलचरोंसे रौद्र था। मच्छधर, नक्र और ग्राहसे घोर, और स्थूल तरंगोंसे तरंगित था। फेनसे उज्ज्वल तोय और तुषारसे युक्त उसका बहुत बड़ा तट था ?? रामकी सेना उसपर ठहर गई मानो मेघ जाल ही नभतलमें ठहर गया हो। विमानोंपर आरूढ़ राजाओंने लवण समुद्र उसी तरह लाँघ लिया जैसे सिद्धालयको जाते हुए सिद्ध चार गतियों वाले भव-संसारका अतिक्रमण कर जाते हैं ॥१-९॥

[१०] उस सागरके मध्यमें थोड़ी दूरपर, देवोंको भी असाध्य वेलंधर नगर था, उसमें रहने वाले सेतु और समुद्र नामके दोनों विद्याधर भयंकर युद्ध करनेके लिए आगे आकर स्थित हो गये। उन्होंने कहा, "मरो, तुमपर आज कृतांत क्रुद्ध हुआ है। इन्द्रका राज्य कौन हरण कर सकता है, भीषण ज्वालमालामें कौन

को सेस-फणा-मणि - रयणु लेइ। को लङ्कहें अहिमुहु पउ वि देइ' ॥५॥
चच्चारिय समय वि अमरिसेण। 'अहों किक्किन्धाहिव अहों सुसेण ॥६॥
अहों कुमुअ कुन्द सुणि मेहणाय। णल णील विराहिय पवण-जाय ॥७॥
दहिमुह माहिन्द महिन्द-राय। अवर वि जे णरवर के वि आय ॥८॥

घत्ता

लइ वलहों वलहों जइ सक्कहों देवाइय पारक्कऍहिँ।
कहिँ लङ्का-उवरि पयाणउ सेउ-समुद्दहिँ थक्कऍहिँ' ॥९॥

[११]

एत्थन्तरॆं जयसिरि - लाहवेण। सुग्गीउ पपुच्छिउ राहवेण ॥१॥
'एए जे दणु दीसन्ति के वि। कसु केरा थिय पहरणइँ लेवि' ॥२॥
तं वयणु सुणेंवि पणमिय-सिरेण। पुणु पुणु थोत्तुग्गारिय - गिरेण ॥३॥
सुग्गीवें पभणिउ रामचन्दु। 'एँहु सेउ भडारा एँहु समुद्दु ॥४॥
दहवयणहों केरउ णामु लेवि। पाइक्काचारें थक्क वे वि ॥५॥
आयहुँ पडिमल्लु ण को वि समरॆं। जइ दिन्ति जुज्झु णल-णील णवरॆं' ॥६॥
तं णिसुणेंवि रामहों हियउ भिण्णु। णिद्दिसेण विहि मि आएसु दिण्णु ॥७॥
पणिवाउ करेप्पिणु ते पयट्ट। रोमञ्च - उच्च - कञ्चुअ - विसट्ट ॥८॥

घत्ता

णलु धाइउ समुद्दु समुद्दहों सेउहेँ णीलु समावडिउ।
गउ गयहों मइन्दु मइन्दहों जिह ओरालेंवि अब्भिडिउ ॥९॥

[१२]

ते भिडिय परोप्परु रणें रउद्द। विज्जाहर वेण्णि वि णल-समुद्द ॥१॥
विण्णाणेंहिँ करणेंहिँ करुहेहिँ। अण्णेहिँ असेसेंहिँ आउहेहिँ ॥२॥

प्रवेश कर सकता है। प्रलयके आनेपर कौन बच सकता है। शेषनागके फनसे मणि कौन तोड़ सकता है। लंकाके सम्मुख कौन पग बढ़ा सकता है।" अमर्षसे भरकर सब लोगोंको सम्बोधित करते हुए उन्होंने और भी कहा—"अरे किष्किंधा-नरेश, अरे सुषेण, अरे कुमुद, कुन्द, मेघनाद, नल, नील, विराधित, पवनजात, दधिमुख, माहेन्द्र, महेन्द्रराज, सुनो, और भी जो-जो नरपति हैं वे भी सुनें। यदि सम्भव हो तो शत्रुजनोंसे नम्र होकर आप लौट जायँ। सेतु और समुद्रके रहते हुए आपका लंकाके प्रति प्रस्थान कैसा ?" ॥१–९॥

[११] इसी अन्तरमें जयश्रीके लिए शीघ्रता करनेवाले रामने सुग्रीवसे पूछा—"ये जो राक्षस हथियार लिये हुए दिखाई दे रहे हैं। वे किसके अनुचर हैं।" यह सुनकर नतमस्तक सुग्रीवने स्तुति-वचन पूर्वक रामसे कहा—"आदरणीय, ये सेतु और समुद्र, विद्याधर हैं, ये यहाँ रावणका नाम लेकर, सेवावृत्तिमें नियुक्त हैं। युद्धमें इनका प्रतिद्वंद्वी कोई नहीं है। केवल नल और नील इनके प्रति युद्ध कर सकते हैं।" यह सुनकर रामका हृदय खिन्न हो गया। उन्होंने तत्काल उन दोनोंको आदेश दिया। वे भी रामको नमस्कार करके, पुलकके कारण ऊँचे कंचुकोंसे विशिष्ट होकर लड़ने लगे। नल समुद्रके सम्मुख दौड़ा और नील सेतुसे जा भिड़ा, वैसे ही जैसे गजराज गजराजसे और हाथी हाथीसे जा भिड़ते हैं ॥१–९॥

[१२] रणमें भयङ्कर वे आपसमें भिड़ गये, दोनों विद्याधर और दोनों नल तथा समुद्र। विज्ञानकरण कररुह तथा और भी दूसरे समस्त आयुधोंसे वे प्रहार करने लगे। दोनोंके चेहरे

पहरन्ति धन्ति विप्फुरिय-वयण । रत्तुप्पल-दल - सारिच्छ - णयण ॥३॥
एत्थन्तरें रावण-किङ्करेण । मेल्लिय मयरहरी विज्ज तेण ॥४॥
धाइय गज्जन्ति पगुलुगुलन्ति । वेला-कल्लोलुल्लोल देन्ति ॥५॥
एत्तहें वि णलेण विरुद्धएण । समरङ्गणें जयसिरि-लुद्धएण ॥६॥
आयामॅवि महिहर-विज्ज मुक्क । जलु सयलु वि पडिपूरन्ति ढुक्क ॥७॥
तं माया-सायरु दरमलेवि । विज्जाहर-करणें उल्ललेवि ॥८॥

घत्ता

णलु उप्परि डीणु समुद्दहों णीलु वि सेउहें सिर-कमलें ।
बिहिं वेण्णि मि मण्ड धरेप्पिणु घल्लिय रामहों पय-जुअलें ॥९॥

[१३]

सेउ-समुद्द मे वि जं आणिय । णल-णीलेंहिं समाणु सम्माणिय ॥१॥
तेहि मि पवर पसाहॅवि कण्णउ । तहों लक्खणहों स-हत्थें दिण्णउ ॥२॥
सव्वसिरी कमलच्छि विसाला । अण्ण वि रयणचूल गुणमाला ॥३॥
पञ्च वि कण्णउ देवि कुमारहों । थिय पाइक्क सीय-भत्तारहों ॥४॥
एक्क रयणि गय कह वि विहाणउ । पुणु अरुणुग्गमें दिण्णु पयाणउ ॥५॥
साहणु पत्तु सुवेलु महीहरु । तहि मि सुवेलु णवर विज्जाहरु ॥६॥
धाइउ जिह गइन्दु ओरालॅवि । भीसणु करें धणुहरु अप्फालॅवि ॥७॥
भिडइ ण भिडइ रणङ्गणें जावॅहिं । सेउ-समुद्देहिं वारिउ तावॅहिं ॥८॥

घत्ता

एएँहिं समाणु जुज्झन्तहें जइ पर-जणवएँ जम्पणउ ।
पडु पाएँहिं राहवचन्दहों मं मारावहि अप्पणउ ॥९॥

[१४]

वलएवहों पणमिउ ता सुवेलु । णं पढम-जिणहों सेयंस-धवलु ॥१॥
णिसि एक्क वसॅवि संचल्लु सेण्णु । णं पक्कय-वणु धुवगाय-छण्णु ॥२॥

तमतमा रहे थे और नेत्र रक्तकमलकी तरह आरक्त थे। इसी बीचमें रावणके अनुचरने मकरहरी (सामुद्री) विद्या छोड़ी। वह गरजती, गुल-गुल करती और तटपर तरंगोंका समूह उछालती हुई दौड़ी, तब इधर युद्धके प्रांगणमें जयश्रीके लोभी, नलने विरुद्ध होकर, सामर्थ्यके साथ महीधर विद्याका प्रयोग किया। वह समस्त जलको समाप्त करती हुई पहुँची। इस प्रकार उस माया समुद्रको नष्टकर और विद्याधरकरणसे उसे उन्मूलन कर ?? नलने समुद्रके ऊपर और नीलने सेतुके ऊपर उड़कर, उनके सिरकमलको बलपूर्वक पकड़कर, रामके चरणोंमें रख दिया ॥१-९॥

[१३] जब उन्होंने सेतु और समुद्रको ला दिया तो रामने उन दोनोंका समान रूपसे आदर किया। उन्होंने भी प्रसन्न होकर अपने हाथसे कुमार लक्ष्मणको अपनी सत्यश्री, कमलाक्षी, विशाला, रत्नचूला और गुणमाला, ये पाँच कन्याएँ देकर सीतापति रामकी सेवा स्वीकार कर ली। एक रात बीतनेपर जैसे ही प्रभात हुआ, सूर्योदय होने पर रामने कूच कर दिया। तब उनकी सेनाको सुबेल पहाड़ मिला। उसपर भी सुबेल नामक एक विद्याधर था। वह गजकी तरह गरजकर, अपने भयङ्कर धनुषकी टंकारकर दौड़ा। लेकिन जब तक वह युद्ध-प्रांगणमें लड़े या न लड़े, तब तक सेतु और समुद्रने उसका निवारण कर दिया। उन्होंने कहा, "जो दूसरे जनपदमें जाकर इस प्रकार युद्ध कर रहा है, उस रामके पैरोंपर गिर पड़ो। अपना घात मत करो" ॥१-६॥

[१४] तब विद्याधर सुबेलने रामको उसी तरह प्रणाम किया जिस तरह राजा श्रेयांसने प्रथम जिन ऋषभ देवको किया था। एक रात वहाँ टिककर सेना चल पड़ी, मानो वह ध्रुवगाय छन्नु (गायक और-भ्रमरोंसे सहित) कमलवन ही था। मानो जिनका

णं लीलए जिण-समसरणु जाइ । पुणुरुत्तेंहिँ देवागमणु णाइँ ॥३॥
थोवन्तरु वलु चिक्कमइ जाम । लक्खिज्जइ लङ्काणयरि ताम ॥४॥
आरामेंहिँ सीमेंहिँ सरवरेंहिँ । वहु-णन्दणवणेंहिँ मणोहरेहिँ ॥५॥
पायार-वार - गोउर - घरेहिँ । रह-तिक्क-चउक्केंहिँ चच्चरेहिँ ॥६॥
कामिणि-मन्दिरेंहिँ सुहावणेहिँ । चउहट्टेंहिँ टेण्टेंहिँ आवणेहिँ ॥७॥
दीहिय-विहार - चेइय - हरेहिँ । धुव्वन्तेहिँ चिन्धेहिँ दीहरेहिँ ॥८॥

घत्ता

धय-णिवहु पवण-पडिकूलउ दूरत्थेहिँ विहावियउ ।
णं लक्खण-रामागमणेण रामण-मणु डोल्लावियउ ॥९॥

[१५]

जं दिट्ठ लङ्क विज्जाहरेहिँ । किउ हंसदीवे आवासु तेहिँ ॥१॥
हंसरहु रणङ्गणे णिज्जिणेवि । णं थिय रिउ-सिरें असि णिक्खणेवि ॥२॥
आवासिय भड पासेइयङ्ग । रह मेल्लिय उज्जोत्तिय तुरङ्ग ॥३॥
खञ्चियइँ विमाणइँ वद्ध गोण । सण्णाह विमुक्क स-कवय-तोण ॥४॥
णाणाविह-विज्जाहर - समूहु । णं हंसदीवेँ थिउ हंस-जूहु ॥५॥
सहुँ वम्भें रुद्दें केसवेण । णं मुक्कु पयाणउ वासवेण ॥६॥
तहिँ सुहड के वि पभणन्ति एव । 'जुज्झेव्वउ सुन्दरु अज्जु देव' ॥७॥
अण्णेक्कु भणइ 'भो भीरु-चित्त । उत्तावलिहूअउ काइँ मित्त' ॥८॥

घत्ता

अणेक्क के वि णिय-भवणेंहिँ समउ कलत्तेंहिँ सुहु रमहिँ ।
आराहेंवि अच्चेंवि पुज्जेंवि जिणु पणमन्ति स इं भु एँ हिँ ॥९॥

मुन्दर-कण्डं समत्तं

●

समब शरण जा रहा था और उसमें बार-बार देवागमन हो रहा था। थोड़ा और चलनेपर उन्हें लंकानगरी दीख पड़ी। आराम सीमा सरोवर प्रचुर सुन्दर नन्दन वन, प्राचीर द्वार, गोपुर, घर, रथ, मार्ग, चतुष्पथ, राजस्थान, सुहावने कामिनी-प्रासाद, चौहट्ट, टँट, बाजार, विशाल चैत्यगृह, विहार तथा फहराते हुए, बड़े-बड़े ध्वजोंसे वह शोभित हो रही थी। विपरीत हवामें उड़ता हुआ ध्वज-समूह दूरसे ऐसा शोभित हो रहा था मानो राम और लक्ष्मणके आनेपर, रावणका मन ही डगमगा रहा हो ॥१-६॥

[१५] विद्याधरोंने लंकाद्वीपको देखकर, हंस द्वीपमें अपना डेरा डाल दिया। उसके अधिपति हंसरथको युद्ध-प्रांगणमें जीतकर, मानो उन्होंने शत्रुके सिरपर तलवार ही मार दी थी। पसीनेसे लथपथ भट ठहर गये। रथ छोड़ दिये गये और अश्व ढील दिये गये। रथ एक पांतमें रक्खे हुए थे। बखतर, और सकवच, तूणीर उतार दिये गये। नाना प्रकारके विद्याधरोंके समूह उस हंस द्वीपमें हंसोंके झुण्डोंकी भाँति ठहर गये। मानो स्वयं इन्द्रने ब्रह्मा, रुद्र और केशवके साथ प्रयाण छोड़ दिया हो। वहाँपर कितने ही योधा कह रहे थे, "देव, मैं आज सुन्दरतासे युद्ध करूँगा"। तब एक योधाने कहा, "अरे मित्र, इतनी उतावली क्यों कर रहे हो", और दूसरे कितने ही योद्धा अपनी पत्नियोंके साथ, अपने-अपने भवनोंमें सुखसे रमण कर रहे थे। कितने ही जिनकी आरा धना, अर्चा तथा पूजा करके अपने हाथों उन्हें प्रणाम कर रहे थे ॥१-६॥

सुन्दर काण्ड समाप्त

●

हमारे सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

उर्दू शायरी

१.	शेर-ओ-शायरी	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
२.	शेर-ओ सुख़न [भाग १]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
३.	शेर-ओ-सुख़न [भाग २]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
४.	शेर-ओ-सुख़न [भाग ३]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
५.	शेर-ओ-सुख़न [भाग ४]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
६.	शेर-ओ-सुख़न [भाग ५]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)

कविता

७.	वर्द्धमान [महाकाव्य]	श्री अनूप शर्मा	६)
८.	मिलन-यामिनी	श्री बच्चन	४)
९.	धूपके धान	श्री गिरिजाकुमार माथुर	३)
१०.	मेरे बापू	श्री हुकमचन्द्र बुखारिया	२॥)
११.	पञ्च-प्रदीप	श्री शान्ति एम० ए०	२)

ऐतिहासिक

१२.	खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
१३.	खोजकी पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
१४.	चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशङ्कर व्यास	४)
१५.	कालिदासका भारत [भाग १-२]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	८)
१६.	हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन १-२	श्री नेमिचन्द्र शास्त्री	५)

नाटक

१७.	रजत-रश्मि	श्री डा० रामकुमार वर्मा	२॥)
१८.	रेडियो नाट्य शिल्प	श्री सिद्धनाथ कुमार	२॥)
१९.	पचपनका फेर	श्री विमला लूथरा	३)
२०.	और खाई बढ़ती गई	श्री भारतभूषण अग्रवाल	२॥)
२१.	तरकश के तीर	श्रीकृष्ण एम० ए०	३)

ज्योतिष

२२.	भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
२३.	करलक्खण [सामुद्रिकशास्त्र]	प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	।।।)

कहानियाँ

२४.	संघर्षके बाद	श्री विष्णु प्रभाकर	३)
२५.	गहरे पानी पैठ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
२६.	आकाशके तारे : धरतीके फूल	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२)
२७.	पहला कहानीकार	श्री रावी	२॥)
२८.	खेल-खिलौने	श्री राजेन्द्र यादव	२)
२९.	अतीतके कम्पन	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३०.	जिन खोजा तिन पाइयाँ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
३१.	नये बादल	श्री मोहन राकेश	२॥)
३२.	कुछ मोती कुछ सीप	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
३३.	कालके पंख	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३४.	नये चित्र	श्री सत्येन्द्र शरत्	३)
३५.	जय-दोल	श्री अज्ञेय	३)

उपन्यास

३६.	मुक्तिदूत	श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	५)
३७.	तीसरा नेत्र	श्री आनन्दप्रकाश जैन	२॥)
३८.	रक्त-राग	श्री देवेशदास	३)
३९.	संस्कारोंकी राह	राधाकृष्ण प्रसाद	२॥)

संस्मरण, रेखाचित्र

४०.	हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४१.	संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४२.	रेखाचित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
४३.	जैन जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

सूक्तियाँ

४४. ज्ञानगङ्गा [सूक्तियाँ]	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)
४५. शरत्की सूक्तियाँ	श्री रामप्रकाश जैन	२)

राजनीति

४६. एशियाकी राजनीति	श्री परदेशी साहित्यरत्न	६)

निबन्ध, आलोचना

४७. ज़िन्दगी मुसकराई	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४)
४८. संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	श्री अत्रिदेव 'विद्यालङ्कार'	३)
४९. शरत्के नारी-पात्र	श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी	४॥)
५०. क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	श्री रावी	२॥)
५१. बाजे पायलियाके घुँघरू	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४)
५२. माटी हो गई सोना	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२)

दार्शनिक, आध्यात्मिक

५३. भारतीय विचारधारा	श्री मधुकर एम० ए०	२)
५४. अध्यात्म-पदावली	श्री राजकुमार जैन	४॥)
५५. वैदिक साहित्य	श्री रामगोविन्द त्रिवेदी	६)

भाषाशास्त्र

५६. संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन	श्री भोलाशंकर व्यास	५)

विविध

५७. द्विवेदी-पत्रावली	श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद'	२॥)
५८. ध्वनि और संगीत	श्री ललितकिशोर सिंह	४)
५९. हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान	श्री सम्पूर्णानन्द	१)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी